अध्याय ५

भगवान् नित्यानन्द बलराम की महिमाएँ

इस अध्याय में मुख्यतया श्री नित्यानन्द प्रभु के मुख्य स्वभाव एवं उनकी महिमाओं का वर्णन किया गया है। भगवान् श्रीकृष्ण परमेश्वर हैं और लीलाओं के लिए उनके प्रथम विस्तार श्री बलराम हैं।

इस भौतिक जगत् की सीमा के पार आध्यात्मिक आकाश, *परव्योम* है, जिसमें अनेक आध्यात्मिक ग्रह हैं, जिनमें कृष्णलोक सर्वश्रेष्ठ है। कृष्णलोक अर्थात् कृष्ण के निवास के तीन विभाग हैं, जिनके नाम हैं द्वारका, मथुरा तथा गोकुल। इस धाम में भगवान् अपना विस्तार चार पूर्ण अंश-अवतारों में करते हैं—कृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न (दिव्य कामदेव) तथा अनिरुद्ध। ये चारों मूल चतुर्व्यूह कहलाते हैं।

कृष्णलोक में एक दिव्य स्थान है, जो श्वेतद्वीप या वृन्दावन कहलाता है। कृष्णलोक के नीचे आध्यात्मिक आकाश में वैकुण्ठ ग्रह हैं। प्रत्येक वैकुण्ठ ग्रह में प्रथम चतुर्व्यूह के विस्ताररूप एक चतुर्भुज नारायण रहते हैं। कृष्णलोक में मूल संकर्षण भगवान् श्री बलराम के रूप में हैं और इन संकर्षण से एक और संकर्षण का विस्तार महासंकर्षण के रूप में होता है, जो वैकुण्ठ-ग्रहों में से एक में निवास करते हैं। अपनी अन्तरंगा शक्ति से महासंकर्षण परव्योम में सारे ग्रहों की दिव्य स्थिति को बनाये रखते हैं, जहाँ के निवासी सदैव मुक्त रहते हैं। वहाँ पर भौतिक शक्ति का बिल्कुल भी प्रभाव नहीं रहता। इन लोकों में द्वितीय चतुर्व्यूह विद्यमान रहते हैं।

वैकुण्ठ-लोकों से बाहर श्रीकृष्ण की निर्विशेष अभिव्यक्ति पाई जाती है,

जो ब्रह्मलोक कहलाती है। ब्रह्मलोक की दूसरी ओर दिव्य *कारण-समुद्र* है। इस कारण-समुद्र की दूसरी ओर भौतिक शक्ति रहती है, किन्तु उसका स्पर्श नहीं करती। इस कारण-समुद्र में संकर्षण के मूल पुरुष विस्तार महाविष्णु रहते हैं। ये महाविष्णु भौतिक शक्ति पर दृष्टि डालते हैं और अपने दिव्य शरीर के प्रतिबिम्ब से वे भौतिक तत्त्वों में अपने आपको मिला देते हैं।

भौतिक तत्त्वों की उद्गम होने के कारण भौतिक शक्ति *प्रधान* कहलाती है और भौतिक शक्ति की अभिव्यक्ति के उद्गम के रूप में यह *माया* कहलाती है। किन्तु भौतिक प्रकृति जड़ होती है, क्योंकि इसे कुछ भी करने की स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं रहती। इसे महाविष्णु के दृष्टिपात द्वारा जगत् का निर्माण करने की शक्ति प्रदान की जाती है। अतएव भौतिक शक्ति इस भौतिक जगत् का मूल कारण नहीं होती, बल्कि भौतिक प्रकृति पर महाविष्णु की दिव्य दृष्टि से भौतिक जगत् उत्पन्न होता है।

महाविष्णु पुनः हर ब्रह्माण्ड में गर्भोदकशायी विष्णु के रूप में, जो सारे जीवों के आगार हैं, प्रवेश करते हैं। गर्भोदकशायी विष्णु से क्षीरोदकशायी विष्णु का विस्तार होता है, जो हर जीव के परमात्मा हैं। गर्भोदकशायी विष्णु का भी हर ब्रह्माण्ड में अपना वैकुण्ठ-लोक होता है, जहाँ वे परमात्मा या ब्रह्माण्ड के परम नियन्ता के रूप में रहते हैं। गर्भोदकशायी विष्णु ब्रह्माण्ड के जलमय अंश में शयन करते हैं और ब्रह्माण्ड के प्रथम जीव ब्रह्मा को उत्पन्न करते हैं। काल्पनिक विश्वरूप गर्भोदकशायी विष्णु का आंशिक प्राकट्य है।

हर ब्रह्माण्ड के वैकुण्ठ-लोक में एक क्षीर सागर होता है और उस सागर के भीतर श्वेतद्वीप नामक एक द्वीप होता है, जहाँ भगवान् विष्णु निवास करते हैं। इस तरह इस अध्याय में दो श्वेतद्वीपों का वर्णन हुआ है—एक तो कृष्ण के धाम में और दूसरा प्रत्येक ब्रह्माण्ड के क्षीर सागर में। कृष्ण के धाम का श्वेतद्वीप वृन्दावन धाम से अभिन्न है, जहाँ कृष्ण अपनी प्रेममयी लीलाएँ प्रदर्शित करने के लिए प्रकट होते हैं। हर ब्रह्माण्ड के श्वेतद्वीप में भगवान् शेष रहते हैं, जो विष्णु की सेवा उनका छत्र, पादुका, शय्या, तकिया, वस्त्र, निवासस्थान, जनेऊ, सिंहासन इत्यादि बनकर करते हैं।

कृष्णलोक में भगवान् बलदेव नित्यानन्द प्रभु हैं। अतएव नित्यानन्द प्रभु

मूल संकर्षण हैं और महासंकर्षण तथा ब्रह्माण्डों में पुरुषों के रूप में उनके विस्तार नित्यानन्द प्रभु के पूर्ण अंश विस्तार हैं।

इस अध्याय में लेखक ने अपना घर छोड़कर वृन्दावन की तीर्थयात्रा करने और वहाँ पर सफलता प्राप्त करने का वर्णन किया है। इस विवरण से पता चलता है कि उनकी मूल पितृभूमि तथा उनका जन्मस्थान कटवा जिले के झामटपुर नामक गाँव में था, जो नैहाटी के निकट है। कृष्णदास कविराज के भाई ने नित्यानन्द प्रभु के महान् भक्त श्री मीनकेतन रामदास को अपने घर पर बुलाया था, किन्तु गुणार्णव मिश्र नामक पुरोहित ने उनका ठीक से आदर नहीं किया और कृष्णदास कविराज गोस्वामी के भाई भी नित्यानन्द प्रभु की महिमाओं को न पहचान सकने के कारण पुरोहित की तरफ हो गये। इसलिए रामदास खिन्न हुए और अपनी वंशी तोड़ डाली और वहाँ से चले गये। यह कृष्णदास कविराज गोस्वामी के भाई के लिए एक महान् दुर्घटना थी। किन्तु उसी रात नित्यानन्द प्रभु ने कृपापूर्वक कृष्णदास कविराज गोस्वामी को स्वप्न में दर्शन दिया और उन्होंने आदेश दिया कि अगले दिन वे वृन्दावन के लिए यात्रा आरम्भ करें।

वन्देऽनन्ताद्भुतैश्वर्यं श्री-नित्यानन्दमीश्वरम् ।
यस्येच्छया तत्स्वरूपमज्ञेनापि निरूप्यते ॥ १ ॥

वन्देऽनन्ताद्भुतैश्वर्यं श्री-नित्यानन्दमीश्वरम् ।
यस्येच्छया तत्स्वरूपमज्ञेनापि निरूप्यते ॥ १ ॥

वन्दे—मैं नमस्कार करता हूँ; **अनन्त**—असीम; **अद्भुत**—एवं अद्भुत; **ऐश्वर्यम्**—जिनका ऐश्वर्य; **श्री-नित्यानन्दम्**—भगवान् नित्यानन्द को; **ईश्वरम्**—ईश्वर; **यस्य**—जिनकी; **इच्छया**—इच्छा से; **तत्-स्वरूपम्**—उनके स्वरूप; **अज्ञेन**—अज्ञानी से; **अपि**—भी; **निरूप्यते**—समझा जा सकता है।

अनुवाद

मैं उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री नित्यानन्द प्रभु को नमस्कार करता हूँ, जिनका ऐश्वर्य अद्भुत तथा असीम है। उनकी इच्छा होने पर एक मूर्ख भी उनके स्वरूप को समझ सकता है।

জয় জয় শ্রী-চৈতন্য জয় নিত্যানন্দ ।
জয়াদ্বৈত-চন্দ্র জয় গৌর-ভক্ত-বৃন্দ ॥২॥

জয় জয় শ্রী-চৈতন্য জয় নিত্যানন্দ ।
জয়াদ্বৈত-চন্দ্র জয় গৌর-ভক্ত-বৃন্দ ॥ ২॥

জয় জয়—जय हो; **শ্রী-চৈতন্য**—श्री चैतन्य महाप्रभु की; **জয় নিত্যানন্দ**—भगवान् नित्यानन्द की जय हो; **জয় অদ্বৈত-চন্দ্র**—अद्वैताचार्य की जय हो; **জয় গৌর-ভক্ত-বৃন্দ**—चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की जय हो।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैत आचार्य की जय हो! और श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों की जय हो!

এই ষট্শ্লোকে কহিল কৃষ্ণ-চৈতন্য-মহিমা ।
পঞ্চ-শ্লোকে কহি নিত্যানন্দ-তত্ত্ব-সীমা ॥৩॥

এই ষট্শ্লোকে কহিল কৃষ্ণ-চৈতন্য-মহিমা ।
পঞ্চ-শ্লোকে কহি নিত্যানন্দ-তত্ত্ব-সীমা ॥ ৩॥

এই—यह; **ষট্-শ্লোকে**—छः श्लोकों में; **কহিল**—वर्णन किया है; **কৃষ্ণ-চৈতন্য-মহিমা**—श्री चैतन्य महाप्रभु की महिमाएँ; **পঞ্চ-শ্লোকে**—पाँच श्लोकों में; **কহি**—मैं वर्णन करूँगा; **নিত্যানন্দ**—भगवान् नित्यानन्द के; **তত্ত্ব**—तत्त्व का; **সীমা**—सीमा।

अनुवाद

मैंने श्रीकृष्ण चैतन्य की महिमा का वर्णन छह श्लोकों में किया है। अब मैं पाँच श्लोकों में भगवान् श्री नित्यानन्द की महिमा का वर्णन करूँगा।

সর্ব-অবতারী কৃষ্ণ স্বয়ং ভগবান্ ।
তাঁহার দ্বিতীয় দেহ শ্রী-বলরাম ॥৪॥

সর্ব-অবতারী কৃষ্ণ স্বয়ং ভগবান্ ।
তাঁহার দ্বিতীয় দেহ শ্রী-বলরাম ॥ ৪॥

सर्व-अवतारी—सभी अवतारों के उद्गम; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **स्वयम्**—स्वयं; **भगवान्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **ताँहार**—उनका; **द्वितीय**—द्वितीय; **देह**—शरीर का विस्तार; **श्री-बलराम**—भगवान् बलराम।

अनुवाद

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण समस्त अवतारों के स्रोत हैं। भगवान् बलराम उनके द्वितीय शरीर हैं।

तात्पर्य

भगवान् श्रीकृष्ण परम भगवान् हैं, आदि पुरुष हैं, ईश्वर के मूल स्वरूप हैं और उनके प्रथम विस्तार श्री बलराम हैं। भगवान् अपना विस्तार असंख्य रूपों में कर सकते हैं। जिन रूपों में असीम शक्ति होती है, वे *स्वांश* कहलाते हैं और जिनकी शक्ति सीमित होती है, वे (जीव) *विभिन्नांश* कहलाते हैं।

एकई स्वरूप दोँहे, भिन्न-मात्र काय ।
आद्य काय-व्यूह, कृष्ण-लीलार सहाय ॥५॥

एकइ स्वरूप दोँहे, भिन्न-मात्र काय ।
आद्य काय-व्यूह, कृष्ण-लीलार सहाय ॥५॥

एकइ—एक; **स्वरूप**—स्वरूप; **दोँहे**—दोनों; **भिन्न-मात्र काय**—केवल दो विभिन्न शरीर; **आद्य**—मूल; **काय-व्यूह**—चतुर्व्यूह विस्तार; **कृष्ण-लीलार**—भगवान् कृष्ण की लीलाओं में; **सहाय**—सहायता।

अनुवाद

वे दोनों एक ही रूप हैं। केवल उनके शरीर में अन्तर है। भगवान् बलराम कृष्ण के प्रथम शारीरिक विस्तार (कायव्यूह) हैं और कृष्ण की दिव्य लीलाओं में सहायक होते हैं।

तात्पर्य

बलराम श्रीकृष्ण के *स्वांश* विस्तार हैं, अतएव कृष्ण तथा बलराम की शक्ति में कोई अन्तर नहीं है। अन्तर केवल उनके शारीरिक गठन में है। भगवान् के प्रथम विस्तार होने के कारण बलराम प्रथम चतुर्व्यूह में प्रधान विग्रह हैं और भगवान् कृष्ण के दिव्य कार्यकलापों में अग्रणी सहायक हैं।

সেই কৃষ্ণ—নবদ্বীপে শ্রী-চৈতন্য-চন্দ্র ।
সেই বলরাম—সঙ্গে শ্রী-নিত্যানন্দ ॥৬॥

सेइ कृष्ण—नवद्वीपे श्री-चैतन्य-चन्द्र ।
सेइ बलराम—सङ्गे श्री-नित्यानन्द ॥६॥

सेइ कृष्ण—मूल कृष्ण; **नवद्वीपे**—नवद्वीप में; **श्री-चैतन्य-चन्द्र**—भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; **सेइ बलराम**—वे भगवान् बलराम; **सङ्गे**—उनके साथ; **श्री-नित्यानन्द**—भगवान् नित्यानन्द।

अनुवाद

वे मूल भगवान् कृष्ण नवद्वीप में श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट हुए और श्री बलराम उनके साथ श्री नित्यानन्द प्रभु के रूप में प्रकट हुए।

সঙ্কর্ষণঃ কারণ-তোয়-শায়ী
গর্ভোদ-শায়ী চ পয়োব্ধি-শায়ী ।
শেষশ্চ যস্যাংশ-কলাঃ স নিত্যা-
নন্দাখ্য-রামঃ শরণং মমাস্তু ॥৭॥

सङ्कर्षण: कारण-तोय-शायी
गर्भोद-शायी च पयोब्धि-शायी ।
शेषश्च यस्यांश-कला: स नित्या-
नन्दाख्य-राम: शरणं ममास्तु ॥७॥

सङ्कर्षण:—आध्यात्मिक आकाश में महा संकर्षण; **कारण-तोय-शायी**—कारणोदकशायी विष्णु जो कारण सागर में शयन करते हैं; **गर्भ-उद-शायी**—गर्भोदकशायी विष्णु जो ब्रह्माण्ड के गर्भोदक सागर में शयन करते हैं; **च**—तथा; **पय:-अब्धि-शायी**—क्षीरोदकशायी विष्णु जो क्षीरोदक सागर में शयन करते हैं; **शेष:**—शेषनाग, विष्णु की शय्या; **च**—और; **यस्य**—जिनका; **अंश**—पूर्ण अंश; **कला:**—तथा पूर्ण अंश के अंश; **स:**—वे; **नित्यानन्द-आख्य**—भगवान् नित्यानन्द नामक; **राम:**—भगवान् बलराम; **शरणम्**—आश्रय, शरण; **मम**—मेरे; **अस्तु**—हो।

अनुवाद

वे श्री नित्यानन्द राम मेरे निरन्तर स्मरण के लक्ष्य बनें, जिनके पूर्णांश तथा पूर्णांश के अंश संकर्षण, शेषनाग तथा वे विष्णु हैं, जो क्रमश: कारण-सागर, गर्भ-सागर तथा क्षीर-सागर में शयन करते हैं।

तात्पर्य

श्री स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने यह श्लोक अपनी डायरी में श्री नित्यानन्द प्रभु को सादर नमस्कार करने के लिए लिखा। यही श्लोक श्री चैतन्य-चरितामृत के प्रथम चौदह श्लोकों में से सातवाँ श्लोक है।

শ্রী-বলরাম গোসাঞি মূল-সঙ্কর্ষণ ।
পঞ্চ-রূপ ধরি' করেন কৃষ্ণের সেবন ॥৮॥

श्री-बलराम गोसाञि मूल-सङ्कर्षण ।
पञ्च-रूप धरि' करेन कृष्णेर सेवन ॥८॥

श्री-बलराम—श्री बलराम; **गोसाञि**—भगवान्; **मूल-सङ्कर्षण**—मूल संकर्षण; **पञ्च-रूप धरि'**—पाँच-रूप धारी; **करेन**—करते हैं; **कृष्णेर**—भगवान् कृष्ण की; **सेवन**—सेवा।

अनुवाद

भगवान् बलराम मूल संकर्षण हैं। वे भगवान् कृष्ण की सेवा करने के लिए पाँच अन्य रूप धारण करते हैं।

আপনে করেন কৃষ্ণ-লীলার সহায় ।
সৃষ্টি-লীলা-কার্য করে ধরি' চারি কায় ॥৯॥

आपने करेन कृष्ण-लीलार सहाय ।
सृष्टि-लीला-कार्य्य करे धरि' चारि काय ॥९॥

आपने—स्वयं; **करेन**—करते हैं; **कृष्ण-लीलार सहाय**—भगवान् कृष्ण की लीलाओं में सहायता; **सृष्टि-लीला**—सृष्टि लीला का; **कार्य्य**—कार्य; **करे**—करते हैं; **धरि'**—स्वीकार करके; धारण करके; **चारि काय**—चार शरीर।

अनुवाद

वे स्वयं भगवान् कृष्ण की लीलाओं में सहायता करते हैं और चार अन्य रूपों में सृजन-कार्य भी करते हैं।

সৃষ্ট্যাদিক সেবা,—তাঁর আজ্ঞার পালন ।
'শেষ'-রূপে করে কৃষ্ণের বিবিধ সেবন ॥১০॥

सृष्ट्यादिक सेवा,—ताँर आज्ञार पालन ।
'शेष'-रूपे करे कृष्णेर विविध सेवन ॥ १० ॥

सृष्टि-आदिक सेवा—सृष्टि-कार्य में सेवा; **ताँर**—उनकी; **आज्ञार**—आज्ञा का; **पालन**—पालन; **शेष-रूपे**—भगवान् शेष के रूप में; **करे**—करते हैं; **कृष्णेर**—भगवान् कृष्ण की; **विविध सेवन**—विविध सेवाएँ।

अनुवाद

वे सृष्टि-कार्य में भगवान् कृष्ण के आदेशों का पालन करते हैं और भगवान् शेष के रूप में वे कृष्ण की अनेक प्रकार से सेवा करते हैं।

तात्पर्य

अधिकारीजनों का मत है कि मूल चतुर्व्यूह में प्रधान श्री बलराम मूल संकर्षण भी हैं। कृष्ण के प्रथम विस्तार बलराम अपना विस्तार पाँच रूपों में करते हैं—(१) महासंकर्षण, (२) कारणाब्धिशायी, (३) गर्भोदकशायी, (४) क्षीरोदकशायी तथा (५) शेष। ये पाँचों पूर्ण अंश आध्यात्मिक तथा भौतिक दोनों ही जगतों के कारणस्वरूप हैं। इन पाँचों रूपों में श्री बलराम भगवान् कृष्ण को उनके कार्यकलापों में सहायता करते हैं। इनमें से प्रथम चार विराट् जगत् की उत्पत्ति के कारण हैं और शेष भगवान् की निजी सेवा के लिए उत्तरदायी हैं। शेष अनन्त कहलाते हैं, क्योंकि वे असंख्य प्रकारों से भगवान् के अनन्त विस्तारों की सेवा करते हैं। श्री बलराम सेवक भगवान् हैं, जो स्थिति तथा ज्ञान के सारे कार्यों में भगवान् कृष्ण की सेवा करते हैं। नित्यानन्द प्रभु जो सेवक भगवान् बलराम ही हैं, वे अपने निरन्तर सान्निध्य से गौरांग महाप्रभु की वैसी ही सेवा करते हैं।

সর্ব-রূপে আস্বাদয়ে কৃষ্ণ-সেবানন্দ ।
সেই বলরাম—গৌর-সঙ্গে নিত্যানন্দ ॥ ১১ ॥

সর্ব-রূপে আস্বাদয়ে কৃষ্ণ-সেবানন্দ ।
সেই বলরাম—গৌর-সঙ্গে নিত্যানন্দ ॥ ১১ ॥

সর্ব-রূপে—इन सभी रूपों में; **আস্বাদয়ে**—आस्वादन करते हैं; **কৃষ্ণ-সেবা-আনন্দ**—कृष्ण-सेवा का दिव्य आनन्द; **সেই বলরাম**—वे भगवान् बलराम; **গৌর-সঙ্গে**—गौर सुन्दर के साथ; **নিত্যানন্দ**—भगवान् नित्यानन्द।

अनुवाद

वे अपने समस्त रूपों में कृष्ण की सेवा करने के दिव्य आनन्द का आस्वादन करते हैं। वे बलराम ही भगवान् गौरसुन्दर के सहचर नित्यानन्द प्रभु हैं।

सप्तम श्लोकेर अर्थ करि चारि-श्लोके ।
याते नित्यानन्द-तत्त्व जाने सर्व-लोके ॥ १२॥

सप्तम श्लोकेर अर्थ करि चारि-श्लोके ।
याते नित्यानन्द-तत्त्व जाने सर्व-लोके ॥ १२॥

सप्तम श्लोकेर—सातवें श्लोक का; **अर्थ**—अर्थ; **करि**—मैं करता हूँ; **चारि-श्लोके**—चार श्लोकों में; **याते**—जिनमें; **नित्यानन्द-तत्त्व**—भगवान् नित्यानन्द का तत्त्व; **जाने**—हम जानते हैं; **सर्व-लोके**—विश्वभर में।

अनुवाद

मैंने इस सातवें श्लोक की व्याख्या लगातार चार श्लोकों में की है। इन श्लोकों से सारा संसार नित्यानन्द प्रभु के विषय में सत्य को जान सकता है।

मायातीते व्यापि-वैकुण्ठ-लोके
पूर्णैश्वर्ये श्री-चतुर्व्यूह-मध्ये ।
रूपं यस्योद्भाति सङ्कर्षणाख्यं
तं श्री-नित्यानन्द-रामं प्रपद्ये ॥ १३॥

मायातीते व्यापि-वैकुण्ठ-लोके
पूर्णैश्वर्ये श्री-चतुर्व्यूह-मध्ये ।
रूपं यस्योद्भाति सङ्कर्षणाख्यं
तं श्री-नित्यानन्द-रामं प्रपद्ये ॥ १३॥

माया-अतीते—भौतिक सृष्टि के परे; **व्यापि**—सर्वव्यापी; **वैकुण्ठ-लोके**—वैकुण्ठ लोक में; **पूर्ण-ऐश्वर्ये**—पूर्ण ऐश्वर्य सहित; **श्री-चतुः-व्यूह-मध्ये**—चतुर्व्यूह विस्तार में (वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध); **रूपम्**—रूप; **यस्य**—जिनका; **उद्भाति**—प्रकट होता है; **सङ्कर्षण-आख्यम्**—संकर्षण नामक; **तम्**—उनको; **श्री-नित्यानन्द-रामम्**—भगवान् नित्यानन्द के रूप में भगवान् बलराम की; **प्रपद्ये**—मैं शरण लेता हूँ।

अनुवाद

मैं उन श्री नित्यानन्द राम के चरणकमलों की शरण ग्रहण करता हूँ, जो चतुर्व्यूह के मध्य संकर्षण नाम से विख्यात हैं (चतुर्व्यूह में वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध सम्मिलित हैं)। वे समस्त ऐश्वर्यों से युक्त हैं और इस भौतिक जगत् से बहुत दूर वैकुण्ठ-लोक में निवास करते हैं।

तात्पर्य

यह श्लोक श्री स्वरूप दामोदर गोस्वामी की डायरी से लिया गया है। यह *श्रीचैतन्य-चरितामृत* के प्रथम चौदह श्लोकों में से आठवाँ श्लोक है।

प्रकृतिर पार 'परव्योम'-नामे धाम ।
कृष्ण-विग्रह यैछे विभूत्यादि-गुणवान् ॥ १४॥

प्रकृतिर पार 'परव्योम'-नामे धाम ।
कृष्ण-विग्रह यैछे विभूत्यादि-गुणवान् ॥ १४॥

प्रकृतिर—भौतिक प्रकृति; **पार**—परे; **पर-व्योम**—आध्यात्मिक आकाश; **नामे**—नाम में; **धाम**—धाम; **कृष्ण-विग्रह**—भगवान् कृष्ण का विग्रह; **यैछे**—जैसे; **विभूति-आदि**—छः ऐश्वर्यों की भाँति; **गुण-वान्**—दिव्य गुणों सहित।

अनुवाद

भौतिक प्रकृति से परे परव्योम अर्थात् आध्यात्मिक आकाश है। यह साक्षात् कृष्ण की ही तरह समस्त दिव्य गुणों—यथा छह ऐश्वर्यों—से युक्त है।

तात्पर्य

सांख्य दर्शन के अनुसार यह भौतिक जगत् चौबीस तत्त्वों से बना है। ये हैं—पाँच स्थूल तत्त्व, तीन सूक्ष्म तत्त्व, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच इन्द्रिय-विषय तथा महत् तत्त्व (सम्पूर्ण भौतिक शक्ति)। प्रत्यक्षवादी दार्शनिक इन तत्त्वों से परे जाने में असमर्थ होने के कारण सोचते हैं कि इनसे परे कोई भी वस्तु अव्यक्त होनी चाहिए। किन्तु चौबीस तत्त्वों से परे का जगत् अव्यक्त नहीं है, क्योंकि *भगवद्गीता* में इसे सनातन कहा गया है। व्यक्त तथा अव्यक्त (*व्यक्ताव्यक्त*) भौतिक प्रकृति से परे सनातन प्रकृति है, जो *परव्योम* अर्थात्

आध्यात्मिक आकाश कहलाती है। वह प्रकृति आध्यात्मिक स्वभाव की होती है, अतएव वहाँ कोई गुणात्मक अन्तर नहीं होता। वहाँ हर वस्तु आध्यात्मिक है, उत्तम है और हर वस्तु में श्रीकृष्ण का आध्यात्मिक रूप होता है। यह परव्योम श्रीकृष्ण की व्यक्त अन्तरंगा शक्ति है। यह उनकी बहिरंगा शक्ति से व्यक्त हुए भौतिक आकाश से भिन्न है।

श्रीकृष्ण की निर्विशेष प्रकाशमान किरणों से निर्मित सर्वव्यापी ब्रह्म आध्यात्मिक जगत् में वैकुण्ठ ग्रहों के साथ विद्यमान हैं। हमें परव्योम (आध्यात्मिक आकाश) का कुछ-कुछ अनुमान भौतिक आकाश की तुलना से लग सकता है, क्योंकि भौतिक आकाश में सूर्य की किरणों की तुलना *ब्रह्मज्योति* से की जा सकती है, क्योंकि ब्रह्मज्योति भगवान् की प्रकाशमान किरणें है। ब्रह्मज्योति में असंख्य वैकुण्ठ जगत् होते हैं, जो आध्यात्मिक होने के कारण स्वत: प्रकाशित रहते हैं और उनकी चमक सूर्य से अनेक गुना अधिक होती है। प्रत्येक वैकुण्ठ-लोक में भगवान् श्रीकृष्ण, उनके असंख्य पूर्णांश तथा पूर्णांशों के अंश की प्रधानता रहती है। आध्यात्मिक आकाश के सर्वोच्च भाग में कृष्णलोक नामक ग्रह है, जिसके तीन विभाग हैं—द्वारका, मथुरा तथा गोलोक अथवा गोकुल।

कट्टर भौतिकतावादी के लिए यह भगवान् का धाम वैकुण्ठ निश्चय ही एक रहस्य है। किन्तु जो अज्ञानी है उसके लिए पर्याप्त ज्ञान के अभाव में हर वस्तु एक रहस्य होती है। भगवान् का धाम कोरी कल्पना नहीं है। यहाँ तक कि अनेक भौतिक ग्रह, जो लाखों-करोड़ों की संख्या में हमारे सिर के ऊपर तैर रहे हैं, आज भी अज्ञानियों के लिए रहस्य बने हुए हैं। भौतिक विज्ञानी अब इस रहस्य को जानने का प्रयत्न कर रहे हैं और एक दिन ऐसा आ सकता है, जब इस पृथ्वी के लोग बाह्य अन्तरिक्ष में यात्रा करने में सक्षम होंगे और इन लाखों ग्रहों की विविधता को अपनी आँखों से देख सकेंगे। प्रत्येक ग्रह में उतनी ही भौतिक विविधता है, जितनी कि हम अपने ग्रह में पाते हैं।

यह पृथ्वी-लोक विराट् सृष्टि का केवल एक नगण्य स्थान है। फिर भी वैज्ञानिक प्रगति की मिथ्या भावना से गर्वित मूर्ख लोग इस लोक के तथाकथित आर्थिक विकास की खोज में अपनी शक्ति को केन्द्रित किये हुए हैं और उन्हें

यह ज्ञात नहीं है कि अन्य ग्रहों में नाना प्रकार की आर्थिक सुविधाएँ उपलब्ध हैं। आधुनिक खगोल विज्ञान के अनुसार चन्द्रमा की गुरुत्वाकर्षण शक्ति पृथ्वी से भिन्न है। अतएव यदि मनुष्य चन्द्रमा पर जायेगा, तो वहाँ पर भारी बोझ उठा सकेगा और लम्बी छलाँग लगा सकेगा। *रामायण* में वर्णन आता है कि हनुमान पर्वत जैसा भारी बोझ उठा सकते थे और सागर पार कर सकते थे। आधुनिक खगोल विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि ऐसा निस्सन्देह सम्भव है।

आधुनिक सभ्य मनुष्य का सबसे बड़ा रोग यह है कि उसे शास्त्रों की हर बात पर अविश्वास है। श्रद्धाविहीन अविश्वासी लोग आध्यात्मिक साक्षात्कार में कोई प्रगति नहीं कर सकते, क्योंकि वे आध्यात्मिक शक्ति को नहीं समझ सकते। बरगद के एक छोटे-से फल में सैकड़ों बीज होते हैं और हर बीज में एक अन्य विशाल बरगद का वृक्ष उत्पन्न करने की शक्ति निहित रहती है, जिससे लाखों ऐसे और फल उत्पन्न हो सकते हैं। प्रकृति का यह नियम हमारी आँखों के सामने दिखता है, किन्तु यह किस तरह कार्य करता है, यह हमारी समझ से परे है। यह भगवान् की शक्ति का केवल तुच्छ उदाहरण है। ऐसी अनेक घटनाएँ हैं जिन्हें कोई भी विज्ञानी नहीं समझा सकता।

वास्तव में हर वस्तु अचिन्त्य है, क्योंकि सत्य केवल उपयुक्त व्यक्तियों के समक्ष ही प्रकट किया जाता है। यद्यपि ब्रह्मा से लेकर क्षुद्र चींटी तक अनेक प्रकार के जीव हैं, किन्तु उनमें ज्ञान का विकास भिन्न होता है, अत: ज्ञान को सही स्रोत से प्राप्त करने की आवश्यकता है। वस्तुत: यह ज्ञान हम एकमात्र वैदिक स्रोतों से ही प्राप्त कर सकते हैं। चारों वेद, पुराण, महाभारत, रामायण और उनके पूरक शास्त्र जिन्हें स्मृतियाँ कहा जाता है—ये सभी ज्ञान के प्रामाणिक स्रोत हैं। यदि हम वास्तव में ज्ञान संचय करने के इच्छुक हैं, तो हमें इन्हीं स्रोतों से बिना संकोच के ज्ञान ग्रहण करना चाहिए।

हो सकता है यह शास्त्रीय ज्ञान प्रारम्भ में अविश्वसनीय लगे, क्योंकि हमारी संशयवादी प्रवृत्ति हर वस्तु की पुष्टि हमारे क्षुद्र मस्तिष्क द्वारा करना चाहती है, किन्तु ज्ञान प्राप्त करने के चिन्तनपरक साधन सदैव अपूर्ण होते हैं। प्रामाणिक शास्त्रों में प्रतिपादित पूर्ण ज्ञान की पुष्टि महान् आचार्यों द्वारा की जाती है, जो अपनी अनेक टीकाएँ छोड़ गये हैं। इनमें से किसी भी आचार्य ने शास्त्रों में

अविश्वास प्रकट नहीं किया। जो व्यक्ति शास्त्रों में अविश्वास प्रकट करता है, वह नास्तिक है और नास्तिक चाहे कितना भी महान् क्यों न हो, उससे हमें परामर्श नहीं लेना चाहिए। अनेक विविधताओं से युक्त शास्त्रों में दृढ़ श्रद्धा रखने वाला उपयुक्त व्यक्ति है, जिससे वास्तविक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। ऐसा ज्ञान प्रारम्भ में अचिन्त्य लग सकता है, किन्तु जब उपयुक्त अधिकारी उसके अर्थ को समझाता है, तो उसके विषय में कोई सन्देह नहीं रह जाता।

सर्वग, अनन्त, विभु—वैकुण्ठादि धाम ।
कृष्ण, कृष्ण-अवतारेर ताहाञि विश्राम ॥ १५ ॥

सर्वग, अनन्त, विभु—वैकुण्ठादि धाम ।
कृष्ण, कृष्ण-अवतारेर ताहाञि विश्राम ॥ १५ ॥

सर्व-ग—सर्वव्यापक; **अनन्त**—अनन्त; **विभु**—महानतम; **वैकुण्ठ-आदि धाम**—वैकुण्ठलोक नामक सभी स्थल; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण का; **कृष्ण-अवतारेर**—भगवान् कृष्ण के अवतारों का; **ताहाञि**—वहाँ; **विश्राम**—विश्राम, निवास।

अनुवाद

वह वैकुण्ठ धाम सर्वव्यापी, अनन्त एवं परम पूर्ण है। वह भगवान् कृष्ण तथा उनके अवतारों का आवास है।

ताहार उपरि-भागे 'कृष्ण-लोक'-ख्याति ।
द्वारका-मथुरा-गोकुल—त्रि-विधत्वे स्थिति ॥ १६ ॥

ताहार उपरि-भागे 'कृष्ण-लोक'-ख्याति ।
द्वारका-मथुरा-गोकुल—त्रि-विधत्वे स्थिति ॥ १६ ॥

ताहार—उन सबका; **उपरि-भागे**—ऊपरी भाग में; **कृष्ण-लोक-ख्याति**—कृष्ण लोक नामक ग्रह; **द्वारका-मथुरा-गोकुल**—द्वारका, मथुरा एवं वृन्दावन नामक तीन स्थल; **त्रि-विधत्वे**—तीन विभागों में; **स्थिति**—स्थित।

अनुवाद

उस आध्यात्मिक आकाश के सर्वोच्च भाग में कृष्णलोक नामक आध्यात्मिक लोक है। इसके तीन विभाग हैं—द्वारका, मथुरा तथा गोकुल।

सर्वोपरि श्री-गोकुल——व्रजलोक-धाम ।
श्री-गोलोक, श्वेतद्वीप, वृन्दावन नाम ॥१७॥

सर्वोपरि श्री-गोकुल——व्रजलोक-धाम ।
श्री-गोलोक, श्वेतद्वीप, वृन्दावन नाम ॥ १७॥

सर्व-उपरि—उन सबसे ऊपर; **श्री-गोकुल**—श्री गोकुल नामक स्थान; **व्रज-लोक-धाम**—व्रज लोक; **श्री-गोलोक**—गोलोक; **श्वेत-द्वीप**—श्वेतद्वीप; **वृन्दावन नाम**—वृन्दावन नामक भी।

अनुवाद

इनमें से सर्वोच्च श्री गोकुल है, जो व्रज, गोलोक, श्वेतद्वीप तथा वृन्दावन भी कहलाता है।

श्लोक ५.१८

सर्वग, अनन्त, विभु, कृष्ण-तनु-सम ।
ऊपर्यधो व्यापियाछे, नाहिक नियम ॥१८॥

सर्वग, अनन्त, विभु, कृष्ण-तनु-सम ।
उपर्य्यधो व्यापियाछे, नाहिक नियम ॥ १८॥

सर्व-ग—सर्वव्यापी; **अनन्त**—अनन्त; **विभु**—महानतम; **कृष्ण-तनु-सम**—कृष्ण के दिव्य शरीर के जैसा; **उपरि-अधः**—ऊपर नीचे; **व्यापियाछे**—विस्तृत; **नाहिक**—नहीं है; **नियम**—नियम।

अनुवाद

भगवान् कृष्ण के दिव्य शरीर के ही समान गोकुल सर्वव्यापी, अनन्त तथा सर्वोपरि है। यह किसी प्रतिबन्ध के बिना ऊपर तथा नीचे तक विस्तृत है।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु की परम्परा के महान् आचार्य तथा दार्शनिक श्रील जीव गोस्वामी ने अपने ग्रंथ *कृष्ण-सन्दर्भ* में कृष्ण के धाम की चर्चा की है। *भगवद्गीता* में भगवान् "मेरा धाम" का उल्लेख करते हैं। श्रील जीव गोस्वामी कृष्ण के धाम के स्वभाव का परीक्षण करते हुए *स्कन्द पुराण* का प्रसंग लाते हैं, जिसमें कहा गया है :

या यथा भुवि वर्तन्ते पुर्यो भगवतः प्रियाः।
तास्तथा सन्ति वैकुण्ठे तत्तल्लीलार्थमादृताः॥

"भौतिक जगत् में द्वारका, मथुरा तथा गोकुल जैसे भगवद्धाम वैकुण्ठ-धाम में स्थित भगवद्धामों का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रतिरूप हैं।" उस वैकुण्ठ-धाम का असीम आध्यात्मिक आकाश (परव्योम) भौतिक जगत् से बहुत दूर और ऊपर है। इसकी पुष्टि *स्वायम्भुव-तन्त्र* में शिव-पार्वती के बीच हुई चर्चा से होती है, जो चौदह अक्षरों वाले मन्त्र के प्रभाव के विषय में है। उसमें कहा गया है :

नानाकल्पलताकीर्णं वैकुण्ठं व्यापकं स्मरेत्।
अधः साम्यं गुणानां च प्रकृतिः सर्वकारणम्॥

"मन्त्र का जप करते समय मनुष्य को सदैव आध्यात्मिक जगत् (वैकुण्ठ) का स्मरण करना चाहिए, जो अत्यन्त विस्तीर्ण है और कोई भी मनवांछित वस्तु देने वाले कल्पवृक्षों से युक्त है। इस वैकुण्ठ क्षेत्र के नीचे भौतिक शक्ति (प्रकृति) है, जिससे भौतिक जगत् उत्पन्न होता है।" भगवान् कृष्ण के लीला-स्थान—यथा द्वारका, मथुरा तथा वृन्दावन—कृष्णलोक में स्वतन्त्र एवं सनातन रूप से स्थित हैं। वे भगवान् कृष्ण के वास्तविक धाम हैं और वे निश्चित रूप से भौतिक जगत् के ऊपर स्थित हैं।

वृन्दावन या गोकुल नामक धाम गोलोक भी कहलाता है। *ब्रह्म-संहिता* में वर्णन हुआ है कि भगवद्धाम का सर्वोच्च भाग गोकुल सहस्र पंखुड़ियों वाले कमलपुष्प के समान है। उस कमल जैसे लोक का बाह्य भाग वर्गाकार स्थान जैसा है, जो श्वेतद्वीप कहलाता है। गोकुल के भीतरी भाग में श्रीकृष्ण के रहने की विशद व्यवस्था है, जहाँ वे नन्द-यशोदा जैसे शाश्वत पार्षदों के साथ रहते हैं। यह दिव्य धाम मूल शेष या अनन्त रूप श्री बलदेव की शक्ति के कारण विद्यमान है। तन्त्रों में भी इसकी पुष्टि हुई है, जिनमें बलदेव के पूर्ण अंश श्री अनन्तदेव के धाम को भगवद्धाम कहा गया है। गोकुल वृन्दावन की सीमा से बाहर स्थित वर्गाकार श्वेतद्वीप के अन्तर्गत वृन्दावन धाम सबसे भीतरी धाम है।

जीव गोस्वामी के अनुसार वैकुण्ठ को ब्रह्मलोक भी कहते हैं। *नारद-पंचरात्र* में विजय के रहस्य का वर्णन करते हुए कहा गया है :

तत्सर्वोपरि गोलोके तत्र लोकोपरि स्वयम्।
विहरेत् परमानन्दी गोविन्दोऽतुलनायकः॥

"गोपियों के प्रभु गोकुल के प्रधान विग्रह गोविन्द सदैव आध्यात्मिक आकाश के सर्वोच्च भाग गोलोक नामक स्थान में आनन्द का उपभोग करते हैं।"

जीव गोस्वामी द्वारा दिये गये प्रामाणिक साक्ष्य के आधार पर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि कृष्णलोक आध्यात्मिक आकाश (परव्योम) में सर्वश्रेष्ठ लोक है, जो भौतिक जगत् से बहुत दूर है। कृष्ण की विविध लीलाओं में दिव्य विविधताओं के उपभोग के लिए वहाँ तीन विभाग हैं और ये लीलाएँ द्वारका, मथुरा तथा गोकुल—इन तीनों धामों में सम्पन्न होती हैं। जब कृष्ण इस ब्रह्माण्ड में अवतरित होते हैं, तब वे इन्हीं के समान नाम वाले स्थानों में लीलाओं का आनन्द लेते हैं। पृथ्वी पर ये स्थान मूल धामों से अभिन्न हैं, क्योंकि वे दिव्य जगत् के मूल पवित्र स्थानों के प्रतिरूप हैं। वे स्वयं कृष्ण जैसे ही उत्तम हैं और समान रूप से पूजनीय हैं। भगवान् श्री चैतन्य ने घोषित किया कि व्रजराज के पुत्र-रूप में उपस्थित होने वाले भगवान् कृष्ण पूजनीय हैं और वृन्दावन धाम भी समान रूप से पूजनीय है।

ব্রহ্মাণ্ডে প্রকাশ তার কৃষ্ণের ইচ্ছায় ।
একই স্বরূপ তার, নাহি দুই কায় ॥ ১৯॥

ब्रह्माण्डे प्रकाश तार कृष्णेर इच्छाय ।
एकइ स्वरूप तार, नाहि दुइ काय ॥ १९॥

ब्रह्माण्डे—भौतिक ब्रह्माण्ड में; **प्रकाश**—प्राकट्य; **तार**—इसका; **कृष्णेर इच्छाय**—भगवान् कृष्ण की सर्वोपरि इच्छा से; **एकइ**—वही है; **स्वरूप**—स्वरूप; **तार**—इसका; **नाहि**—नहीं; **दुइ**—दो; **काय**—शरीर।

अनुवाद

वह धाम भगवान् कृष्ण की इच्छा से भौतिक जगत् के भीतर प्रकट होता है। यह मूल गोकुल से अभिन्न है। ये दो भिन्न-भिन्न स्थान नहीं हैं।

तात्पर्य

उपर्युक्त धाम सर्वशक्तिमान भगवान् कृष्ण की इच्छा से सचल हैं। जब श्रीकृष्ण इस पृथ्वी पर प्रकट होते हैं, तब वे अपने धामों को भी बिना किसी परिवर्तन के उसी रूप में प्रकट कर सकते हैं। मनुष्य को चाहिए कि इस धरा के धामों तथा वैकुण्ठ के धामों में यह सोचकर भेदभाव न करे कि जो धरा पर हैं, वे भौतिक हैं और आदि वैकुण्ठ के धाम आध्यात्मिक हैं। वे सभी आध्यात्मिक हैं। हम वर्तमान बद्ध अवस्था में पदार्थ से परे कुछ अनुभव ही नहीं कर सकते; अतएव हमें सारे धाम तथा भगवान् का अर्चारूप दोनों ही भौतिक रूप से मिलते-जुलते प्रकट हुए लगते हैं, जिससे हमें भौतिक नेत्रों से दिव्य को देखने की सुविधा मिल जाती है। प्रारम्भ में नये भक्त के लिए यह समझ पाना कठिन हो सकता है, किन्तु ज्यों-ज्यों वह भक्ति में अग्रसर होता जायेगा, उसके लिए यह सरलतर हो जायेगा और उसे इन भौतिक रूपों में ही भगवान् की उपस्थिति दृष्टिगोचर होगी।

चिन्तामणि-भूमि, कल्प-वृक्ष-मय वन ।
चर्म-चक्षे देखे तारे प्रपञ्चेर सम ॥ २० ॥

चिन्तामणि-भूमि, कल्प-वृक्ष-मय वन ।
चर्म-चक्षे देखे तारे प्रपञ्चेर सम ॥ २० ॥

चिन्तामणि-भूमि—चिन्तामणि की भूमि; **कल्प-वृक्ष-मय**—कल्पवृक्षों से पूर्ण; **वन**—वन; **चर्म-चक्षे**—भौतिक नेत्र; **देखे**—देखते हैं; **तारे**—यह; **प्रपञ्चेर सम**—भौतिक सृष्टि के समान।

अनुवाद

वहाँ की भूमि चिन्तामणि की बनी हुई है और वन कल्पवृक्षों से पूर्ण हैं। भौतिक आँखें इसे सामान्य स्थान के रूप में देखती हैं।

तात्पर्य

भगवत्कृपा से भगवान् के धाम तथा भगवान् स्वयं एकसाथ अपनी मूल महत्ता खोये बिना विद्यमान रह सकते हैं। जब कोई भगवान् के प्रति पूर्णरूपेण

प्रेम तथा स्नेह विकसित कर लेता है, तभी वह उन धामों को उनके मूल स्वरूपों में देख सकता है।

श्री चैतन्य महाप्रभु की परम्परा के महान् आचार्य श्रील नरोत्तमदास ठाकुर ने हमारे लाभ के लिए कहा है कि मनुष्य को धाम पूरी तरह तभी दिख सकते हैं, जब वह अपने मन से प्रकृति पर शासन करने की भावना को पूरी तरह से निकाल दे। उसकी आध्यात्मिक दृष्टि का विकास पदार्थ का अनावश्यक भोग करने की दूषित प्रवृत्ति को त्यागने के अनुपात में होता है। यदि कोई रोगी व्यक्ति किसी घृणित आदत के कारण बीमार पड़ता है, तो उसे चिकित्सक की राय मानने के लिए तैयार रहना चाहिए और इसके सहज परिणामस्वरूप उसे रोग के कारण को त्यागने का प्रयास करना चाहिए। रोगी यदि चाहे कि घृणित आदत को न छोड़े और चिकित्सक उसे ठीक कर दे, तो ऐसा सम्भव नहीं है। किन्तु आधुनिक भौतिक सभ्यता एक रुग्ण पर्यावरण का पोषण कर रही है। जीव भगवान् की ही भाँति एक आध्यात्मिक स्फुलिंग है। अन्तर इतना ही है कि भगवान् महान् हैं और जीव क्षुद्र है। गुण की दृष्टि से वे एक हैं, किन्तु मात्रा की दृष्टि से वे भिन्न हैं। अतएव वैधानिक रूप से आध्यात्मिक होने के कारण जीव केवल आध्यात्मिक आकाश में ही सुखी रह सकता है, जहाँ वैकुण्ठ लोक नामक अनेक आध्यात्मिक ग्रह हैं। इसलिए भौतिक देह से बद्ध आध्यात्मिक जीव को चाहिए कि वह रोग के कारण को बढ़ावा न दे, अपितु रोग से छुटकारा पाये।

मूर्ख व्यक्ति अपनी भौतिक सम्पदाओं में निमग्न रहकर व्यर्थ ही जनता के नेता बनने का दम्भ भरते हैं, किन्तु वे मनुष्य के आध्यात्मिक मूल्य की उपेक्षा करते हैं। ऐसे मोहग्रस्त नेता भले ही बहुवर्षीय योजनाएँ क्यों न बनायें, किन्तु वे जनता को भौतिक प्रकृति के तीनों तापों से प्रभावित अवस्था में सुखी नहीं बना सकते। कोई कितना ही संघर्ष क्यों न करे, वह प्रकृति के नियमों को वश में नहीं कर सकता। उसे प्रकृति के आखरी नियम मृत्यु का शिकार बनना ही पड़ेगा। जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधि—ये जीव की रुग्ण अवस्था के लक्षण हैं। अतएव मानव जीवन का चरम लक्ष्य इन कष्टों से छूटकर भगवद्धाम वापस जाना होना चाहिए।

प्रेम-नेत्रे देखे तार स्वरूप-प्रकाश ।
गोप-गोपी-सङ्गे याँहा कृष्णेर विलास ॥२१॥

प्रेम-नेत्रे देखे तार स्वरूप-प्रकाश ।
गोप-गोपी-सङ्गे याँहा कृष्णेर विलास ॥ २१ ॥

प्रेम-नेत्रे—भगवत् प्रेम के नेत्रों से; **देखे**—कोई देखता है; **तार**—इसका; **स्वरूप-प्रकाश**—स्वरूप का प्राकट्य; **गोप**—गोपजन; **गोपी-सङ्गे**—गोपियों के साथ; **याँहा**—जहाँ; **कृष्णेर विलास**—भगवान् कृष्ण की लीलाएँ।

अनुवाद

किन्तु भगवत्प्रेम से पूरित नेत्रों से मनुष्य इस स्थान के वास्तविक स्वरूप को देख सकता है, जहाँ भगवान् कृष्ण ग्वालबालों और गोपियों के साथ अपनी लीलाएँ करते हैं।

चिन्तामणि-प्रकर-सद्मसु कल्प-वृक्ष-
लक्षावृतेषु सुरभीरभिपालयन्तम् ।
लक्ष्मी-सहस्र-शत-सम्भ्रम-सेव्यमानं
गोविन्दमादि-पुरुषं तमहं भजामि ॥२२॥

चिन्तामणि-प्रकर-सद्मसु कल्प-वृक्ष-
लक्षावृतेषु सुरभीरभिपालयन्तम् ।
लक्ष्मी-सहस्र-शत-सम्भ्रम-सेव्यमानं
गोविन्दमादि-पुरुषं तमहं भजामि ॥ २२ ॥

चिन्तामणि—चिन्तामणि; **प्रकर**—बने हुए; **सद्मसु**—आवासों में; **कल्प-वृक्ष**—कल्पवृक्षों के; **लक्ष**—लाखों से; **आवृतेषु**—घिरे हुए; **सुरभीः**—सुरभी गौवों से; **अभिपालयन्तम्**—चराते हुए; **लक्ष्मी**—भाग्यलक्ष्मियों के; **सहस्र**—हजारों का; **शत**—सैंकड़ों से; **सम्भ्रम**—अत्यन्त सम्मान सहित; **सेव्यमानम्**—सेवित; **गोविन्दम्**—गोविन्द; **आदि-पुरुषम्**—आदि पुरुष; **तम्**—उनकी; **अहम्**—मैं; **भजामि**—पूजा करता हूँ।

अनुवाद

"मैं उन आदि पुरुष भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ, जो समस्त इच्छाओं को पूर्ण करने वाली गौओं का चिन्तामणियों से निर्मित और करोड़ों कल्पवृक्षों से घिरे अपने धाम में पालन करते हैं। उनकी सेवा में

सदैव सैकड़ों-हजारों लक्ष्मियाँ अत्यन्त आदर एवं स्नेह के साथ तत्पर रहती हैं।"

तात्पर्य

यह *ब्रह्म-संहिता* (५.२९) का श्लोक है। कृष्ण के धाम का यह विवरण हमें उस दिव्य स्थान के विषय में निश्चित जानकारी देता है, जहाँ का जीवन न केवल सनातन, ज्ञानमय तथा आनन्दमय है, अपितु जहाँ प्रचूर वनस्पति, दूध, रत्न तथा सुन्दर घर और उद्यान हैं, जिनकी देखरेख सुन्दर बालाओं द्वारा की जाती है, जो सब लक्ष्मियाँ हैं। कृष्णलोक आध्यात्मिक आकाश का सर्वोच्च ग्रह है और उसके नीचे असंख्य लोक हैं, जिनका वर्णन *श्रीमद्भागवत* में हुआ है। ब्रह्माजी को आत्म-साक्षात्कार के प्रारम्भ में नारायण की कृपा से वैकुण्ठ-लोकों का दिव्य दृश्य दिखाया गया था। बाद में कृष्ण की कृपा से उन्हें कृष्णलोक का भी दिव्य दृश्य दिखाया गया। यह दिव्य दृश्य टेलीविजन में चन्द्रमा से प्राप्त होने वाले प्रसारण की भाँति है, जिसे अपने भीतर तपस्या और ध्यान से प्राप्त किया जाता है, जबकि टेलीविजन में तरंगों को पकड़ने की यान्त्रिक प्रक्रिया से ऐसा सम्भव होता है।

श्रीमद्भागवत (द्वितीय स्कंध) में बतलाया गया है कि वैकुण्ठ-लोक में भौतिक प्रकृति के सतो, रजो तथा तमो गुणों का कोई प्रभाव नहीं होता। भौतिक जगत् में सत्त्वगुण ही सर्वोच्च है, जो सच्चाई, मानसिक संतुलन, शुचि, इन्द्रिय-संयम, सरलता, आवश्यक ज्ञान, ईश्वर में श्रद्धा, वैज्ञानिक ज्ञान इत्यादि विशिष्टताओं से युक्त है। फिर भी ये सारे गुण कामवासना तथा अपूर्णता से मिश्रित रहते हैं। किन्तु वैकुण्ठ में पाये जाने वाले गुण ईश्वर की अन्तरंगा शक्ति की अभिव्यक्ति हैं, अतएव ये नितान्त आध्यात्मिक तथा दिव्य हैं, जिनमें भौतिक कल्मष का नामोनिशान नहीं रहता। कोई भी भौतिक ग्रह, यहाँ तक कि सत्यलोक भी गुण की दृष्टि से वैकुण्ठ लोकों की समता नहीं कर सकता, जहाँ भौतिक जगत् के पाँच पैदायशी गुण—अज्ञान, क्लेश, अहंकार, क्रोध तथा द्वेष—अनुपस्थित रहते हैं।

भौतिक जगत् की हर वस्तु सृजित की गई है। हमारी अनुभूति के अन्तर्गत हम जो कुछ भी सोच सकते हैं, यहाँ तक कि हमारे शरीर तथा मन की भी

सृष्टि हुई है। सृष्टि की यह निर्माण प्रक्रिया ब्रह्मा के जीवन से शुरू हुई और यह सृजन-सिद्धान्त रजोगुण के कारण सम्पूर्ण भौतिक ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। किन्तु वैकुण्ठ-लोक में रजोगुण अनुपस्थित है, अतएव वहाँ किसी वस्तु की सृष्टि नहीं हुई, वहाँ की हर वस्तु शाश्वत है। और चूँकि वहाँ तमोगुण नहीं है, इसलिए वहाँ संहार या विनाश का प्रश्न ही नहीं उठता। भौतिक जगत् में उपर्युक्त सत्त्वगुण को विकसित करके मनुष्य हर वस्तु को स्थायी बनाने का प्रयास कर सकता है, किन्तु चूँकि भौतिक जगत् में सत्त्वगुण के साथ रजो तथा तमोगुण मिश्रित रहते हैं, इसलिए विद्वान विज्ञानियों के लाख प्रयत्नों के बावजूद भी कोई भी वस्तु यहाँ स्थायी नहीं रह सकती। इसीलिए हमें इस भौतिक जगत् में शाश्वतता, पूर्ण ज्ञान तथा आनन्द का कोई अनुभव नहीं है। किन्तु वैकुण्ठ लोक में गुणों की पूर्ण अनुपस्थिति के कारण हर वस्तु सच्चिदानन्दमय है। हर वस्तु बोल सकती है, चल सकती है, सुन सकती है और अनन्त काल तक परम आनन्दमय अस्तित्व में देख सकती है। ऐसी स्थिति होने से देश और काल का—भूत, वर्तमान और भविष्य रूप में—वहाँ कोई प्रभाव नहीं होता। परमव्योम में कोई परिवर्तन नहीं दिखता, क्योंकि वहाँ काल का कोई प्रभाव नहीं है। फलतः उस बहिरंगा शक्ति माया का प्रभाव भी अनुपस्थित रहता है, जो हमें अधिकाधिक भौतिकतावादी बनने और भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध को भूलने के लिए प्रेरित करती है।

हम लोग भगवान् के दिव्य शरीर से निकलने वाली किरणों की आध्यात्मिक स्फुलिंग होने के कारण उनसे शाश्वत रूप से सम्बन्धित हैं और गुण की दृष्टि से उनके तुल्य हैं। भौतिक शक्ति आध्यात्मिक स्फुलिंग का एक आवरण है, किन्तु वैकुण्ठ-लोक में भौतिक आवरण न होने के कारण वहाँ के जीव अपने स्वरूप को भूलते नहीं। उन्हें भगवान् के साथ अपनी इस वैधानिक स्थिति में अपने सम्बन्ध का पूर्ण ज्ञान है कि उन्हें भगवान् की दिव्य प्रेममयी सेवा करनी है। चूँकि वे लोग भगवान् की दिव्य सेवा में निरन्तर लगे रहते हैं, अतएव यह स्वाभाविक निष्कर्ष निकलता है कि उनकी इन्द्रियाँ भी दिव्य होती हैं, क्योंकि भौतिक इन्द्रियों से भगवान् की सेवा नहीं की जा सकती। वैकुण्ठ-लोक के निवासियों की भौतिक इन्द्रियाँ नहीं होतीं, जिससे वे भौतिक प्रकृति

पर प्रभुत्व जमा सकें।

अल्पज्ञानी मनुष्य इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भौतिक गुणों से शून्य स्थान किसी न किसी प्रकार की रूपविहीन शून्यता होगा। वस्तुत: आध्यात्मिक जगत् में गुण होते हैं, किन्तु वे भौतिक गुणों से भिन्न हैं, क्योंकि वहाँ की हर वस्तु शाश्वत, अनन्त तथा शुद्ध है। वहाँ का वातावरण स्वत: प्रकाशित है, अतएव वहाँ सूर्य, चन्द्र, अग्नि, बिजली इत्यादि की आवश्यकता नहीं पड़ती। उस धाम में पहुँचने वाला व्यक्ति भौतिक शरीर लेकर इस भौतिक जगत् में वापस नहीं आता। वैकुण्ठ-लोकों में आस्तिकों तथा नास्तिकों में कोई अन्तर नहीं होता, क्योंकि वहाँ के सारे निवासी भौतिक गुणों से मुक्त होते हैं। इस तरह सुर तथा असुर समान रूप से भगवान् के आज्ञाकारी प्रिय दास होते हैं।

वैकुण्ठ-लोक के निवासियों के शरीर का रंग चमकीला श्यामल होता है, जो भौतिक जगत् के सफेद तथा काले रंगों से अधिक मोहक और आकर्षक होता है। आध्यात्मिक होने के कारण उनके शरीरों की समता भौतिक जगत् की किसी चीज से नहीं की जा सकती। चमकीले बादल में बिजली चमकने से जो सौन्दर्य उत्पन्न होता है, वह उनकी सुन्दरता का एक संकेत मात्र देता है। सामान्यतया वैकुण्ठ के निवासी पीताम्बर धारण करते हैं। उनके शरीर सुकुमार तथा आकर्षक गठन वाले होते हैं और उनकी आँखें कमल की पंखुड़ियों के समान होती हैं। भगवान् विष्णु के ही समान वैकुण्ठ के निवासी चतुर्भुज होते हैं, जिनमें वे शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण करते हैं। उनके वक्षस्थल सुन्दर रूप से चौड़े होते हैं और ऐसे हारों से पूरी तरह सुसज्जित होते हैं, जो इस भौतिक जगत् में कभी दृष्टिगोचर नहीं होने वाले अमूल्य रत्नों से जटित देदीप्यमान हीरे जैसी धातु के बने होते हैं। वैकुण्ठ के निवासी सदा शक्तिशाली तथा तेजवान होते हैं। उनमें से कुछ के रंग लाल प्रवाल जैसी बिल्ली की आँखों तथा कमलपुष्पों के समान होते हैं और उनके कानों में मूल्यवान रत्नों से सजे कुंडल रहते हैं। वे सिर पर मालाओं के समान पुष्प मुकुट धारण करते हैं।

वैकुण्ठ में विमान होते हैं, किन्तु वे तेज आवाज नहीं करते। भौतिक विमान रंचमात्र भी सुरक्षित नहीं होते, वे कभी भी गिर सकते हैं और नष्ट हो

सकते हैं, क्योंकि पदार्थ सभी तरह से अपूर्ण होता है। किन्तु वैकुण्ठ में विमान भी आध्यात्मिक होते हैं और वे दिव्य रूप से अत्यधिक तेजवान और दीप्त होते हैं। इन विमानों में न उद्योगपति, न राजनीतिज्ञ, न ही योजना-आयोग के सदस्य उड़ान भरते हैं, न ही ये सामान या डाक का परिवहन करते हैं, क्योंकि ये सब चीजें वहाँ अज्ञात हैं। ये विमान केवल आनन्द-उड़ानें भरने के लिए होते हैं और वैकुण्ठ के निवासी अपनी अप्सरातुल्य सुन्दर प्रेमिकाओं के साथ इनमें उड़ान भरते हैं। इसलिए वैकुण्ठ के नर-नारियों से युक्त ये विमान आध्यात्मिक आकाश की सुन्दरता की वृद्धि करते हैं। ये कितने सुन्दर लगते हैं, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती, किन्तु इनकी सुन्दरता की उपमा उन बादलों से दी जा सकती हैं, जो चाँदी-सी चमकीली बिजली की शाखाओं से युक्त रहते हैं। वैकुण्ठ-लोक का आध्यात्मिक आकाश सदा इसी तरह से अलंकृत रहता है।

भगवान् की अन्तरंगा शक्ति का पूर्ण ऐश्वर्य वैकुण्ठ में देखने को मिलता है, जहाँ लक्ष्मियाँ भगवान् के चरणकमलों की सेवा में सदैव लगी रहती हैं। ये लक्ष्मियाँ अपनी सखियों समेत सदैव दिव्य आनन्द के उत्सवमय वातावरण का सृजन करती हैं। सदैव भगवान् की महिमाओं का गान करती हुईं, वे एक क्षण के लिए भी मौन नहीं रहतीं।

परव्योम में असंख्य वैकुण्ठ-लोक होते हैं और इनकी संख्या भौतिक आकाश में स्थित लोकों की तुलना में तिगुनी होती है। इस तरह बेचारा भौतिकतावादी ऐसे लोक में राजनैतिक समंजन बनाये रखने की चेष्टा करने में लगा हुआ है, जो ईश्वर की सृष्टि में बहुत तुच्छ है। इस पृथ्वी ग्रह की बात जाने दें, अपनी आकाश गंगाओं में बिखरे असंख्य ग्रहों समेत यह सारा ब्रह्माण्ड सरसों के एक बोरे में से सरसों के एक बीज के समान है। किन्तु बेचारा भौतिकतावादी यहाँ पर सुख से रहने की योजना बनाता है और अत्यन्त मूल्यवान मानव ऊर्जा को ऐसे कामों में नष्ट करता है, जिनका अन्त हताशा में होना निश्चित है। यदि वह अपना समय व्यापारिक तर्कवितर्क में न बिताकर सादगी से रहने और आध्यात्मिक चिन्तन में लगाता, तो वह अन्तहीन भौतिकतावादी अशान्ति से अपने आपको बचा सकता था।

यदि भौतिकतावादी व्यक्ति विकसित भौतिक सुविधाओं का भोग करना चाहे, तो वह अपने आपको ऐसे ग्रहों में ले जा सकता है, जहाँ वह इस पृथ्वी-ग्रह की अपेक्षा कहीं अधिक भौतिक आनन्द उठा सकता है। अतएव सबसे अच्छी योजना यही होगी कि वह इस शरीर को त्यागने के बाद परव्योम लौट जाने की तैयारी करे। किन्तु, यदि वह भौतिक सुविधाओं को भोगने के लिए उतारू ही है, तो वह योगशक्तियों का उपयोग करके अपने आपको भौतिक आकाश के अन्य ग्रहों में स्थानांतरित कर सकता है। इस कार्य के लिए अन्तरिक्ष-यात्रियों के खिलौने तुल्य यान उपयुक्त नहीं हैं, ये तो केवल बालसुलभ आमोद-प्रमोद जैसे ही हैं। *अष्टांग योग* विधि एक भौतिकतावादी कला है, जिसमें वायु को उदर से नाभि तक, नाभि से हृदय तक और हृदय से कंधे की अस्थि से होते हुए नेत्र-गोलकों तक, फिर वहाँ से मस्तिष्क और मस्तिष्क से इच्छित लोक को स्थानान्तरित किया जाता है। भौतिकतावादी विज्ञानी वायु तथा प्रकाश के वेगों को ध्यान में रखता है, किन्तु उसे मन तथा बुद्धि के वेगों का पता नहीं है। हमें अपने मन के वेग का सीमित अनुभव है, क्योंकि हम क्षण-भर में अपने मन को लाखों मील दूर के स्थान पर ले जा सकते हैं। बुद्धि तो इससे भी सूक्ष्म है। बुद्धि से भी सूक्ष्म आत्मा है, जो मन तथा बुद्धि की तरह पदार्थ नहीं है, किन्तु प्रति-पदार्थ या चेतन होता है। आत्मा बुद्धि की अपेक्षा लाखों गुना सूक्ष्म तथा शक्तिशाली होता है। इस तरह हम एक ग्रह से दूसरे ग्रह की यात्रा करते समय आत्मा के वेग की केवल कल्पना ही कर सकते हैं। यह कहने की जरूरत नहीं है कि आत्मा अपनी खुद की शक्ति से यात्रा करता है, किसी प्रकार के भौतिक यान की सहायता से नहीं।

आहर-निद्रा-भय-मैथुन की पशु-सभ्यता ने आधुनिक मनुष्य को दिग्भ्रमित कर दिया है, जिससे वह यह नहीं समझ पाता कि आत्मा कितना शक्तिशाली है। जैसाकि पहले कहा जा चुका है, आत्मा दिव्य स्फुलिंग है, जो सूर्य, चन्द्रमा या बिजली से लाखों गुना शक्तिशाली एवं दीप्तियुक्त है। जब मनुष्य अपनी वास्तविक पहचान आत्मा के रूप में नहीं कर पाता, तो उसका जीवन व्यर्थ हो जाता है। श्री चैतन्य महाप्रभु श्री नित्यानन्द प्रभु के साथ मनुष्य को इसी प्रकार की पथभ्रष्ट करने वाली सभ्यता से बचाने के लिए प्रकट हुए।

श्रीमद्भागवत में यह भी बतलाया गया है कि योगी किस तरह ब्रह्माण्ड के समस्त लोकों में विचरण करते हैं। जब प्राण-शक्ति मस्तिष्क तक ऊपर ले जायी जाती है, तो सम्भावना यही रहती है कि यह शक्ति आँखों, नाक, कानों आदि से फूट निकले, क्योंकि ये स्थान प्राणशक्ति के सप्तम चक्र कहलाते हैं। किन्तु योगी चाहें तो वायु को रुद्ध करके इन छिद्रों को बन्द कर सकते हैं। तब योगी प्राणवायु को भौहों के बीच एकाग्र करता है। इस अवस्था में योगी उस ग्रह का चिन्तन कर सकता है, जिसमें वह शरीर छोड़ने के बाद प्रवेश करना चाहता है। तब वह यह निर्णय कर सकता है कि वह दिव्य वैकुण्ठ में कृष्ण-धाम को जाना चाहता है, जहाँ से फिर इस जगत् में नहीं आना होगा या वह भौतिक ब्रह्माण्ड के उच्चतर लोकों में जाना चाहता है। एक सिद्ध योगी इन दो में से कुछ भी करने के लिए स्वतन्त्र रहता है।

वह सिद्ध योगी जिसने पूर्ण-चेतना में रहते हुए अपना शरीर त्यागने की विधि में सफलता प्राप्त कर ली है, उसके लिए एक लोक से दूसरे लोक तक की यात्रा करना उतना ही आसान है, जितना किसी आदमी के लिए सामान खरीदने के लिए किसी दुकान तक पैदल जाना। जैसाकि पहले बतलाया जा चुका है, भौतिक शरीर तो आत्मा का आवरण मात्र है। मन तथा बुद्धि भीतरी आवरण हैं तथा पृथ्वी, जल, वायु आदि से बना स्थूल शरीर आत्मा का बाहरी आवरण है। फलत: ऐसा उन्नत व्यक्ति जिसने योग-विधि से आत्म-साक्षात्कार कर लिया है, जो आत्मा तथा पदार्थ के सम्बन्ध को जानता है, वह आत्मा के स्थूल वस्त्र को इच्छानुसार भलीभाँति त्याग सकता है। भगवान् की कृपा से इसके लिए हमें पूरी छूट है। चूँकि भगवान् हम पर दयालु हैं, अतएव हम कहीं भी—परव्योम में अथवा भौतिक आकाश के किसी भी लोक में इच्छानुसार रह सकते हैं। किन्तु इस स्वतन्त्रता के दुरुपयोग से हम भौतिक जगत् में गिर जाते हैं और बद्ध जीवन के तीनों तापों को सहन करते हैं। आत्मा की अपनी इच्छा के कारण भौतिक जगत् में दु:खमय जीवन बिताने का सुन्दर चित्रण मिल्टन कृत "पैराडाइज लॉस्ट" (खोया हुआ स्वर्ग) पुस्तक में हुआ है। इसी प्रकार आत्मा अपनी पसन्द से "पैराडाइज" की पुन: प्राप्ति करके भगवद्धाम वापस जा सकता है।

मृत्यु के आपात समय में मनुष्य अपनी प्राण-शक्ति को दोनों भौहों के बीच स्थिर करके जहाँ भी जाना चाहे उसका निर्णय कर सकता है। यदि वह इस भौतिक जगत् से कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहता, तो वह क्षण-भर से भी कम समय में वैकुण्ठ-लोक पहुँच सकता है, जहाँ उसे पूर्ण आध्यात्मिक शरीर प्राप्त हो जाता है, जो वहाँ के आध्यात्मिक वातावरण के लिए सर्वथा उपयुक्त होता है। उसे स्थूल और सूक्ष्म दोनो रूपों में इस भौतिक जगत् को छोड़ने की केवल इच्छा करनी होती है और फिर प्राण-शक्ति को सिर के ऊपरी भाग में चढ़ाकर सिर के छिद्र से, जिसे *ब्रह्मरन्ध्र* कहते हैं, शरीर को छोड़ना होता है। योगाभ्यास में सिद्ध व्यक्ति के लिए यह सरल है।

निस्सन्देह, मनुष्य को स्वतंत्र इच्छा प्रदान की गई है, अत: उसे छूट है कि यदि वह भौतिक जगत् से मुक्त नहीं होना चाहता, तो वह *ब्रह्मपद* (ब्रह्मा के पद) का जीवन भोग सकता है और सिद्धलोक की यात्रा कर सकता है, जहाँ भौतिकता की दृष्टि से सिद्ध लोग रहते हैं, जिनमें गुरुत्वाकर्षण, स्थान तथा काल को नियन्त्रित करने की शक्ति रहती है। भौतिक ब्रह्माण्ड के इन उच्चतर लोकों में जाने के लिए मनुष्य को मन तथा बुद्धि (अर्थात् सूक्ष्म पदार्थ) को त्यागना नहीं पड़ता, उसे केवल स्थूल पदार्थ (स्थूल भौतिक शरीर) को त्यागना होता है।

प्रत्येक लोक का अपना विशेष वायुमण्डल होता है और यदि कोई भौतिक ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत किसी विशेष लोक की यात्रा करना चाहता है, तो उस व्यक्ति को उस लोक-विशेष के वायुमण्डल के अनुसार अपने शरीर को अनुकूल बनाना होता है। उदाहरणार्थ, यदि कोई व्यक्ति भारत से यूरोप जाना चाहता है, जहाँ की जलवायु पृथक् है, तो उसे उसी के अनुसार अपने वस्त्र बदलने पड़ते हैं। इसी तरह यदि कोई वैकुण्ठ-लोक जाना चाहता है, तो उसे अपने शरीर को पूरी तरह परिवर्तित करना होगा। किन्तु यदि वह उच्चतर भौतिक लोकों में जाना चाहता है, तो वह मन, बुद्धि तथा अहंकार के सूक्ष्म आवरण को धारण किये रह सकता है, किन्तु उसे पृथ्वी, जल, अग्नि इत्यादि से बने स्थूल वस्त्र (शरीर) को छोड़ना होता है।

जब मनुष्य दिव्य लोक को जाता है, तो उसे स्थूल तथा सूक्ष्म—दोनों

शरीरों को बदलना पड़ता है, क्योंकि उसे परव्योम में आध्यात्मिक रूप में ही पहुँचना होता है। यदि व्यक्ति चाहे तो मृत्यु के समय वस्त्र का यह परिवर्तन इच्छानुसार स्वत: हो जाता है।

भगवद्गीता में पुष्टि की गई है कि शरीर का त्याग करते समय मनुष्य की जैसी इच्छा होती है, उसी के अनुसार वह अगला शरीर प्राप्त करता है। मन की इच्छा आत्मा को अनुकूल वातावरण में ले जाती है, जिस प्रकार वायु सुगन्ध को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाती है। दुर्भाग्यवश जो योगी नहीं है, और निपट भौतिकतावादी हैं और जो जीवन-भर इन्द्रियतृप्ति में लगे रहते हैं, वे मृत्यु के समय शारीरिक तथा मानसिक दशाओं की इस प्रकार की अव्यवस्था से घबरा जाते हैं। ऐसे निपट भोगी व्यक्ति इच्छाओं, भावों तथा व्यतीत किए हुए जीवन के अनुभव के आधार पर अपने हित के प्रतिकूल वस्तुओं की इच्छा करते हैं और इस तरह मूर्खतावश ऐसा नया शरीर ग्रहण करते हैं, जिससे उनके भौतिक कष्ट बने रहते हैं।

इसलिए मन तथा बुद्धि का विधिवत् प्रशिक्षण आवश्यक है, जिससे मनुष्य मृत्यु के समय इस लोक में, या किसी अन्य भौतिक लोक में या वैकुण्ठ में उपयुक्त शरीर पाने की इच्छा कर सके। जो सभ्यता अविनाशी आत्मा की उत्तरोत्तर प्रगति पर विचार नहीं करती, वह अज्ञानमय पशु-जीवन को बढ़ावा देती है।

यह सोचना मूर्खता है कि मरने पर हर आत्मा एक ही स्थान पर जाता है। या तो मृत्यु के समय जिस स्थान की इच्छा की जाती है, आत्मा वहाँ जाता है या शरीर त्यागने के बाद विगत जीवन के कर्मों के अनुसार उसे शरीर धारण करने के लिए बाध्य किया जाता है। एक भौतिकतावादी तथा योगी में अन्तर इतना ही है कि भौतिकतावादी अपने अगले शरीर का निर्धारण नहीं कर सकता, जबकि योगी इच्छानुसार उच्च लोकों में भोग करने के लिए उपयुक्त शरीर प्राप्त कर सकता है। निपट भौतिकतावादी व्यक्ति जीवन भर इन्द्रियतृप्ति में लगा रहता है—वह अपने परिवार के उदर-पोषण के लिए सारा दिन कमाता है और रात में या तो वह सम्भोग में अपनी शक्ति का क्षय करता है या फिर दिन-भर के कामकाज के बारे में सोचता हुआ सो जाता है। एक भौतिकतावादी का यही

नीरस जीवन है। यद्यपि ऐसे लोग व्यापारी, वकील, राजनीतिज्ञ, प्रोफेसर, न्यायाधीश, कुली, जेबकतरे, मजदूर आदि नामों से जाने जाते हैं, किन्तु ये सारे ही भौतिकतावादी खाने, सोने, भयभीत रहने और इन्द्रियतृप्ति करने में लगे रहते हैं और इस तरह भोग में लगे रहने और आत्म-साक्षात्कार द्वारा अपने जीवन को पूर्ण बनाने की परवाह न करने के कारण अपने मूल्यवान जीवन को नष्ट कर देते हैं।

किन्तु योगी अपने जीवन को पूर्ण बनाने का प्रयास करते हैं; इसीलिए *भगवद्गीता* का आदेश है कि हर व्यक्ति योगी बने। *योग* आत्मा को भगवान् की सेवा में जोड़ने की एक प्रणाली है। ऐसे योग का अभ्यास केवल श्रेष्ठ मार्गदर्शक के निरीक्षण में ही सम्भव है। इसमें अपनी सामाजिक स्थिति बदलने के आवश्यकता नहीं होती। जैसाकि पहले कहा जा चुका है, योगी बिना किसी यान्त्रिक सहायता के, इच्छानुसार कहीं भी जा सकता है, क्योंकि योगी अपने मन तथा बुद्धि को शरीर के भीतर प्रवाहित होने वाली वायु में स्थापित कर सकता है और श्वास को नियंत्रित करके उस वायु को शरीर के बाहर सारे ब्रह्माण्ड में प्रवाहित वायु से मिला सकता है। इस ब्रह्माण्ड-वायु की सहायता से योगी किसी भी ग्रह की यात्रा कर सकता है और उसके वातावरण के अनुसार शरीर प्राप्त कर सकता है। इस विधि को समझने के लिए इसकी तुलना हम रेडियो-सन्देशों के इलेक्ट्रानिक प्रसारण से कर सकते हैं। रेडियो ट्रान्समीटर की सहायता से किसी एक स्टेशन पर उत्पन्न हुई ध्वनि तरंगें सारी पृथ्वी पर कुछ ही क्षणों में यात्रा कर सकती हैं। लेकिन ध्वनि तो आकाश से उत्पन्न होती है, और जैसा पहले बताया जा चुका है, मन आकाश से भी सूक्ष्म है और बुद्धि मन से भी सूक्ष्म होती है। आत्मा बुद्धि से भी सूक्ष्म है और स्वभाव से ही यह पदार्थ से पूर्णत: भिन्न है। इस प्रकार हम कल्पना कर सकते हैं कि आत्मा कितनी तेजी से पूरे ब्रह्माण्ड में यात्रा कर सकता है।

मन, बुद्धि तथा आत्मा को नियन्त्रित करने की अवस्था तक पहुँचने के लिए उपयुक्त प्रशिक्षण, उपयुक्त जीवन-शैली तथा उपयुक्त संग की आवश्यकता होती है। ऐसा प्रशिक्षण निश्छल प्रार्थना, भक्ति, योग-सिद्धि में सफलता एवं आत्मा तथा परमात्मा के कार्यकलापों में तादात्म्य पर आश्रित है। कोई निपट

भौतिकतावादी चाहे वह अनुभववादी दार्शनिक हो, वैज्ञानिक हो, मनोवैज्ञानिक या कुछ भी हो, वह कुण्ठित प्रयासों तथा वाग्जाल के माध्यम से ऐसी सफलता प्राप्त नहीं कर सकता।

जो भौतिकतावादी लोग यज्ञ करते हैं, वे उन निपट भौतिकतावादियों से अच्छे हैं, जो प्रयोगशालाओं और परीक्षण-नलियों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं जानते। यज्ञ करने वाले ऐसे उन्नत भौतिकतावादी वैश्वानर नामक ग्रह पर पहुँच सकते हैं, जो सूर्य जैसा अग्निमय ग्रह है। यह ग्रह ब्रह्माण्ड के सर्वोच्च ग्रह ब्रह्मलोक के रास्ते में पड़ता है और इस ग्रह पर ऐसा उन्नत भौतिकतावादी अपने सारे पापों तथा उनके प्रभावों से अपने आपको मुक्त कर सकता है। जब ऐसा भौतिकतावादी शुद्ध हो जाता है, तो वह ध्रुवलोक के परिक्रमा पथ तक पहुँच सकता है। इस परिक्रमा पथ को शिशुमार चक्र कहते हैं। इसी में ब्रह्माण्ड के आदित्य लोक तथा वैकुण्ठ-लोक स्थित हैं।

ऐसा शुद्ध भौतिकतावादी, जिसने अनेक यज्ञ किये हैं, घोर तपस्या की है और अपना अधिकांश धन दान में दे दिया है, वही ध्रुवलोक जैसे लोकों को जा सकता है। यदि वहाँ पर वह और अधिक योग्य बन जाता है, तो वह और ऊँचे परिक्रमा पथों को बेधकर ब्रह्माण्ड की नाभि से ऊपर उठकर महर्लोक पहुँच सकता है, जहाँ भृगु मुनि जैसे मुनियों का वास है। महर्लोक में इस ब्रह्माण्ड के आंशिक प्रलय-काल तक रहा जा सकता है। यह प्रलय तब प्रारम्भ होता है, जब इस ब्रह्माण्ड के सबसे निम्न भाग से अनन्तदेव धधकती अग्नि उत्पन्न करते हैं। इस अग्नि की ऊष्मा महर्लोक तक पहुँच जाती है। तब महर्लोक के निवासी ब्रह्मलोक पहुँच जाते हैं, जिसका अस्तित्व *परार्ध* काल की दुगुनी अवधि तक रहता है।

ब्रह्मलोक में असंख्य विमान हैं, जो यन्त्रों से नहीं, अपितु मन्त्रों से चलते हैं। ब्रह्मलोक में मन तथा बुद्धि की उपस्थिति के कारण इसके निवासियों को सुख तथा दुःख की अनुभूति होती है, लेकिन वृद्धावस्था, मृत्यु, भय या दुःख के लिए शोक करने का कोई कारण नहीं होता। किन्तु वे प्रलय की अग्नि में जलते दुःखी जीवों के प्रति करुणा-भाव का अनुभव करते हैं। ब्रह्मलोक के निवासियों के पास स्थूल भौतिक शरीर नहीं होते, जिन्हें मृत्यु आने पर बदलना

पड़े, किन्तु वे अपने सूक्ष्म शरीरों को आध्यात्मिक शरीरों में परिणत करते हैं और परव्योम में प्रवेश करते हैं। ब्रह्मलोक के निवासी तीन प्रकार से पूर्णता प्राप्त कर सकते हैं। अपने पुण्यकर्मों के बल पर ब्रह्मलोक पहुँचने वाले पुण्यात्मा ब्रह्मा के पुनर्जीवन के बाद विभिन्न ग्रहों के स्वामी बनते हैं। गर्भोदकशायी विष्णु की पूजा करने वाले लोग ब्रह्मा के साथ मुक्ति-लाभ करते हैं और भगवान् के शुद्ध भक्त तुरन्त ही ब्रह्माण्ड के आवरण को भेदकर परव्योम में प्रवेश करते हैं।

असंख्य ब्रह्माण्ड बुलबुलों के समूह के समान एकसाथ विद्यमान हैं, अतएव उनमें से कुछ ही कारण सागर के जल से घिरे हुए हैं। कारणोदकशायी विष्णु के दृष्टिपात से आंदोलित होकर भौतिक प्रकृति सारे के सारे आठ तत्त्वों को उत्पन्न करती है, जो धीरे धीरे सूक्ष्म से स्थूल में विकसित होते जाते हैं। अहंकार का एक अंश आकाश है, इसका एक अंश वायु है, वायु का एक अंश अग्नि है, अग्नि का एक अंश जल है और जल का एक अंश पृथ्वी है। इस प्रकार एक ब्रह्माण्ड फूल कर ४ अरब मील व्यास का हो जाता है। जो योगी क्रमिक मुक्ति चाहता है, उसे ब्रह्माण्ड के सारे विभिन्न आवरणों को भेदना पड़ता है, जिसमें भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों के सूक्ष्म आवरण भी सम्मिलित हैं। जो ऐसा कर लेता है, उसे फिर कभी इस मर्त्य लोक में आना नहीं पड़ता।

शुकदेव गोस्वामी के अनुसार भौतिक तथा आध्यात्मिक आकाशों का यह विवरण न तो काल्पनिक है, न आदर्शवादी। वैदिक स्तोत्रों में वास्तविक तथ्य अंकित किये जाते हैं और जब ब्रह्मा ने भगवान् वासुदेव को प्रसन्न कर लिया था, तब उन्होंने ये तथ्य ब्रह्मा को बतलाए थे। किसी को जीवन की पूर्णता तभी मिल सकती है, जब उसे वैकुण्ठ तथा भगवान् का निश्चित ज्ञान हो। मनुष्य को चाहिए कि वह सदैव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का चिन्तन एवं वर्णन करे, क्योंकि *भगवद्गीता* तथा *भागवत पुराण* दोनों में इसकी संस्तुति की गई है और ये दोनों ग्रंथ वेदों के प्रामाणिक भाष्य हैं। भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने इन सभी विषयों को इस युग के पतितात्माओं द्वारा अपनाने हेतु सुलभ बनाया है और *श्रीचैतन्य-चरितामृत* में उन्हें इसीलिए प्रस्तुत किया गया है, जिससे सम्बन्धित सभी लोग उन्हें सरलता से समझ सकें।

মথুরা-দ্বারকায় নিজ-রূপ প্রকাশিয়া ।
নানা-রূপে বিলসয়ে চতুর্ব্যূহ হৈঞা ॥২৩॥

मथुरा-द्वारकाय निज-रूप प्रकाशिया ।
नाना-रूपे विलसये चतुर्व्यूह हैञा ॥ २३ ॥

मथुरा—मथुरा में; **द्वारकाय**—द्वारका में; **निज-रूप**—निजी रूप; **प्रकाशिया**—प्रकट करते हुए; **नाना-रूपे**—नाना प्रकार से; **विलसये**—लीलाओं का आनन्द लेते हैं; **चतुः-व्यूह हैञा**—चतुर्व्यूह रूपों में विस्तार करके।

अनुवाद

भगवान् कृष्ण अपने निजी रूप को मथुरा तथा द्वारका में प्रकाशित करते हैं। वे चतुर्व्यूह रूपों में अपना विस्तार करके नाना प्रकार से लीलाओं का आनन्द लेते हैं।

বাসুদেব-সঙ্কর্ষণ-প্রদ্যুম্নানিরুদ্ধ ।
সর্ব-চতুর্ব্যূহ-অংশী, তুরীয়, বিশুদ্ধ ॥২৪॥

वासुदेव-सङ्कर्षण-प्रद्युम्नानिरुद्ध ।
सर्व-चतुर्व्यूह-अंशी, तुरीय, विशुद्ध ॥ २४ ॥

वासुदेव—भगवान् वासुदेव; **सङ्कर्षण**—भगवान् संकर्षण; **प्रद्युम्न**—भगवान् प्रद्युम्न; **अनिरुद्ध**—तथा भगवान् अनिरूद्ध; **सर्व-चतुः-व्यूह**—सभी चतुर्व्यूह विस्तारों के; **अंशी**—स्रोत; **तुरीय**—दिव्य; **विशुद्ध**—विशुद्ध।

अनुवाद

वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध—ये चार मूल चतुर्व्यूह रूप हैं, जिनसे अन्य सारे चतुर्व्यूह रूप प्रकट होते हैं। वे सभी शुद्ध रूप से दिव्य हैं।

এই তিন লোকে কৃষ্ণ কেবল-লীলা-ময় ।
নিজ-গণ লঞা খেলে অনন্ত সময় ॥২৫॥

एइ तिन लोके कृष्ण केवल-लीला-मय ।
निज-गण लञा खेले अनन्त समय ॥ २५ ॥

एइ—ये; **तिन**—तीन; **लोके**—स्थानों में; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **केवल**—केवल; **लीला-मय**—लीला से पूर्ण; **निज-गण लञा**—अपने निजी पार्षदों सहित; **खेले**—वे खेलते हैं; **अनन्त समय**—असीम समय तक।

अनुवाद

केवल इन्हीं तीन स्थानों में (द्वारका, मथुरा तथा गोकुल में) लीलामय भगवान् कृष्ण अपने निजी संगियों के साथ अनन्त लीलाएँ करते हैं।

पर-व्योम-मध्ये करि' स्वरूप प्रकाश ।
नारायण-रूपे करेन विविध विलास ॥२६॥

पर-व्योम-मध्ये करि' स्वरूप प्रकाश ।
नारायण-रूपे करेन विविध विलास ॥ २६ ॥

पर-व्योम-मध्ये—आध्यात्मिक आकाश के बीच; **करि'**—करके; **स्वरूप प्रकाश**—अपनी पहचान प्रकट करके; **नारायण-रूपे**—भगवान् नारायण के रूप में; **करेन**—करते हैं; **विविध विलास**—विविध लीलाएँ।

अनुवाद

परव्योम के वैकुण्ठ-लोकों में भगवान् नारायण रूप में प्रकट होते हैं और नाना प्रकार से लीलाएँ करते हैं।

स्वरूप-विग्रह कृष्णेर केवल द्वि-भुज ।
नारायण-रूपे सेइ तनु चतुर्भुज ॥२७॥
शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म, महैश्वर्य-मय ।
श्री-भू-नीला-शक्ति याँर चरण सेवय ॥२८॥

स्वरूप-विग्रह कृष्णेर केवल द्वि-भुज ।
नारायण-रूपे सेइ तनु चतुर्भुज ॥ २७ ॥
शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म, महैश्वर्य-मय ।
श्री-भू-नीला-शक्ति याँर चरण सेवय ॥ २८ ॥

स्वरूप-विग्रह—स्वरूप विग्रह; **कृष्णेर**—भगवान् कृष्ण का; **केवल**—केवल; **द्वि-भुज**—द्विभुज; **नारायण-रूपे**—भगवान् नारायण के रूप में; **सेइ**—वह; **तनु**—शरीर; **चतुः-भुज**—चतुर्भुज; **शङ्ख-चक्र**—शंख तथा चक्र; **गदा**—गदा; **पद्म**—कमल पुष्प; **महा**—महान्;

ऐश्वर्य-मय—ऐश्वर्य से पूर्ण; **श्री**—श्री नामक; **भू**—भू नामक; **नीला**—नील नामक; **शक्ति**—शक्तियाँ; **याँर**—जिनकी; **चरण सेवय**—चरणकमलों की सेवा करती हैं।

अनुवाद

कृष्ण के निजी रूप में केवल दो भुजाएँ होती हैं, किन्तु उनके नारायण रूप में चार भुजाएँ रहती हैं। भगवान् नारायण शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण करते हैं और वे परम ऐश्वर्यमय हैं। श्री, भू तथा नीला नामक शक्तियाँ उनके चरणकमलों की सेवा करती हैं।

तात्पर्य

वैष्णवधर्म के रामानुज तथा मध्व सम्प्रदायों में श्री, भू तथा नीला शक्तियों का विस्तृत वर्णन मिलता है। बंगाल में नीला शक्ति को कभी-कभी लीला-शक्ति कहा जाता है। ये तीनों शक्तियाँ वैकुण्ठ में चतुर्भुज नारायण की सेवा में लगी रहती हैं। श्री सम्प्रदाय के *प्रपन्नामृत* ग्रंथ में तीन आलवारों की कथा है, जिसमें बतलाया गया है कि भूत योगी, सर योगी तथा भ्रान्त योगी—इन तीन आलवारों ने किस तरह गेहली नामक गाँव में साक्षात् चतुर्भुज नारायण का दर्शन किया। इस ग्रन्थ में नारायण का वर्णन इस प्रकार मिलता है :

तार्क्ष्याधिरूढं तडिदम्बुदाभं
लक्ष्मीधरं वक्षसि पङ्कजाक्षम्।
हस्तद्वयेशोभितशङ्खचक्रं
विष्णुं ददृशुर्भगवन्तमाद्यम्॥
आजानुबाहुं कमनीयगात्रं
पार्श्वद्वये शोभितभूमिनीलम्।
पीताम्बरं भूषणभूषिताङ्गं
चतुर्भुजं चन्दनरुषिताङ्गम्॥

"उन्होंने गरुड़ पर आसीन कमलनेत्र भगवान् विष्णु को लक्ष्मी को अपने वक्षस्थल पर लगाये देखा। वे बिजली की चमक से युक्त नीले बादल के समान थे और वे अपनी चार भुजाओं में से दो में शंख तथा चक्र धारण किये हुए थे। उनकी भुजाएँ घुटने के नीचे तक थीं और उनके सभी सुन्दर अंग चन्दन से लेपित थे तथा चमकते आभूषणों से अलंकृत थे। वे पीताम्बर धारण किये हुए

थे और उनके पीछे दोनों ओर भूमि तथा नीला नामक उनकी शक्तियाँ खड़ी थीं।"

सीतोपनिषद् में श्री, भू तथा नीला नामक शक्तियों का उल्लेख इस प्रकार मिलता है—महालक्ष्मीर्देवेशस्य भिन्नाभिन्नरूपा चेतनाचेतनात्मिका। सा देवी त्रिविधा भवति—शक्त्यात्मना इच्छाशक्तिः क्रियाशक्तिः साक्षाच्छक्तिरिति। इच्छाशक्तिस्त्रिविधा भवति, श्री-भूमि-नीलात्मिका। "भगवान् की सर्वोपरि शक्ति महालक्ष्मी विविध प्रकारों से अनुभव की जाती हैं। वे भौतिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों में विभाजित हैं और दोनों ही रूपों में वे इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति तथा अन्तरंगा शक्ति के रूप में कार्य करती हैं। इच्छाशक्ति पुनः तीन में विभाजित है। ये हैं—श्री, भू तथा नीला।"

भगवद्गीता (४.६) के अपने भाष्य में मध्वाचार्य ने शास्त्रों का प्रमाण देते हुए बतलाया है कि माता भौतिक प्रकृति, जिसका विचार मायाशक्ति दुर्गा के रूप में किया जाता है, तीन विभागों में विभाजित है—*श्री, भू* तथा *नीला*। वह उन लोगों के लिए भ्रामक शक्ति माया है, जो आध्यात्मिक शक्ति में कमजोर हैं, क्योंकि ऐसी शक्तियाँ भगवान् विष्णु द्वारा उत्पन्न शक्तियाँ हैं। यद्यपि प्रत्येक शक्ति का असीम से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं होता, किन्तु वे भगवान् के आश्रित हैं, क्योंकि भगवान् सभी शक्तियों के स्वामी हैं।

अपने *भगवत् सन्दर्भ* ग्रन्थ (श्लोक २३) में श्रील जीव गोस्वामी प्रभु कहते हैं, " *पद्मपुराण* भगवान् के नित्य मंगल धाम का उल्लेख करता है, जो समस्त ऐश्वर्यों से पूर्ण है, जिनमें *श्री, भू* तथा *नीला* शक्तियाँ भी सम्मिलित हैं। *महा-संहिता* जिसमें भगवान् के दिव्य नाम तथा रूप की व्याख्या की गई है, उसमें भी जीवों के प्रसंग में दुर्गा का परमात्मा की शक्ति के रूप में उल्लेख है। अन्तरंगा शक्ति का सम्बन्ध उनके निजी कार्यों से है और भौतिक शक्ति तीन गुणों को प्रकट करती है।" वे अन्य प्रामाणिक शास्त्रों का प्रमाण देते हुए बतलाते हैं कि *श्री* भगवान् की वह शक्ति है, जो ब्रह्माण्ड का पालन करती है, *भू* ब्रह्माण्ड की सर्जक शक्ति है और *नीला* या दुर्गा सृष्टि का संहार करने वाली शक्ति है। ये सारी शक्तियाँ जीवों पर लागू होती हैं और ये मिलकर *जीव-माया* कहलाती हैं।

यद्यपि केवल ताँर क्रीड़ा-मात्र धर्म ।
तथापि जीवेरे कृपाय करे एक कर्म ॥२९॥

यद्यपि केवल ताँर क्रीड़ा-मात्र धर्म ।
तथापि जीवेरे कृपाय करे एक कर्म ॥ २९ ॥

यद्यपि—यद्यपि; **केवल**—केवल; **ताँर**—उनकी; **क्रीड़ा-मात्र**—लीला मात्र; **धर्म**—लक्षण; **तथापि**—तथापि; **जीवेरे**—पतित आत्माओं को; **कृपाय**—अहैतुकी कृपा से; **करे**—करते हैं; **एक**—एक; **कर्म**—कार्य।

अनुवाद

यद्यपि उनकी लीलाएँ उनके एकमात्र विशेष कार्य हैं, किन्तु वे अपनी अहैतुकी कृपा से पतितात्माओं के लिए एक कार्य करते हैं।

सालोक्य-सामीप्य-सार्ष्टि-सारूप्य-प्रकार ।
चारि मुक्ति दिया करे जीवेर निस्तार ॥३०॥

सालोक्य-सामीप्य-सार्ष्टि-सारूप्य-प्रकार ।
चारि मुक्ति दिया करे जीवेर निस्तार ॥ ३० ॥

सालोक्य—सोलोक्य मुक्ति; **सामीप्य**—सामीप्य मुक्ति; **सार्ष्टि**—सार्ष्टि मुक्ति; **सारूप्य**—सारूप्य मुक्ति; **प्रकार**—प्रकार; **चारि**—चार; **मुक्ति**—मुक्ति; **दिया**—देना; **करे**—करते हैं; **जीवेर**—पतित आत्माओं का; **निस्तार**—उद्धार।

अनुवाद

वे पतितात्माओं को चार प्रकार की मुक्ति—सालोक्य, सामीप्य, सार्ष्टि तथा सारूप्य—प्रदान करके उनका उद्धार करते हैं।

तात्पर्य

मुक्तात्मा दो प्रकार के होते हैं—एक वे जो भगवान् की कृपा से मुक्त होते हैं और दूसरे वे जो अपने प्रयास से मुक्त होते हैं। जो व्यक्ति अपने प्रयासों से मुक्त होता है, वह निर्विशेषवादी कहलाता है और वह ब्रह्मज्योति में लीन हो जाता है। किन्तु वे भगवद्भक्त जो भक्ति द्वारा मुक्ति-लाभ करते हैं, उन्हें चार प्रकार की मुक्तियाँ प्रदान की जाती हैं। ये हैं—सालोक्य (भगवान् के समान पद), सामीप्य (भगवान् का निरन्तर सान्निध्य), सार्ष्टि (भगवान् के ही समान ऐश्वर्य) तथा सारूप्य (भगवान् जैसा रूप)।

ব্রহ্ম-সাযুজ্য-মুক্তের তাহা নাহি গতি ।
বৈকুণ্ঠ-বাহিরে হয় তা'-সবার স্থিতি ॥৩১॥

ব্রহ্ম-সাযুজ্য-মুক্তের তাহা নাহি গতি ।
বৈকুণ্ঠ-বাহিরে হয় তা'-সবার স্থিতি ॥ ৩১ ॥

ব্রহ্ম-সাযুজ্য—পরম ব্রহ্ম में लीन होना; **মুক্তের**—मुक्ति का; **তাহা**—वहाँ (वैकुण्ठ में); **নাহি**—नहीं; **গতি**—प्रवेश; **বৈকুণ্ঠ-বাহিরে**—वैकुण्ठ लोकों के बाहर; **হয়**—है; **তা'-সবার স্থিতি**—उन सबका निवास।

अनुवाद

जिन्हें ब्रह्म-सायुज्य मुक्ति प्राप्त होती है, वे वैकुण्ठ-लोक में प्रविष्ट नहीं हो सकते। उनका निवास वैकुण्ठ-लोक के बाहर होता है।

বৈকুণ্ঠ-বাহিরে এক জ্যোতির্ময় মণ্ডল ।
কৃষ্ণের অঙ্গের প্রভা, পরম উজ্জ্বল ॥৩২॥

বৈকুণ্ঠ-বাহিরে এক জ্যোতির্ময় মণ্ডল ।
কৃষ্ণের অঙ্গের প্রভা, পরম উজ্জ্বল ॥ ৩২ ॥

বৈকুণ্ঠ-বাহিরে—वैकुण्ठ लोकों के बाहर; **এক**—एक; **জ্যোতিঃ-ময় মণ্ডল**—ज्योतिमय मण्डल; **কৃষ্ণের**—भगवान् कृष्ण के; **অঙ্গের**—शरीर की; **প্রভা**—किरणें; **পরম**—परम; **উজ্জ্বল**—चमकीली, उज्ज्वल।

अनुवाद

वैकुण्ठ-लोक के बाहर दीप्तियुक्त तेज का वायुमण्डल है, जो भगवान् कृष्ण के शरीर की परम उज्ज्वल किरणों से बना होता है।

'সিদ্ধ-লোক' নাম তার প্রকৃতির পার ।
চিন্স্বরূপ, তাঁহা নাহি চিচ্ছক্তি বিকার ॥৩৩॥

'সিদ্ধ-লোক' নাম তার প্রকৃতির পার ।
চিৎস্বরূপ, তাঁহা নাহি চিচ্ছক্তি বিকার ॥ ৩৩ ॥

'সিদ্ধ-লোক'—सिद्ध लोक; **নাম**—नामक; **তার**—ज्योतिर्मय मण्डल का; **প্রকৃতির পার**—इस भौतिक प्रकृति से परे; **চিৎ-স্বরূপ**—ज्ञान से भरपूर; **তাঁহা**—वहाँ; **নাহি**—नहीं है; **চিৎ-শক্তি-বিকার**—दिव्य शक्ति की विविधता।

अनुवाद

यह भाग सिद्धलोक कहलाता है और भौतिक प्रकृति के परे होता है। यह आध्यात्मिक होता है, किन्तु इसमें आध्यात्मिक विविधता नहीं रहती।

सूर्य-मण्डल येन बाहिरे निर्विशेष ।
भितरे सूर्यर रथ-आदि सविशेष ॥ ३४ ॥

सूर्य-मण्डल येन बाहिरे निर्विशेष ।
भितरे सूर्यर रथ-आदि सविशेष ॥ ३४ ॥

सूर्य-मण्डल—सूर्य मण्डल; **येन**—की भाँति; **बाहिरे**—बाहर से; **निर्विशेष**—निर्विशेष, विविधताहीन; **भितरे**—भीतर; **सूर्यर**—सूर्यदेव के; **रथ-आदि**—रथ एवं अन्य वस्तुओं का ऐश्वर्य; **स-विशेष**—विविधता सहित।

अनुवाद

यह सूर्य के चारों ओर पाये जाने वाले समरूप तेज के समान है। किन्तु सूर्य के भीतर रथ, घोड़े तथा सूर्यदेव के अन्य ऐश्वर्य रहते हैं।

तात्पर्य

कृष्ण के धाम वैकुण्ठ के बाहर, जिसे परव्योम कहते हैं, कृष्ण की शारीरिक किरणों का प्रकाशमान तेज रहता है। यह *ब्रह्मज्योति* कहलाता है। उस तेज का दिव्य क्षेत्र सिद्धलोक या ब्रह्मलोक कहलाता है। जब निर्विशेषवादियों को मुक्ति-लाभ मिलता है, तो वे इसी ब्रह्मलोक के तेज में मिल जाते हैं। यह दिव्य क्षेत्र निस्सन्देह आध्यात्मिक है, किन्तु इसमें आध्यात्मिक कार्यकलापों या विविधता की अभिव्यक्ति नहीं होती। इसकी उपमा सूर्य की चमक से दी जाती है। सूर्य की चमक के भीतर सूर्य का गोला होता है, जिसमें सभी प्रकार की विविधता रहती है।

कामाद्द्वेषाद्भयात्स्नेहाद् यथा भक्त्येश्वरे मनः ।
आवेश्य तदघं हित्वा बहवस्तदगतिं गताः ॥ ३५ ॥

कामाद्द्वेषाद्भयात्स्नेहाद् यथा भक्त्येश्वरे मनः ।
आवेश्य तदघं हित्वा बहवस्तद्गतिं गताः ॥ ३५ ॥

कामात्—वासना से प्रभावित; **द्वेषात्**—द्वेष से; **भयात्**—भय से; **स्नेहात्**—स्नेह से; **यथा**—जैसे; **भक्त्या**—भक्ति से; **ईश्वरे**—भगवान् में; **मनः**—मन; **आवेश्य**—पूर्णतः लगाकर; **तत्**—वह; **अघम्**—पापमय कर्म; **हित्वा**—त्यागकर; **बहवः**—बहुत से; **तत्**—वह; **गतिम्**—गन्तव्य स्थान; **गताः**—पहुँचकर।

अनुवाद

"जिस तरह भगवान् की भक्ति से भगवद्धाम प्राप्त किया जा सकता है, उसी तरह कइयों ने अपने पापमय कर्मों को त्यागकर तथा काम, क्रोध, भय या स्नेह के द्वारा अपने मन को भगवान् में लगाकर उसी गति को प्राप्त किया है।"

तात्पर्य

जिस प्रकार शक्तिशाली सूर्य अपनी प्रखर किरणों से सभी प्रकार की गन्दगी को शुद्ध कर सकता है, उसी प्रकार पूर्ण दिव्यरूप भगवान् उस मनुष्य के सारे भौतिक गुणों को शुद्ध कर सकते हैं, जिसे वे आकृष्ट करते हैं। यहाँ तक कि यदि कोई व्यक्ति भगवान् के प्रति सांसारिक वासना से प्रभावित होकर भी आकृष्ट होता है, तो ऐसा आकर्षण भगवान् की कृपा से आध्यात्मिक प्रेम में परिणत हो जाता है। इसी तरह यदि कोई भय तथा शत्रुतावश भगवान् के प्रति आकृष्ट होता है, तो वह भी भगवान् के आध्यात्मिक आकर्षण द्वारा शुद्ध हो जाता है। यद्यपि ईश्वर महान् हैं और जीव तुच्छ है, फिर भी वे दोनों आध्यात्मिक व्यक्ति हैं। अतएव ज्योंही जीव की स्वतन्त्र इच्छा से पारस्परिक भाव विनिमय होने लगता है, त्योंही वे महान् दिव्य पुरुष उस क्षुद्र जीव को आकर्षित करते हैं और इस तरह उसे भव-बन्धन से छुड़ा लेते हैं। यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (७.१.३०) से लिया गया है।

यदरीणां प्रियाणां च प्राप्यमेकमिवोदितम् ।
तद्ब्रह्म-कृष्णयोरैक्यात्किरणार्कोपमा-जुषोः ॥ ३६॥

यदरीणां प्रियाणां च प्राप्यमेकमिवोदितम् ।
तद्ब्रह्म-कृष्णयोरैक्यात्किरणार्कोपमा-जुषोः ॥ ३६॥

यत्—वह; **अरीणाम्**—भगवान् के शत्रुओं का; **प्रियाणाम्**—भक्तों का जो भगवान् को

अत्यन्त प्रिय हैं; **च**—तथा; **प्राप्यम्**—गन्तव्य स्थान; **एकम्**—एक ही; **इव**—इस तरह; **उदितम्**—कहाँ; **तत्**—वह; **ब्रह्म**—निर्विशेष ब्रह्म का; **कृष्णयोः**—और भगवान् कृष्ण का; **ऐक्यात्**—एकत्व के कारण; **किरण**—सूर्यकिरणें, धूप; **अर्क**—और सूर्य; **उपमा**—उपमा, तुलना; **जुषोः**—से समझी जाती है।

अनुवाद

"जहाँ यह कहा गया है कि भगवान् के शत्रु तथा भक्त एक ही गति प्राप्त करते हैं, वहाँ इसका आशय यह है कि ब्रह्म तथा भगवान् कृष्ण अन्ततः एक ही हैं। इसे सूर्य तथा सूर्य-प्रकाश के दृष्टान्त से समझा जा सकता है, जिसमें ब्रह्म सूर्य-प्रकाश के समान है और स्वयं कृष्ण सूर्य के समान हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक *भक्तिरसामृत-सिन्धु* (१.२.२७८) से लिया गया है। इसके रचयिता श्रील रूप गोस्वामी ने इसी विषय की और अधिक व्याख्या *लघु भागवतामृत* (पूर्व ५.४१) में की है। उसमें वे *विष्णु पुराण* (४.१५.१) का उल्लेख करते हैं, जिसमें मैत्रेय मुनि ने जय तथा विजय के बारे में पराशर से यह पूछा कि हिरण्यकशिपु किस तरह अगले जन्म में रावण बना और देवताओं से अधिक भौतिक सुख भोग करता रहा, किन्तु उसने मुक्ति प्राप्त नहीं की, यद्यपि जब वह शिशुपाल के रूप में उत्पन्न हुआ और कृष्ण से कलह करने पर मारा गया, तो उसने मुक्ति प्राप्त की और वह कृष्ण के शरीर में लीन हो गया। इसका उत्तर पराशर ने यह दिया कि हिरण्यकशिपु भगवान् नृसिंहदेव को पहचान नहीं पाया कि वे भगवान् विष्णु थे। उसने सोचा कि नृसिंहदेव कोई सामान्य जीव हैं, जिसने अपने विविध पुण्यकर्मों से ऐसा ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया है। रजोगुण के वशीभूत होकर उसने नृसिंहदेव के स्वरूप को न जानते हुए उन्हें सामान्य जीव मान लिया था। फिर भी नृसिंहदेव के हाथों मारे जाने के कारण हिरण्यकशिपु अगले जीवन में रावण बना और असीम ऐश्वर्य का स्वामी बना। अपने असीम भौतिक भोग-विलास के कारण रावण राम को भगवान् के रूप में स्वीकार नहीं कर सका। इसीलिए राम के हाथों मारे जाने पर भी रावण ने *सायुज्य* प्राप्त नहीं किया अर्थात् भगवान् के शरीर में लीन होकर

एकाकार नहीं हो सका। रावण के रूप में वह राम की पत्नी जानकी के प्रति अत्यधिक आकृष्ट था और इसी आकर्षण के कारण वह राम का दर्शन प्राप्त कर सका। किन्तु राम को विष्णु के अवतार के रूप में स्वीकार न करने के कारण रावण ने उन्हें एक सामान्य जीव समझा। इसीलिए जब वह राम के हाथों मारा गया, तो उसे शिशुपाल के रूप में जन्म लेने का अवसर मिला, जिसके पास इतना ऐश्वर्य था कि वह अपने आपको कृष्ण का प्रतियोगी मानने लगा था। यद्यपि शिशुपाल कृष्ण से सदैव द्वेष रखता था, किन्तु वह बारम्बार कृष्ण का नाम लेता रहता था और कृष्ण के सुन्दर स्वरूप का सदैव चिन्तन करता था। इस प्रकार कृष्ण का निरन्तर चिन्तन और नाम उच्चारण करते रहने से, प्रतिकूल भाव से ही सही, वह अपने पापमय कर्मों के कल्मष से शुद्ध हो गया। जब शिशुपाल अपने शत्रु कृष्ण के चक्र द्वारा मारा गया, तो कृष्ण के निरन्तर स्मरण करने के कारण उसके सारे पापफल धुल गये और वह कृष्ण के शरीर में लीन होकर मोक्ष का भागी बना।

इस घटना से यह समझना चाहिए कि जो व्यक्ति कृष्ण को अपना शत्रु मानता है और उनके हाथों मारा जाता है, वह भी मोक्ष प्राप्त करके कृष्ण से तदाकार हो सकता है। तो फिर उन भक्तों की तो बात ही क्या, जो कृष्ण को सदैव अनुकूल भाव से अपने स्वामी या मित्र मानते हैं? इन भक्तों को कृष्ण के शारीरिक तेज ब्रह्मलोक से भी अच्छा स्थान प्राप्त होना चाहिए। भक्तगण उस निर्विशेष ब्रह्मतेज में स्थित नहीं हो सकते, जिसमें निर्विशेषवादी तदाकार होना चाहते हैं। भक्तों को तो वैकुण्ठ-लोक या कृष्णलोक में स्थान दिया जाता है।

मैत्रेय मुनि तथा पराशर मुनि के बीच हुई यह वार्ता इस बात पर केन्द्रित थी कि क्या भक्तगण प्रत्येक युग में जय तथा विजय की भाँति इस भौतिक जगत् में आते रहते हैं, जिन्हें कुमारों ने ऐसा शाप दिया था। हिरण्यकशिपु, रावण तथा शिशुपाल के विषय में मैत्रेय को उपदेश देते समय पराशर ने यह नहीं कहा कि ये असुर पूर्वजन्म में जय तथा विजय थे। उन्होंने तीन जन्मों के माध्यम से देहान्तरण का वर्णन-मात्र किया। यह आवश्यक नहीं कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के वैकुण्ठ के पार्षद सभी कल्पों में, जब-जब भगवान् अवतार लें, उनके

शत्रुओं की भूमिका निभाएँ। जय तथा विजय का "पतन" एक विशेष कल्प में हुआ था। वे प्रत्येक कल्प में असुर की भूमिका निभाने के लिए नहीं आते। यह सोचना नितान्त गलत होगा कि प्रत्येक कल्प में भगवान् के कुछ पार्षद असुर बनने के लिए वैकुण्ठ से अध:पतित होते हैं।

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में वे सारी प्रवृत्तियाँ होती हैं, जो जीव में पाई जाती हैं, क्योंकि वे प्रधान जीवन्त हस्ती हैं। इसीलिए यह स्वाभाविक है कि कभी-कभी भगवान् विष्णु युद्ध करना चाहते हैं। जिस प्रकार उनमें सृजन, भोग, सख्य, वत्सलता आदि की प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं, उसी तरह उनमें युद्ध करने की भी प्रवृत्ति होती है। कभी-कभी बड़े बड़े जमींदार तथा राजा लोग पहलवानों को रखते हैं, जिनसे वे क्रीड़ा-युद्ध करते हैं; उसी तरह विष्णु भी अपने लिए ऐसी व्यवस्था करते हैं। जो असुर इस भौतिक जगत् में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से युद्ध करते हैं, वे कभी-कभी उनके पार्षद होते हैं। जब असुरों की कमी हो जाती है और भगवान् युद्ध करना चाहते हैं, तो वे वैकुंठ के अपने कुछ पार्षदों को उकसाकर यहाँ पर आने और असुर की भूमिका अदा करने के लिए प्रेरित करते हैं। जब यह कहा जाता है कि शिशुपाल कृष्ण के शरीर में समा गया, तो यह ध्यान रखना चाहिए कि इस किस्से में वह जय या विजय न था, अपितु वास्तविक असुर था।

श्रील सनातन गोस्वामी ने अपने *बृहद्-भागवतामृत* ग्रन्थ में बतलाया है कि भगवान् के ब्रह्मतेज में एकाकार होकर मुक्ति प्राप्त करने को जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि नहीं माना जा सकता, क्योंकि कंस जैसे असुर, जो ब्राह्मणों तथा गौवों को मारने के लिए कुख्यात थे, उस मोक्ष को प्राप्त हुए। भक्तों के लिए ऐसा मोक्ष निन्दनीय है। भक्त वास्तव में दिव्य पद पर अवस्थित होते हैं, जबकि अभक्त नरक जाने के पात्र होते हैं। भक्त के जीवन में तथा असुर के जीवन में अन्तर होता है और उनकी अनुभूतियाँ उसी तरह पृथक् होती हैं, जिस तरह स्वर्ग और नरक के बीच अन्तर है।

असुर सदैव भक्तों से द्वेष रखते हैं और ब्राह्मणों तथा गायों का वध करते हैं। असुरों के लिए ब्रह्मतेज में तदाकार होना अत्यन्त महिमाशाली हो सकता है, किन्तु भक्तों के लिए यह नारकीय है। भक्त के जीवन का लक्ष्य पूर्ण

पुरुषोत्तम भगवान् की प्रेमाभक्ति में पूर्णता प्राप्त करना है। जो लोग ब्रह्मतेज में समा जाने की आकांक्षा रखते हैं, वे भी असुरों की तरह निन्दनीय हैं। जो भक्तगण भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में लगे रहकर उनका सान्निध्य प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं, वे बेहतर हैं।

तैछे पर-व्योमे नाना चिच्छक्ति-विलास ।
निर्विशेष ज्योतिर्बिम्ब बाहिरे प्रकाश ॥ ३७॥

तैछे पर-व्योमे नाना चिच्छक्ति-विलास ।
निर्विशेष ज्योतिर्बिम्ब बाहिरे प्रकाश ॥ ३७॥

तैछे—उस तरह; **पर-व्योमे**—परव्योम में; **नाना**—विविधताएँ; **चित्-शक्ति-विलास**—आध्यात्मिक शक्ति की लीलाएँ; **निर्विशेष**—निर्विशेष; **ज्योतिः**—ज्योति का; **बिम्ब**—प्रतिबिम्ब; **बाहिरे**—बाह्य रूप से; **प्रकाश**—प्रकट होता हैं।

अनुवाद

इस तरह परव्योम में आध्यात्मिक शक्ति के अन्तर्गत अनेक प्रकार की लीलाएँ होती हैं। वैकुण्ठ-लोकों के बाहर प्रकाश का निर्विशेष प्रतिबिम्ब प्रकट होता है।

निर्विशेष-ब्रह्म सेइ केवल ज्योतिर्मय ।
सायुज्यर अधिकारी ताँहा पाय लय ॥ ३८॥

निर्विशेष-ब्रह्म सेइ केवल ज्योतिर्मय ।
सायुज्येर अधिकारी ताँहा पाय लय ॥ ३८॥

निर्विशेष-ब्रह्म—निर्विशेष ब्रह्मज्योति; **सेइ**—वह; **केवल**—केवल; **ज्योतिः-मय**—ज्योतिर्मय किरणें; **सायुज्येर**—सायुज्य मुक्ति(भगवान् से तदाकार होना); **अधिकारी**—जो इसके लिए योग्य है; **ताँहा**—वहाँ (निर्विशेष ब्रह्मज्योति में); **पाय**—पाता है; **लय**—लीन होना।

अनुवाद

उस निर्विशेष ब्रह्मतेज में केवल भगवान् की तेजोमय किरणें होती हैं। जो लोग सायुज्य मुक्ति के लिए उपयुक्त होते हैं, वे उस तेज में समा जाते हैं।

सिद्ध-लोकन्तु तमसः पारे यत्र वसन्ति हि ।
सिद्धा ब्रह्म-सुखे मग्ना दैत्याश्च हरिणा हताः ॥ ३९॥

सिद्ध-लोकस्तु तमसः पारे यत्र वसन्ति हि ।
सिद्धा ब्रह्म-सुखे मग्ना दैत्याश्च हरिणा हताः ॥ ३९ ॥

सिद्ध-लोकः—सिद्धलोक अथवा निर्विशेष ब्रह्म; **तु**—किन्तु; **तमसः**—अन्धकार का; **पारे**—के अधिकार क्षेत्र से परे; **यत्र**—जहाँ; **वसन्ति**—बसते हैं; **हि**—निश्चय ही; **सिद्धाः**—आध्यात्मिक रूप से पूर्ण; **ब्रह्म-सुखे**—परम पूर्ण के साथ एवं होने का दिव्य सुख; **मग्नाः**—लीन; **दैत्याः च**—तथा असुरगण; **हरिणा**—भगवान् से; **हताः**—मारे गये।

अनुवाद

"तमो क्षेत्र (भौतिक ब्रह्माण्ड) के परे सिद्धलोक का क्षेत्र स्थित है। वहाँ पर सिद्धगण ब्रह्मानन्द में मग्न होकर निवास करते हैं। भगवान् के द्वारा मारे गये असुर भी उसी क्षेत्र को प्राप्त करते हैं।"

तात्पर्य

तमस् का अर्थ है अन्धकार। भौतिक जगत् अन्धकारमय है और भौतिक जगत् के परे प्रकाश है। दूसरे शब्दों में, सम्पूर्ण भौतिक आकाश को पार करके प्रकाशमान परव्योम में पहुँचा जाता है, जिसका निर्विशेष तेज सिद्धलोक कहलाता है। मायावादी दार्शनिक जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के शरीर में समा जाना चाहते हैं और कंस तथा शिशुपाल जैसे असुर व्यक्ति भी, जो कृष्ण के द्वारा मारे गये हैं, उसी ब्रह्मतेज में प्रवेश करते हैं। जो योगी पतञ्जलि की योग-पद्धति के अनुसार ध्यान द्वारा तादात्म्य प्राप्त करना चाहते हैं, वे भी उसी सिद्धलोक में पहुँचते हैं। यह श्लोक *ब्रह्माण्ड पुराण* से लिया गया है।

सेई पर-व्योमे नारायणेर चारि पाशे ।
द्वारका-चतुर्व्यूहेर द्वितीय प्रकाशे ॥ ४० ॥

सेइ पर-व्योमे नारायणेर चारि पाशे ।
द्वारका-चतुर्व्यूहेर द्वितीय प्रकाशे ॥ ४० ॥

सेइ—वह; **पर-व्योमे**—परव्योम में; **नारायणेर**—भगवान् नारायण की; **चारि पाशे**—चारों ओर; **द्वारका**—द्वारका; **चतुर्-व्यूहेर**—चार ओर का विस्तार; **द्वितीय**—दूसरा; **प्रकाशे**—प्राकट्य।

अनुवाद

उस परव्योम में नारायण के चारों ओर द्वारका के चतुर्व्यूह के द्वितीय विस्तार रहते हैं।

तात्पर्य

परव्योम में कृष्ण-धाम स्थित द्वारका के चतुर्व्यूह रूपों का दूसरा प्राकट्य विद्यमान है। ये सारे रूप आध्यात्मिक होते हैं और भौतिक गुणों से अप्रभावित रहने वाले होते हैं। इन रूपों में श्री बलदेव महासंकर्षण के रूप में प्रतिनिधित्व करते हैं।

परव्योम के सारे कार्य शुद्ध आध्यात्मिक स्थिति में अन्तरंगा शक्ति के द्वारा प्रकट होते हैं। वे छः दिव्य ऐश्वर्यों में विस्तार करते हैं और वे सभी समस्त जीवों के परम उद्गम तथा लक्ष्य महासंकर्षण की अभिव्यक्तियाँ हैं। आध्यात्मिक स्फुलिंग, जिन्हें जीव कहा जाता है, यद्यपि *जीवशक्ति* नामक तटस्था शक्ति से सम्बन्धित होते हैं, किन्तु वे भौतिक शक्ति के प्रभाव में रहते हैं। चूँकि ये स्फुलिंग भगवान् की अन्तरंगा तथा बहिरंगा दोनों ही शक्तियों से सम्बन्धित रहते हैं, अतएव ये तटस्था शक्ति से सम्बन्धित माने जाते हैं।

भगवान् का चतुर्व्युह, जो वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध नाम से विख्यात है, उस पर विचार करते हुए श्रीपाद शंकराचार्य की अध्यक्षता में मायावादियों ने *वेदान्त-सूत्र* की सूक्तियों की व्याख्या इस प्रकार की है, जो निर्विशेषवादी मत के अनुकूल हो। किन्तु वृन्दावन के छः गोस्वामियों में प्रधान श्रील रूप गोस्वामी ने अपने *लघु भागवतामृत* में, जो कि *वेदान्त-सूत्रों* की सूक्तियों का स्वाभाविक भाष्य है, इन निर्विशेषवादियों को सटीक उत्तर दिया है।

श्रील रूप गोस्वामी ने *लघु भागवतामृत* में पद्म पुराण से प्रमाण दिया है कि परव्योम में चार दिशाएँ हैं, जो पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण के अनुरूप हैं, जिनमें वासुदेव, संकर्षण, अनिरुद्ध तथा प्रद्युम्न स्थित हैं। ये ही रूप भौतिक आकाश में भी स्थित हैं। *पद्म पुराण* में परव्योम में वेदवतीपुर नामक स्थान का भी उल्लेख है, जहाँ वासुदेव निवास करते हैं। संकर्षण सत्यलोक से ऊपर आये हुए विष्णुलोक में निवास करते हैं। संकर्षण का अन्य नाम महासंकर्षण है।

प्रद्युम्न द्वारकापुर में निवास करते हैं और अनिरुद्ध क्षीर-सागर स्थित श्वेतद्वीप में *अनन्त शय्या* के नाम से प्रसिद्ध नित्य शेष-शय्या पर शयन करते हैं।

বাসুদেব-সঙ্কর্ষণ-প্রদ্যুম্নানিরুদ্ধ ।
'দ্বিতীয় চতুর্ব্যূহ' এই—তুরীয়, বিশুদ্ধ ॥৪১॥

वासुदेव-सङ्कर्षण-प्रद्युम्नानिरुद्ध ।
'द्वितीय चतुर्व्यूह' एइ—तुरीय, विशुद्ध ॥ ४१ ॥

वासुदेव—वासुदेव; **सङ्कर्षण**—संकर्षण; **प्रद्युम्न**—प्रद्युम्न; **अनिरुद्ध**—अनिरुद्ध; **द्वितीय चतुः-व्यूह**—दूसरा चतुर्व्यूह विस्तार; **एइ**—यह; **तुरीय**—दिव्य; **विशुद्ध**—सभी भौतिक प्रदूषण से रहित।

अनुवाद

इस द्वितीय चतुर्व्यूह में वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध आते हैं। वे नितान्त दिव्य हैं।

तात्पर्य

श्रीपाद शंकराचार्य ने *वेदान्त-सूत्र* के द्वितीय अध्याय के द्वितीय खण्ड की ४२वीं सूक्ति (*उत्पत्त्यसम्भवात्*) की व्याख्या में चतुर्व्यूह की पथभ्रष्ट करने वाली विवेचना की है। *श्रीचैतन्य-चरितामृत* के ४१ से ४७ वें श्लोक तक में श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी परम सत्य के व्यक्तिगत साकार रूप के विषय में श्रीपाद शंकराचार्य के भ्रामक आक्षेपों का उत्तर देते हैं।

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् या परम सत्य कोई भौतिक वस्तु जैसे नहीं हैं, जो प्रयोगात्मक ज्ञान या इन्द्रिय अनुभूति से जाने जा सकें। *नारद पञ्चरात्र* में स्वयं नारायण ने शिवजी से इस तथ्य की व्याख्या की है। किन्तु शिव के अवतार शंकराचार्य को अपने प्रभु नारायण के आदेश से अद्वैतवादियों को भ्रमित करना पड़ा, जो कि जीवन का अन्तिम लक्ष्य निर्वाण मानते हैं। बद्ध अवस्था में सारे जीवों में चार मूल दोष रहते हैं, जिनमें से ठगने की प्रवृत्ति एक है। शंकराचार्य ने अद्वैतवादियों को इस ठगने की प्रवृत्ति के द्वारा अत्यधिक भ्रमित किया है।

वास्तव में वैदिक साहित्य में विवेचित चतुर्व्यूह रूपों को बद्धजीव तर्कवितर्क द्वारा नहीं समझ सकता। अतएव चतुर्व्यूहों को उसी रूप में ग्रहण

किया जाना चाहिए, जिस रूप में वे वर्णित हैं। वेदों का प्रमाण ऐसा है कि अपने सीमित अनुभव से किसी बात को न समझते हुए भी मनुष्य को चाहिए कि वह वैदिक आदेश को स्वीकार कर ले और अपने अधूरे ज्ञान के अनुरूप व्याख्याएँ न करे। किन्तु शंकराचार्य ने अपने *शारीरक-भाष्य* में अद्वैतवादियों के भ्रम को बढ़ाया ही है।

चतुर्व्यूहों का आध्यात्मिक अस्तित्व है, जिसे *वासुदेव सत्त्व* (शुद्ध सत्त्व) में ही अनुभव किया जा सकता है, जो वासुदेव के ज्ञान में पूर्ण निमग्नता से युक्त होता है। ये चतुर्व्यूह रूप पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के छः ऐश्वर्यों से पूर्ण रहते हैं और अन्तरंगा शक्ति के भोक्ता होते हैं। भगवान् को दरिद्र या शक्तिहीन अथवा दूसरे शब्दों में, क्लीव समझना मात्र धूर्तता है। यह धूर्तता बद्धजीव का व्यापार बन चुका है और इससे उसका मोह बढ़ता है। जो आध्यात्मिक जगत् और भौतिक जगत् के अन्तर को नहीं समझ सकता, वह दिव्य चतुर्व्यूहों की स्थिति की परीक्षा करने या जानने का अधिकारी नहीं है। पूज्य श्रीपाद शंकराचार्य *वेदान्त सूत्र* के द्वितीय खण्ड, अध्याय दो, श्लोक ४२-४५ की टीका में आध्यात्मिक जगत् में इन चतुर्व्यूहों के अस्तित्व का निषेध करने का व्यर्थ प्रयास करते हैं।

श्री शंकराचार्य कहते हैं (सूत्र ४२) कि भक्तगण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् वासुदेव अर्थात् श्रीकृष्ण को एक, भौतिक गुणों से मुक्त तथा आनन्द से पूर्ण दिव्य तथा शाश्वत शरीर वाले मानते हैं। वे उन भक्तों के चरम लक्ष्य हैं, जो यह विश्वास करते हैं कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् चार अन्य सनातन दिव्य रूपों—वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध—में अपना विस्तार करते हैं। मूल विस्तार वासुदेव से क्रमशः संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध विस्तारित होते हैं। वासुदेव का अन्य नाम परमात्मा है। संकर्षण का दूसरा नाम *जीव* है। प्रद्युम्न का अन्य नाम मन है और अनिरुद्ध का अन्य नाम अहंकार है। इन विस्तारों में वासुदेव को भौतिक प्रकृति के स्रोत माना जाता है। अतएव शंकराचार्य का कहना है कि संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध मूल कारण की सृष्टियाँ हैं।

महात्माओं का कहना है कि नारायण जिन्हें परमात्मा कहते हैं, भौतिक

प्रकृति से परे हैं और यह वैदिक साहित्य के कथनों के अनुसार है। मायावादी भी मानते हैं कि नारायण विविध रूपों में अपना विस्तार कर सकते हैं। शंकराचार्य कहते हैं कि वे भक्तों की समझ के उस अंश के विषय में तर्क नहीं करना चाहते, किन्तु वे इस विचार का विरोध करते हैं कि संकर्षण का जन्म वासुदेव से, प्रद्युम्न का संकर्षण से और अनिरुद्ध का प्रद्युम्न से होता है, क्योंकि यदि संकर्षण को वासुदेव के शरीर से उत्पन्न जीवों के प्रतिनिधि माना जाता है, तो सारे जीवों को अनित्य होना चाहिए। ऐसा माना जाता है कि भगवान् की दीर्घकालीन मन्दिर-पूजा, वैदिक साहित्य के अध्ययन तथा भगवान् को प्राप्त करने के लिए योग तथा पुण्यकार्य करके सारे जीव भौतिक कल्मष से मुक्त हो जाते हैं। किन्तु यदि किसी समय सारे जीव भौतिक प्रकृति द्वारा उत्पन्न किये गये होते, तो वे अनित्य होते और उन्हें मुक्त होने तथा भगवान् का सान्निध्य प्राप्त करने का कोई अवसर प्राप्त नहीं हो सकता। यदि कारण का निषेध होता है, तो कार्य का भी निषेध हो जाता है। *वेदान्त-सूत्र* के द्वितीय खण्ड के द्वितीय अध्याय में आचार्य वेदव्यास ने भी इस विचार का खंडन किया है कि जीव कभी उत्पन्न हुए थे (*नात्मा श्रुतेर्नित्यत्वाच्च ताभ्यः*)। चूँकि जीवों की सृष्टि नहीं होती है, अतः वे नित्य (शाश्वत) हैं।

शंकराचार्य कहते हैं (सूत्र ४३) कि भक्तगण सोचते हैं कि इन्द्रियों का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रद्युम्न का आविर्भाव संकर्षण से हुआ, जो जीवों का प्रतिनिधित्व करते हैं। किन्तु हम यह कभी भी अनुभव नहीं कर सकते कि मनुष्य कभी इन्द्रियों को जन्म दे सकता है। भक्तगण यह भी कहते हैं कि अनिरुद्ध का आविर्भाव प्रद्युम्न से हुआ और अनिरुद्ध अहंकार का प्रतिनिधित्व करते हैं। किन्तु शंकराचार्य का कहना है कि जब तक भक्तगण यह न दिखला सकें कि अहंकार तथा ज्ञान के साधन किस तरह किसी व्यक्ति से उत्पन्न हो सकते हैं, तब तक *वेदान्त-सूत्र* की ऐसी व्याख्या स्वीकार नहीं की जा सकती, क्योंकि अन्य दार्शनिक भी सूत्रों को इस प्रकार से स्वीकार नहीं करते।

शंकराचार्य यह भी कहते हैं (सूत्र ४४) कि वे भक्तों के इस विचार को नहीं मानते कि संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध भगवान् के ही समान शक्तिशाली हैं और वे ज्ञान, सम्पत्ति, बल, यश, सौन्दर्य तथा त्याग नामक छः ऐश्वर्यों से

पूर्ण हैं तथा किसी निश्चित समय पर जन्म होने के दोष से मुक्त हैं। भले ही वे पूर्ण विस्तार हों, तो भी जन्म होने का दोष रहता है। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध पृथक्-पृथक् व्यक्ति होने के कारण एक नहीं हो सकते। अतएव यदि इन्हें परम, पूर्ण तथा समान स्वीकार कर लिए जाते हैं, तो ईश्वर अनेक हो जायेंगे। किन्तु कई ईश्वर हैं, इसे स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि सारे कार्यों के लिए एक सर्वशक्तिमान ईश्वर को स्वीकार करना पर्याप्त होगा। एक से अधिक ईश्वरों को मानना इस निष्कर्ष के विरुद्ध होगा कि भगवान् वासुदेव अद्वितीय हैं। यदि हम यह मान भी लें कि ईश्वर के चतुर्व्यूह समान हैं, तो भी हम अनित्यता के विरोधी दोष से बच नहीं सकते। जब तक हम यह न स्वीकार कर लें कि व्यक्तियों में कुछ न कुछ भेद होते हैं, तब तक इस विचार का कोई अर्थ नहीं होता कि संकर्षण वासुदेव के विस्तार हैं, प्रद्युम्न संकर्षण के विस्तार हैं और अनिरुद्ध प्रद्युम्न के विस्तार हैं। कार्य तथा कारण में कुछ अन्तर होना ही चाहिए। उदाहरणार्थ, बर्तन उस मिट्टी से भिन्न है, जिससे वह बना होता है और इस तरह हम यह निश्चय कर सकते हैं कि मिट्टी कारण है और बर्तन कार्य है। ऐसे अन्तरों के बिना कार्य-कारण का कोई प्रयोजन नहीं होता। साथ ही, पंचरात्र सिद्धान्त के अनुयायी वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध में ज्ञान तथा गुण के आधार पर कोई अन्तर स्वीकार नहीं करते। भक्तगण इन सारे विस्तारों को एक मानते हैं, किन्तु वे इन चतुर्व्यूह विस्तारों तक ही एकत्व को क्यों सीमित रखते हैं? निश्चय ही, हमें ऐसा नहीं करना चाहिए, क्योंकि ब्रह्मा से लेकर क्षुद्र चींटी तक सारे जीव वासुदेव के विस्तार हैं, जैसाकि समस्त श्रुतियों तथा स्मृतियों ने स्वीकार किया है।

शंकराचार्य यह भी कहते हैं (सूत्र ४५) कि *पंचरात्र* का पालन करने वाले भक्तों का कहना है कि ईश्वर के गुण तथा गुणों के स्वामी स्वयं ईश्वर एक ही हैं। किन्तु *भागवत* मत वाले यह कैसे कहते हैं कि ज्ञान, सम्पत्ति, बल, यश, सौंदर्य और त्याग—ये छः ऐश्वर्य भगवान् वासुदेव से अभिन्न हैं? यह असम्भव है।

श्रील रूप गोस्वामी ने अपने *लघु भागवतामृत* (पूर्व ५.१६५-१९३) में चतुर्व्यूह रूपों—वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध की भक्तों द्वारा की गई

व्याख्या के सम्बन्ध में श्रीपाद शंकराचार्य द्वारा लगाये गये आरोपों का खण्डन किया है। रूप गोस्वामी कहते हैं कि नारायण के ये चारों विस्तार परव्योम में विद्यमान हैं और वहाँ वे महावस्थ के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनमें से वासुदेव की पूजा हृदय के भीतर ध्यान द्वारा की जाती है, क्योंकि वे हृदय के अधिष्ठाता देव हैं, जैसाकि *श्रीमद्भागवत* (४.३.२३) में बतलाया गया है।

द्वितीय विस्तार संकर्षण तो लीलाओं के लिए वासुदेव के निजी स्वांश विस्तार हैं और चूँकि वे समस्त जीवों के आगार हैं, इसलिए वे कभी-कभी *जीव* कहलाते हैं। संकर्षण का सौन्दर्य प्रकाश की किरणों को बिखेरने वाले असंख्य पूर्णमासी के चन्द्रमाओं से भी अधिक है। वे अहंकार के तत्त्व रूप में पूजनीय हैं। उन्होंने अनन्तदेव को पालन की सारी शक्तियाँ प्रदान कर रखी हैं। सृष्टि के विलय हेतु वे अपने आपको रुद्र, अधर्म, अहि (सर्प), अन्तक (यमराज) तथा असुरों में परमात्मा के रूप में प्रकट करते हैं।

तृतीय विस्तार प्रद्युम्न हैं, जो संकर्षण से प्रकट होते हैं। जो लोग विशेष रूप से बुद्धिमान हैं, वे बुद्धि के तत्त्व के रूप में संकर्षण के इस प्रद्युम्न विस्तार की पूजा करते हैं। लक्ष्मीदेवी इलावृत वर्ष नामक स्थान में प्रद्युम्न के यश का सदैव गान करती हैं और अत्यन्त भक्तिपूर्वक उनकी सेवा करती हैं। उनका रंग कभी सुनहला तो कभी आकाश में उमड़े नवीन वर्षाकाल के बादलों की तरह श्यामल रहता है। वे भौतिक जगत् की सृष्टि के स्रोत हैं और उन्होंने अपना सृजनात्मक तत्त्व कामदेव को प्रदान कर रखा है। उन्हीं के निर्देश से ही समस्त पुरुष तथा देवतागण और अन्य जीव पुनर्जनन के लिए आवश्यक शक्ति से कार्यरत रहते हैं।

चतुर्व्यूह के चौथे विस्तार अनिरुद्ध की महान् सन्तों और मनोवैज्ञानिकों के द्वारा मन के तत्त्व के रूप में पूजा की जाती है। उनका रंग श्यामल मेघ की भाँति श्याम है। वे वैश्विक प्राकट्य के भरण-पोषण में लगे रहते हैं और वे धर्म, मनु तथा देवताओं के परमात्मा हैं। वैदिक शास्त्र *मोक्ष-धर्म* सूचित करता है कि प्रद्युम्न पूरे मन के देवता हैं, जबकि अनिरुद्ध पूर्ण अहंकार के देवता हैं, किन्तु चतुर्व्यूह रूपों के विषय में जितना भी इसके पूर्व कहा गया है, उसकी पुष्टि *पञ्चरात्र तन्त्रों* में पूर्णरूपेण होती है।

लघु भागवतामृत (पूर्व ५.८६-१००) में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की अचिन्त्य शक्तियों का बहुत ही स्पष्ट वर्णन हुआ है। शंकराचार्य के कथनों का खण्डन करते हुए *महावराह पुराण* कहता है :

सर्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः।
हानोपादानरहिता नैव प्रकृतिजाः क्वचित्॥

"भगवान् के समस्त विविध विस्तार दिव्य और शाश्वत हैं और वे सभी भौतिक सृष्टि के विभिन्न ब्रह्माण्डों में बारम्बार अवतरित होते रहते हैं। उनके शरीर सच्चिदानन्द रूप होने से अमर हैं, उनके क्षय होने की सम्भावना नहीं है, क्योंकि वे भौतिक जगत् की सृष्टियाँ नहीं हैं। उनके स्वरूप नितान्त आध्यात्मिक, समस्त आध्यात्मिक गुणों से सदैव युक्त एवं भौतिक कल्मष से रहित होते हैं।"

इन कथनों की पुष्टि करते हुए *नारद पञ्चरात्र* बल देकर कहता है :

मणिर्यथा विभागेन नीलपीतादिभिर्युतः।
रूपभेदमवाप्नोति ध्यान भेदात् तथाच्युतः॥

"अच्युत भगवान् अपने शरीर को पूजा की विविध विधियों के अनुसार नाना प्रकार से अभिव्यक्त कर सकते हैं, जिस तरह वैदूर्य मणि अपने आपको नीले तथा पीले जैसे अनेक रंगों में प्रकट कर सकती है।" प्रत्येक अवतार अन्यों से पृथक् होता है। यह भगवान् की अचिन्त्य शक्ति से सम्भव है, जिसके द्वारा वे अपने आपको एक, विविध अंशों तथा इन अंशों के उद्गम के रूप में एकसाथ प्रदर्शित कर सकते हैं। उनकी अचिन्त्य शक्तियों के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है।

कृष्ण अद्वितीय हैं, किन्तु वे विभिन्न शरीरों में प्रकट होते हैं, जैसाकि *श्रीमद्भागवत* के दसवें स्कन्ध में नारद ने कहा है :

चित्रं बतैतदेकेन वपुषा युगपत् पृथक्।
गृहेषु द्व्यष्टसाहस्रं स्त्रिय एक उदावहत्॥

"यह सचमुच अद्भुत है कि एक कृष्ण १६,००० प्रासादों में १६,००० रानियों को पत्नीरूप में ग्रहण करने के लिए एकसाथ पृथक्-पृथक् कृष्ण बन गये हैं।" (*भागवत* १०.६९.२) *पद्मपुराण* में यह भी कहा गया है :

स देवो बहुधा भूत्वा निर्गुणः पुरुषोत्तमः।
एकीभूय पुनः शेते निर्दोषो हरिरादिकृत्॥

"वही आदि पुरुष भगवान् पुरुषोत्तम, जो सदैव समस्त भौतिक गुणों एवं भौतिक कल्मष से रहित हैं, अपने आपको विविध रूपों में प्रदर्शित कर सकते हैं और साथ ही एक रूप में शयन कर सकते हैं।"

श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध (१०.४०.७) में कहा गया है—*यजन्ति त्वन्मयास्त्वां वै बहुमूर्त्येकमूर्तिकम्*—"हे प्रभु, यद्यपि आप अनेक रूपों में अपने आपको प्रकट करते हैं, किन्तु आप अद्वितीय हैं। अतएव शुद्ध भक्त एकाग्र चित्त से केवल आपकी ही पूजा करते हैं।" *कूर्म पुराण* में कहा गया है :

अस्थूलश्चाननुश्चैव स्थूलोऽणुश्चैव सर्वतः।
अवर्णः सर्वतः प्रोक्तः श्यामो रक्तान्तलोचनः॥

"भगवान् निराकार होकर भी साकार हैं, विराट् होकर भी परमाणुवत् हैं। वे वर्णरहित होकर भी श्यामल और रक्त-नेत्र वाले हैं।" भौतिक दृष्टि से यह परस्पर विरोधी प्रतीत हो सकता है, किन्तु यदि हम यह समझ लें कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शक्तियाँ अचिन्त्य हैं, तो हम उनसे सम्बन्धित इन तथ्यों को शाश्वत रूप से सम्भव स्वीकार कर सकते हैं। अपनी वर्तमान अवस्था में हम न तो आध्यात्मिक कार्यों को और न उनके घटनाक्रम को समझ सकते हैं और यद्यपि भौतिक सन्दर्भ में ये अचिन्त्य हैं, किन्तु हमें ऐसे विरोधी भावों को अस्वीकार नहीं करना चाहिए।

यद्यपि ऊपर से यह अचिन्त्य लगता है, किन्तु परमेश्वर के लिए ऐसे विरोधी तत्त्वों का निराकरण कर लेना सम्भव है। *श्रीमद्भागवत* के छठे स्कन्ध (६.९.३४-३७) में इसकी स्थापना हुई है :

"हे भगवान्, आपकी दिव्य लीलाएँ तथा विलास अचिन्त्य लगते हैं, क्योंकि वे भौतिक विचार के कार्य-कारण प्रभावों से सीमित नहीं हैं। आप शारीरिक कार्य किये बिना ही सब कुछ कर सकते हैं। वेद बतलाते हैं कि परम सत्य की विविध शक्तियाँ हैं और उन्हें स्वयं कुछ नहीं करना पड़ता। हे प्रभु, आप भौतिक गुणों से सर्वथा रहित हैं। आप किसी की सहायता के बिना ही सारे गुणात्मक भौतिक विश्व का सृजन, पालन और संहार कर सकते हैं, किन्तु

इन सारे कार्यों से आपमें कोई परिवर्तन नहीं आता। आप अपने कर्मफलों को स्वीकार नहीं करते, जैसाकि सामान्य असुर तथा देवता करते हैं। वे इस भौतिक जगत् में अपने कर्मफल का कष्ट या सुख भोगते हैं। आप अपने कर्मफलों से प्रभावित हुए बिना अपनी पूर्ण आध्यात्मिक शक्ति में नित्य अवस्थित रहते हैं। इसे हम ठीक से समझ नहीं पाते।

"चूँकि आपके छः ऐश्वर्य असीम हैं, अतएव आपके दिव्य गुणों की गणना कोई नहीं कर सकता। दार्शनिक तथा अन्य विचारवान पुरुष भौतिक जगत् की परस्पर विरोधी अभिव्यक्तियों तथा तर्कों के प्रस्तावों एवं निर्णयों से विचलित हो जाते हैं। वाग्जाल से मोहग्रस्त एवं शास्त्रों की विभिन्न गणनाओं से विचलित होने के कारण उनके सिद्धान्त आपका स्पर्श नहीं कर पाते, क्योंकि आप हर एक के शासक एवं नियन्ता हैं और आपकी महिमा कल्पना से परे है।

"आपकी अचिन्त्य शक्ति आपको संसारी गुणों से विरक्त रखती है। आपका शुद्ध दिव्य ज्ञान भौतिक चिन्तन से अतीत होने के कारण आपको समस्त चिन्तन-विधियों से परे रखता है। आपकी अचिन्त्य शक्ति के कारण आपमें कुछ भी परस्पर विरोधी नहीं है।

"लोग कभी-कभी आपको साकार या निराकार मान सकते हैं, किन्तु आप एक हैं। जो लोग मोहग्रस्त या भ्रमित हैं, उन्हें रस्सी तरह तरह के सर्प की भाँति प्रतीत हो सकती है। जो लोग आपके विषय में अनिश्चित हैं, ऐसे मोहग्रस्त लोगों के लिए ही आपने उनकी अनिश्चित स्थितियों के अनुरूप विविध दार्शनिक विधियाँ बनाई हैं।"

हमें आध्यात्मिक तथा भौतिक कर्मों के अन्तर को सदैव स्मरण में रखना चाहिए। परमेश्वर पूर्ण आध्यात्मिक होने के कारण बाह्य सहायता के बिना कोई भी कार्य कर सकते हैं। भौतिक जगत् में यदि हम एक मिट्टी का घड़ा भी बनाना चाहें, तो हमें उसके लिए कच्ची सामग्री (उपादान), एक मशीन तथा एक मजदूर की आवश्यकता होगी। किन्तु हमें इस विचार को परमेश्वर के कार्यों पर आरोपित नहीं करना चाहिए, क्योंकि वे बिना किसी वस्तु के, जो हमारी कल्पना में आवश्यक प्रतीत होती है, क्षण-भर में कोई भी वस्तु बना सकते हैं। जब भगवान् किसी विशेष उद्देश्य को पूरा करने के लिए अवतरित होते

हैं, तो इससे यह इंगित नहीं होता कि वे बिना प्रकट हुए यह कार्य पूरा करने में असमर्थ हैं। वे इच्छा मात्र से कुछ भी कर सकते हैं, किन्तु अपनी अहैतुकी कृपा से वे अपने भक्तों पर आश्रित जान पड़ते हैं। वे यशोदा माता के पुत्र के रूप में इसलिए प्रकट नहीं होते कि वे उनके लालन-पालन पर आश्रित हैं, अपितु इसलिए कि वे अपनी अहैतुकी कृपा से ऐसी भूमिका स्वीकार करते हैं। जब वे अपने भक्तों की रक्षा करने के लिए प्रकट होते हैं, तब वे स्वाभाविक रूप से उनके लिए कष्ट सहन करते हैं।

भगवद्गीता में कहा गया है कि हर जीव के प्रति समदर्शी होने के कारण भगवान् के न तो शत्रु हैं, न मित्र, किन्तु वे ऐसे भक्तों के प्रति विशेष रूप से वत्सल हैं, जो सदैव प्रेम से उनका स्मरण करते रहते हैं। इसीलिए तटस्थता और पक्षपात भगवान् के दिव्य गुणों में से हैं और ये गुण उनकी अचिन्त्य शक्ति के कारण ठीक से समंजित हो जाते हैं। भगवान् परब्रह्म हैं अर्थात् वे निर्विशेष ब्रह्म के स्रोत हैं, जो उनकी तटस्थता का सर्वव्यापी गुण है। किन्तु अपने साकार रूप में वे समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी होने के कारण अपने भक्तों का पक्ष लेकर पक्षपात का प्रदर्शन करते हैं। पक्षपात, तटस्थता तथा अन्य ऐसे सारे गुण ईश्वर में विद्यमान रहते हैं, अन्यथा सृष्टि में इनका अनुभव न हो पाता। चूँकि वे पूर्ण अस्तित्व हैं, अतएव निरपेक्ष परमेश्वर में सारी वस्तुएँ उचित ढंग से समंजित हैं। सापेक्ष जगत् में ऐसे गुण विकृत रूप में प्रदर्शित होते हैं, इसीलिए हमें अद्वैतता विकृत प्रतिबिम्ब के रूप में अनुभव होती है। चूँकि आध्यात्मिक जगत् में घटनाओं के घटित होने की विधि को समझाने का कोई तर्कपूर्ण उपाय नहीं है, इसीलिए कभी-कभी भगवान् अनुभव की परिधि से परे बतलाये जाते हैं। किन्तु यदि हम एकमात्र भगवान् की अचिन्त्यता को स्वीकार कर लें, तो उनमें सारी वस्तुओं का सामंजस्य प्राप्त कर सकते हैं। अभक्त भगवान् की अचिन्त्य शक्ति को नहीं समझ सकते, इसीलिए उनके लिए यह कहा जाता है कि भगवान् उनकी चिन्तनीय-अभिव्यक्ति की परिधि से परे हैं। *ब्रह्म-सूत्र* के प्रणेता इस तथ्य को स्वीकार करते हैं और कहते हैं—*श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात्*—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सामान्य व्यक्ति के लिए अचिन्त्य हैं, इसलिए वे केवल वैदिक आदेशों के प्रमाण द्वारा ही समझे जा सकते हैं।

स्कन्द पुराण में पुष्टि हुई है—*अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्*—"जो विषय सामान्य व्यक्तियों के लिए अचिन्त्य हैं, उनके विषय में तर्क नहीं करना चाहिए।" हमें भौतिक रत्नों तथा जड़ीबूटियों में भी अद्भुत गुण मिलते हैं। कभी-कभी उनके गुण सचमुच ही अचिन्त्य प्रतीत होते हैं। अतएव जब तक हम पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में अचिन्त्य शक्तियों को स्वीकार नहीं कर लेते, तब तक उनकी श्रेष्ठता स्थापित नहीं की जा सकती। इन्हीं अचिन्त्य शक्तियों के कारण ही भगवान् की महिमा को समझना कठिन बतलाया गया है।

मानव-समाज में अज्ञानता तथा वाक्चातुरी अति सामान्य हैं, किन्तु इनसे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की अचिन्त्य शक्तियों को समझने में कोई सहायता नहीं मिलती। ऐसे अज्ञान तथा वाक्चातुरी को मान्यता देने पर हम भगवान् के छः ऐश्वर्यों में उनकी पूर्णता को स्वीकार नहीं कर सकते। उदाहरणार्थ, भगवान् के छः ऐश्वर्यों में से पूर्ण ज्ञान भी एक है। अतएव भगवान् में अज्ञान की कल्पना कैसे की जा सकती है? वैदिक उपदेश तथा विचारपूर्ण तर्क बतलाते हैं कि भगवान् द्वारा सृष्टि का पालन और उसी के साथ-साथ उसके पालन के प्रति उदासीनता भगवान् की अचिन्त्य शक्तियों के कारण परस्पर-विरोधी नहीं हो सकते। जो व्यक्ति सर्प के विचार में सदैव डूबा रहता है, उसे रस्सी भी सदा सर्प जैसी लगती है। इसी प्रकार जो व्यक्ति भौतिक गुणों द्वारा मोहग्रस्त हुआ रहता है और परम सत्य विषयक ज्ञान से रहित होता है, उसे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् उसके विभिन्न मोहग्रस्त निर्णयों के अनुसार प्रतीत होते हैं।

कोई तर्क कर सकता है कि यदि परम सत्य सर्वज्ञ (ब्रह्म) तथा पूर्ण छः ऐश्वर्यों से युक्त भगवान् हैं, तो अवश्य ही उनमें द्वैत का दोष आ जाता है। ऐसे तर्क का खण्डन करने के लिए *स्वरूपद्वयम् ईक्ष्यते* सूक्ति की घोषणा है कि ऊपर से भले ही ऐसा प्रतीत हो, किन्तु परम सत्य में द्वैत की सम्भावना नहीं है, क्योंकि विभिन्न अभिव्यक्तियों में वे एक ही हैं। किन्तु यह समझ लेने पर कि परम सत्य अपनी शक्तियों के प्रभाव द्वारा विविध लीलाएँ प्रदर्शित करते हैं, तुरन्त ही उनकी अचिन्त्य परस्पर विरोधी शक्तियों की ऊपरी असंगति हट जाती है। *श्रीमद्भागवत* (३.४.१६) में भगवान् की अचिन्त्य शक्ति का निम्नलिखित वर्णन मिलता है :

कर्माण्यनीहस्य भवोऽभवस्य ते
दुर्गाश्रयोऽथारिभयात् पलायनम्।
कालात्मनो यत्प्रमदायुताश्रयः
स्वात्मन्रतेः खिद्यति धीर्विदामिह॥

"यद्यपि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को कुछ करने की आवश्यकता नहीं होती, फिर भी वे कर्म करते हैं। यद्यपि वे अजन्मा हैं, फिर भी वे जन्म लेते हैं, यद्यपि वे काल होने के कारण सबके लिए भयप्रद हैं, किन्तु अपने शत्रु के भय से वे मथुरा छोड़कर एक दुर्ग में शरण लेने भाग जाते हैं। यद्यपि वे आत्मनिर्भर हैं, फिर भी वे १६ हजार स्त्रियों से विवाह करते हैं। ये लीलाएँ अत्यन्त बुद्धिमान व्यक्ति को भी भ्रमित करने वाली एवं परस्पर-विरोधी लगती हैं।" यदि भगवान् के ये कार्यकलाप वास्तविक न होते, तो ऋषि-मुनि उनके द्वारा उलझन में क्यों पड़ते? अतएव ऐसे कार्यकलापों को कभी भी काल्पनिक नहीं मानना चाहिए। जब भी भगवान् इच्छा करते हैं, उनकी अचिन्त्य शक्ति (*योगमाया*) ऐसी लीलाएँ उत्पन्न करने और उन्हें संपन्न करने में सहायक बनती है।

पञ्चरात्र-शास्त्र महान् आचार्यों द्वारा स्वीकृत मान्य वैदिक शास्त्र हैं। ये शास्त्र रजो तथा तमो गुणों की उपज नहीं हैं। इसीलिए विद्वान एवं ब्राह्मण इन्हें *सात्वत संहिता* कहते हैं। इन शास्त्रों के आदि वक्ता पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् नारायण हैं। इसका विशेष उल्लेख *मोक्ष-धर्म* (३४९.६८) में हुआ है, जो *महाभारत* के शान्तिपर्व का अंश है। नारद तथा व्यास जैसे मुक्त ऋषि-मुनि जो बद्ध-जीव के चार दोषों से मुक्त हैं, इन शास्त्रों का प्रचार करने वाले हैं। श्री नारद मुनि *पञ्चरात्र शास्त्र* के मूल वक्ता हैं। *श्रीमद्भागवत* को भी सात्वत-संहिता माना जाता है। वस्तुतः श्री चैतन्य महाप्रभु ने घोषित किया है—*श्रीमद्भागवतम् पुराणममलम्*—"*श्रीमद्भागवत* निष्कलंक पुराण है।" ऐसे ईर्ष्यालु सम्पादक तथा विद्वान, जो *पञ्चरात्र शास्त्र* के नियमों का खंडन करने के लिए उसे गलत ढंग से प्रस्तुत करते हैं, अत्यन्त निन्दनीय हैं। आधुनिक युग में, ऐसे ईर्ष्यालु विद्वानों ने कृष्ण द्वारा कही गई *भगवद्गीता* की भी भ्रामक टीकाएँ करके यह दिखाने का प्रयास किया है कि कृष्ण का अस्तित्व ही नहीं

है। *पञ्चरात्रिक विधि* की मायावादियों ने किस तरह गलत व्याख्या की है, उसे निम्नलिखित शब्दों में दिखलाया गया है :

(१) *वेदान्त-सूत्र* के २.२.४२ वें सूत्र की टीका करते हुए श्रीपाद शंकराचार्य ने यह दावा किया है कि संकर्षण एक सामान्य *जीव* हैं, किन्तु किसी भी वैदिक शास्त्र में इसका प्रमाण नहीं मिलता कि किसी भक्त ने कभी कहा हो कि संकर्षण एक सामान्य जीव हैं। वे विष्णु तत्त्व के अच्युत स्वांश विस्तार हैं और वे भौतिक प्रकृति की सृष्टि से परे हैं। वे जीवों के मूल उद्गम हैं। *उपनिषदों* की घोषणा है—*नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्*—"वे समस्त जीवों में सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति हैं।" अतएव वे *विभु-चैतन्य* हैं अर्थात् महानतम हैं। वे इस जगत् एवं सूक्ष्म जीवों के प्रत्यक्ष कारणस्वरूप हैं। वे अनन्त जीव हैं, जबकि सामान्य जीव अत्यन्त क्षुद्र हैं। अतएव उन्हें कभी भी सामान्य जीव नहीं माना जा सकता, क्योंकि यह प्रामाणिक शास्त्रों के विरुद्ध निष्कर्ष होगा। जीव भी जन्म-मरण की मर्यादा से परे हैं। यह वेदों का कथन है और जो शास्त्रों के आदेशों का पालन करते हैं तथा वास्तव में गुरु-शिष्य परम्परा से जुड़े हैं, वे इसे स्वीकार करते हैं।

(२) शंकराचार्य द्वारा *वेदान्त-सूत्र* के २.२.४३ वें सूत्र की जो टीका की गई है, उसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि समस्त विष्णु-तत्त्वों में, जो अनेक प्रकार से विस्तारित हैं, मूल विष्णु मूल संकर्षण हैं। *मूल* का अर्थ है "आदि"। संकर्षण भी विष्णु ही हैं, किन्तु उनसे अन्य सारे विष्णुओं का विस्तार होता है। इसकी पुष्टि *ब्रह्म-संहिता* (५.४६) से होती है, जिसमें कहा गया है कि जिस प्रकार एक दीपक से जलाया गया दूसरा दीपक मूल दीपक की तरह ही जलता है, उसी तरह जो विष्णु मूल संकर्षण से प्रकट होते हैं, वे आदि विष्णु जैसे ही होते हैं। मनुष्य को चाहिए कि वह उन भगवान् गोविन्द की पूजा करे, जो इस प्रकार स्वयं का विस्तार करते हैं।

(३) चवालीसवें सूत्र पर शंकराचार्य की टीका के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि *पञ्चरात्र* के सिद्धान्तों पर चलने वाला कोई भी भक्त इस कथन को कभी भी स्वीकार नहीं करेगा कि विष्णु के सारे विस्तार भिन्न-भिन्न व्यक्तित्व हैं, क्योंकि यह विचार पूर्णतया गलत है। यहाँ तक कि स्वयं श्रीपाद शंकराचार्य

ने ४२वें सूत्र की टीका करते हुए स्वीकार किया है कि भगवान् स्वत: विविध प्रकार से अपना विस्तार कर सकते हैं। अतएव ४२वें और ४४वें सूत्र की उनकी टीकाएँ परस्पर-विरोधी हैं। मायावादी टीकाओं का यही दोष है कि वे एक स्थान पर एक कथन और दूसरे स्थान पर दूसरा परस्पर-विरोधी कथन करते हैं और इसका उपयोग वे भागवत विचार का खंडन करने की युक्ति के रूप में करते हैं। इस प्रकार मायावादी टीकाकार प्रामाणिक सिद्धान्तों का पालन भी नहीं करते। यह ध्यान देने की बात है कि भागवत सम्प्रदाय नारायण के चतुर्व्यूह रूपों को स्वीकार करता है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वह अनेक ईश्वरों को मानता है। भक्तगण भलीभाँति जानते हैं कि परम सत्य भगवान् अद्वितीय हैं। वे कभी भी बहु ईश्वर-आराधक नहीं होते, क्योंकि यह वेदों के आदेशों के विरुद्ध है। भक्तगण दृढ़ श्रद्धापूर्वक विश्वास करते हैं कि नारायण दिव्य हैं और वे विभिन्न दिव्य शक्तियों के अचिन्त्य स्वामी हैं। अतएव हमारा कहना है कि विद्वान लोग श्रील रूप गोस्वामी कृत *लघु भागवतामृत* को पढ़ें, जिसमें इन विचारों की स्पष्ट व्याख्या की गई है। श्रीपाद शंकराचार्य ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध कार्य-कारण द्वारा विस्तार करते हैं। वे उनकी उपमा मिट्टी तथा मिट्टी के बने पात्रों से देते हैं। किन्तु यह पूर्णतया अज्ञान है, क्योंकि उनके विस्तारों में कार्य-कारण जैसी कोई वस्तु नहीं है (*नान्यद् यत् सदसत्परम्*)। *कूर्म पुराण* में भी पुष्टि हुई है—*देहदेहिविभेदोऽयं नेश्वरे विद्यते क्वचित्*—"भगवान् के शरीर और आत्मा में कोई अन्तर नहीं है।" कारण-कार्य भौतिक हैं। उदाहरणार्थ, यह देखा जाता है कि पिता का शरीर पुत्र के शरीर का कारण है, किन्तु आत्मा न तो कारण है न कार्य है। आध्यात्मिक स्तर पर ऐसे कोई भेद नहीं रहते, जो हमें कार्य-कारण में देखने को मिलते हैं। चूँकि भगवान् के सभी रूप आध्यात्मिक दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ हैं, अतएव वे समान रूप से भौतिक प्रकृति के नियामक हैं। चतुर्थ आयाम में रहने के कारण वे दिव्य धरातल पर अधिष्ठाता स्वरूप हैं। उनके विस्तारों में रंचमात्र भौतिक कल्मष नहीं है, क्योंकि भौतिक नियम उन्हें प्रभावित नहीं कर सकते। भौतिक जगत् के बाहर इस तरह का कार्य-कारण का नियम नहीं पाया जाता। अतएव कार्य-कारण का ज्ञान पूर्ण पुरुषोत्तम

भगवान् के पूर्ण, दिव्य विस्तारों तक नहीं पहुँच सकता। वैदिक साहित्य से यह सिद्ध होता है :

ॐ पूर्णम् अदः पूर्णम् इदं पूर्णात्पूर्णम् उदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णम् एवावशिष्यते॥

"भगवान् पूर्ण हैं, वे पूर्णतया पूर्ण होने के कारण उनसे निकलने वाले सारे उद्भव, यथा यह घटनामय जगत् पूर्ण के रूप में सुसज्जित हैं। पूर्ण से जो कुछ उत्पन्न होता है, वह भी अपने आपमें पूर्ण होता है। चूँकि वे पूर्ण हैं, अतएव उनमें से अनेक इकाइयाँ उद्भूत होने पर भी वे पूरे के पूरे शेष रहते हैं।" (*बृहदारण्यक उपनिषद्* ५.१) यह स्पष्ट है कि अभक्त भगवान् विष्णु के बाह्य पहलू रूप सम्पूर्ण जगत् की समता माया के नियन्ता भगवान् या उनके चतुर्व्यूह रूपों से करने के लिए भक्ति के सारे नियमों का उल्लंघन करते हैं। माया तथा आत्मा या माया तथा भगवान् की समता करना नास्तिकता का चिह्न है। यह विराट् सृष्टि जो ब्रह्मा से लेकर चींटी को प्रकट करती है, वह परमेश्वर का बाह्य लक्षण है। जैसाकि *भगवद्गीता* में पुष्टि की गई है (*एकांशेन स्थितो जगत्*), भौतिक जगत भगवान् की शक्ति का एक चतुर्थांश है। माया शक्ति की विराट् अभिव्यक्ति भौतिक प्रकृति है और इस भौतिक प्रकृति की हर वस्तु पदार्थ से बनी हुई है। अतएव भौतिक प्रकृति के विस्तारों की तुलना भगवान् के चतुर्व्यूह विस्तारों से नहीं करनी चाहिए, किन्तु दुर्भाग्यवश मायावादी सम्प्रदाय वाले ऐसा ही करने का अनुचित प्रयास करते हैं।

(४) *वेदान्त-सूत्र* के पैंतालीसवें सूत्र (२.२.४५) पर शंकराचार्य की टीका का उत्तर देने के लिए दिव्य गुणों एवं उनकी आध्यात्मिक प्रकृति का सार *लघु भागवतामृत* (पूर्व ५.२०८-२१४) में इस प्रकार दिया हुआ है, "कुछ लोग कहते हैं कि परम तत्त्व समस्त गुणों से शून्य होना चाहिए, क्योंकि गुणों का प्रदर्शन केवल पदार्थ में होता है। उनके अनुसार सारे गुण क्षणभंगुर मरीचिका की भाँति हैं। किन्तु यह स्वीकार्य नहीं है। चूँकि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् परम पूर्ण हैं, अतएव उनके गुण उनसे अभिन्न हैं। उनका रूप, नाम, गुण तथा उनसे सम्बन्धित सब कुछ उन्हीं के समान आध्यात्मिक है। परम भगवान् का प्रत्येक गुणात्मक विस्तार उनसे अभिन्न है। चूँकि परम सत्य भगवान् समस्त आनन्द

के आगार हैं, अतएव उनसे उद्भूत सारे दिव्य गुण भी आनन्द के आगार हैं। इसकी पुष्टि *ब्रह्मतर्क* नामक शास्त्र में हुई है। इसके अनुसार भगवान् हरि स्वयं गुणवान हैं, अतएव विष्णु तथा उनके शुद्ध भक्त उनके अपने दिव्य गुणों से भिन्न नहीं हो सकते। *विष्णु पुराण* में भगवान् विष्णु की पूजा निम्नलिखित शब्दों में की गई है—'भगवान् हम सबके प्रति दयालु हों। उनका अस्तित्व भौतिक गुणों से कभी भी दूषित नहीं होता।' उसी *विष्णु पुराण* में यह भी कहा गया है कि भगवान् के सारे गुण यथा ज्ञान, ऐश्वर्य, सौन्दर्य, बल तथा प्रभाव उनसे अभिन्न माने जाते हैं। इसकी पुष्टि *पद्म पुराण* द्वारा भी होती है, जो यह बतलाता है कि जब भी भगवान् गुणों से रहित कहे जाते हैं, तब इसका अर्थ यह लगाना चाहिए कि वे भौतिक गुणों से रहित हैं। *श्रीमद्भागवत* के प्रथम स्कन्ध (१.१६.२९) में कहा गया है, 'हे धर्म, कृष्ण के व्यक्तित्व से सभी उत्तम एवं उदात्त गुण सर्वदा प्रकट होते हैं और भक्त तथा अध्यात्मवादी भी, जो श्रद्धालु बनना चाहते हैं, वे ऐसे दिव्य गुणों से युक्त होना चाहते हैं।' इसलिए यह जान लेना चाहिए कि परम आनन्द के दिव्य रूप भगवान् श्रीकृष्ण समस्त आनन्दमय दिव्य गुणों एवं अचिन्त्य शक्तियों के स्रोत हैं। इस सम्बन्ध में *श्रीमद्भागवत* के तृतीय स्कंध, छब्बीसवें अध्याय के २१, २५, २७ तथा २८ संख्यक श्लोकों को पढ़ना चाहिए।

श्रीपाद रामानुजाचार्य ने भी *वेदान्त-सूत्र* पर लिखे गये अपने भाष्य *श्रीभाष्य* में शंकर के तर्कों का खंडन किया है : "श्रीपाद शंकराचार्य ने *पञ्चरात्रों* की समता नास्तिक कपिल के दर्शन से करने का प्रयास किया है और इस तरह यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि पंचरात्रों से वैदिक आदेशों का खंडन होता है। *पंचरात्र* बतलाता है कि संकर्षण नामक *जीव* का व्यक्तित्व समस्त कारणों के कारण वासुदेव से उद्भूत हैं। मनरूपी प्रद्युम्न संकर्षण से निकले हैं और अहंकार रूपी अनिरुद्ध प्रद्युम्न से निकले हैं। किन्तु कोई यह नहीं कह सकता कि जीव जन्म लेता है या उत्पन्न किया जाता है, क्योंकि ऐसा कथन वेदसम्मत नहीं है। *कठ उपनिषद* (२.१८) में कहा गया है कि व्यक्तिगत आत्मा रूप में सारे जीवों का न तो जन्म होता है, न मृत्यु। सारा वैदिक साहित्य घोषित करता है कि सारे जीव सनातन हैं। अतएव जब यह कहा जाता है कि

संकर्षण *जीव* हैं, तो इससे यह इंगित होता है कि वे जीवों के अधिष्ठाता देव हैं। इसी प्रकार प्रद्युम्न मन के और अनिरुद्ध अहंकार के अधिष्ठाता देव हैं।

"ऐसा कहा गया है कि प्रद्युम्न अर्थात् मन की उत्पत्ति संकर्षण से हुई। किन्तु यदि संकर्षण जीव होते, तो यह स्वीकार नहीं किया जा सकता है, क्योंकि जीव मन का कारण नहीं हो सकता। वैदिक आदेश बतलाते हैं कि हर वस्तु, जिसमें प्राण, मन तथा इन्द्रियाँ सम्मिलित हैं, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से उत्पन्न होती हैं। जीव से मन की उत्पत्ति होनी असम्भव है, क्योंकि वेदों का कथन है कि हर वस्तु परम सत्य परमेश्वर से उद्भूत है।

"किसी के भी द्वारा अखण्डनीय तथ्यों से संपन्न शास्त्रों के अनुसार संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध में परम पूर्ण भगवान् के समस्त शक्तिमय गुण पाये जाते हैं। अतएव चतुर्व्यूह रूप कभी भी सामान्य जीव नहीं माने जाने चाहिए। इनमें से हर एक परम अद्वय भगवान् का पूर्ण विस्तार है और इस तरह हर एक अपने ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, प्रभाव, वीर्य तथा शक्तियों में परमेश्वर से अभिन्न है। *पञ्चरात्रों* के प्रमाण की उपेक्षा नहीं की जा सकती। जिन अप्रशिक्षित लोगों ने *पंचरात्रों* का ठीक से अध्ययन नहीं किया है, वे ही सोचते हैं कि जीव के जन्म या उत्पत्ति के विषय में *पंचरात्र* श्रुतियों का खण्डन करता है। इस प्रसंग में हमें *श्रीमद्भागवत* का निर्णय मानना चाहिए जो इस प्रकार है, 'वासुदेव नाम से विख्यात एवं अपने शरणागत भक्तों के प्रति अतीव वत्सल परम अद्वय भगवान् चतुर्व्यूह के रूपों में अपना विस्तार करते हैं, जो उनके अधीन हैं, किन्तु साथ ही सभी प्रकार से उनसे अभिन्न हैं।' *पौष्कर संहिता* का कथन है, 'शास्त्र यह संस्तुति करते हैं कि जो ब्राह्मण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के चतुर्व्यूह रूपों की पूजा करते हैं, वे *आगम* (प्रामाणिक वैदिक साहित्य) कहलाते हैं।' समस्त वैष्णव साहित्य में कहा गया है कि इन चतुर्व्यूह रूपों की पूजा करना उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् वासुदेव की पूजा करने के समान है, जो अपने विभिन्न विस्तारों में छः ऐश्वर्यों से युक्त होकर अपने भक्तों के निर्धारित कर्तव्यों के फलों की भेंटें स्वीकार कर सकते हैं। नृसिंह, राम, शेष तथा कूर्म जैसे लीला विस्तारों की पूजा व्यक्ति को संकर्षण चतुर्व्यूह की पूजा के पद तक उठाती है। उस पद से ऊपर उठकर मनुष्य परम ब्रह्म वासुदेव की पूजा करने के पद तक

पहुँचता है। *पौष्कर संहिता* में कहा गया है, 'यदि विधिपूर्वक पूजा की जाये, तो भगवान् वासुदेव को प्राप्त किया जा सकता है।' यह स्वीकार करना होगा कि संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध भगवान् वासुदेव के ही तुल्य हैं, क्योंकि वे सभी अचिन्त्य शक्ति से युक्त हैं और वासुदेव जैसे दिव्य रूप ग्रहण कर सकते हैं। संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध कभी जन्म नहीं लेते, किन्तु शुद्ध भक्तों के समक्ष वे विभिन्न अवतारों के रूप में प्रकट हो सकते हैं। यह वैदिक साहित्य का निर्णय है। भगवान् अपनी अचिन्त्य शक्ति से भक्तों के समक्ष प्रकट हो सकते हैं—यह तथ्य *पंचरात्रों* की शिक्षाओं के विरुद्ध नहीं है। चूँकि संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध क्रमशः समस्त जीवों, समग्र मन तथा समग्र अहंकार के अधिष्ठाता देव हैं, अतएव 'जीव,' 'मन' तथा 'अहंकार' के रूप में संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध की उपाधियाँ शास्त्रों के कथनों के विरुद्ध नहीं हैं। ये पद इन देवों के नामों के द्योतक हैं, जिस प्रकार 'व्योम' तथा 'ज्योति' शब्द कभी-कभी परम ब्रह्म की ओर संकेत करते हैं।

"शास्त्र जीव के जन्म या उत्पत्ति को पूरी तरह नकारते हैं। *परम संहिता* में वर्णन हुआ है कि अन्यों के काम आने वाली भौतिक प्रकृति वस्तुतः जड़ है और सदैव बदलती रहती है। भौतिक प्रकृति का क्षेत्र सकाम कर्मियों का कार्यक्षेत्र है और चूँकि भौतिक क्षेत्र बाह्य रूप से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से सम्बन्धित है, अतएव यह भी नित्य है। प्रत्येक संहिता में जीव को नित्य माना गया है और *पंचरात्रों* में तो जीव के जन्म को बिल्कुल अस्वीकार किया गया है। प्रत्येक उत्पन्न हुई वस्तु का संहार भी अवश्यंभावी है। अतः यदि हम जीव का जन्म मानते हैं, तो हमें इसके संहार को भी मानना पड़ेगा। किन्तु वैदिक साहित्य का कथन है कि जीव सनातन है, अतएव मनुष्य को चाहिए कि जीव को किसी विशेष समय में उत्पन्न हुआ न सोचे। *परम संहिता* के प्रारम्भ में यह निश्चित रूप से कहा गया है कि भौतिक प्रकृति निरन्तर परिवर्तनशील है। अतएव 'प्रारम्भ,' 'संहार' तथा ऐसे ही अन्य शब्द केवल भौतिक प्रकृति पर लागू होते हैं।

"इन सब बातों पर विचार करने पर हमें समझ लेना चाहिए कि शंकराचार्य का यह कथन कि संकर्षण जीव के रूप में उत्पन्न होते हैं, वैदिक कथनों के

सर्वथा विरुद्ध है। उनकी मान्यताएँ उपर्युक्त तर्कों से पूरी तरह खंडित हो जाती हैं। इस सन्दर्भ में *श्रीमद्भागवत* (३.१.३४) पर श्रीधर स्वामी की टीका अत्यन्त सहायक है।"

संकर्षण को सामान्य जीव सिद्ध करने के शंकराचार्य के तर्कों के विस्तृत खंडन के लिए *श्रीभाष्य* पर श्रीमत् सुदर्शनाचार्य कृत *श्रुत प्रकाशिका* नामक भाष्य का सन्दर्भ लिया जा सकता है।

मूल चतुर्व्यूह अर्थात् कृष्ण, बलदेव, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध का विस्तार एक अन्य चतुर्व्यूह के रूप में होता है, जो परव्योम में वैकुण्ठ-लोक में विद्यमान है। अतएव परव्योम के चतुर्व्यूह द्वारका के मूल चतुर्व्यूह की द्वितीय अभिव्यक्ति है। जैसा ऊपर कहा गया है, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध भगवान् के अपरिवर्तनीय दिव्य पूर्णांश विस्तार हैं, जिनका भौतिक गुणों से कोई सम्बन्ध नहीं होता। द्वितीय चतुर्व्यूह में संकर्षण रूप न केवल बलराम का प्रतिनिधित्व करता है, अपितु कारण सागर का आदि कारण भी है, जहाँ कारणोदकशायी विष्णु शयन करते हैं और जिनकी श्वास से असंख्य ब्रह्माण्डों के बीज निकलते रहते हैं।

परव्योम में *शुद्ध सत्त्व* नामक आध्यात्मिक सृजनात्मक शक्ति रहती है, जो शुद्ध आध्यात्मिक शक्ति है और सारे वैकुण्ठ-लोकों का पोषण ज्ञान, सम्पत्ति, वीर्य आदि पूर्ण ऐश्वर्यों समेत करती है। शुद्ध सत्त्व के ये सारे कार्य महासंकर्षण की शक्तियों के द्योतक हैं, जो भौतिक जगत् में कष्ट भोगने वाले सारे जीवों के चरम आगार हैं। जब इस विराट् सृष्टि का संहार हो जाता है, तो स्वभाव से अविनाशी जीव महासंकर्षण के शरीर में विश्राम करते हैं। इसीलिए संकर्षण कभी-कभी समग्र जीव कहे जाते हैं। आध्यात्मिक स्फुलिंग के रूप में सारे जीवों में भौतिक प्रकृति के सान्निध्य में निष्क्रिय बने रहने की प्रवृत्ति होती है, जिस प्रकार आग के स्फुलिंग में आग से बाहर निकलने पर तुरन्त बुझ जाने की प्रवृत्ति होती है। किन्तु जीव का आध्यात्मिक स्वभाव परम पुरुष की संगति में रहकर फिर से प्रज्ज्वलित किया जा सकता है। चूँकि जीव कभी पदार्थ में तो कभी आत्मा में प्रकट हो सकता है, इसलिए जीव तटस्था शक्ति कहलाता है।

संकर्षण उन कारण विष्णु के उद्गम स्रोत हैं, जो अपने मूल स्वरूप में ब्रह्माण्डों की सृष्टि करते हैं। यही संकर्षण श्री नित्यानन्द राम के एक पूर्ण अंश विस्तार हैं।

ताँहा ये रामेर रूप—महा-सङ्कर्षण ।
चिच्छक्ति-आश्रय तिँहो, कारणेर कारण ॥ ४२ ॥

ताँहा ये रामेर रूप—महा-सङ्कर्षण ।
चिच्छक्ति-आश्रय तिंहो, कारणेर कारण ॥ ४२ ॥

ताँहा—वहाँ; **ये**—जो; **रामेर रूप**—बलराम के निजी लक्षण; **महा-सङ्कर्षण**—महा संकर्षण; **चित्-शक्ति-आश्रय**—आध्यात्मिक शक्ति के आश्रय; **तिंहो**—वे; **कारणेर कारण**—सर्व कारणों के कारण।

अनुवाद

वहाँ पर (परव्योम में) बलराम के साकार स्वरूप, जो महासंकर्षण कहलाते हैं, आध्यात्मिक शक्ति के आश्रय हैं। वे मूल कारण हैं, अर्थात् समस्त कारणों के कारण हैं।

चिच्छक्ति-विलास एक—'शुद्ध-सत्त्व' नाम ।
शुद्ध-सत्त्व-मय यत वैकुण्ठादि-धाम ॥ ४३ ॥

चिच्छक्ति-विलास एक—'शुद्ध-सत्त्व' नाम ।
शुद्ध-सत्त्व-मय यत वैकुण्ठादि-धाम ॥ ४३ ॥

चित्-शक्ति-विलास—आध्यात्मिक शक्ति में लीलाएँ; **एक**—एक; **शुद्ध-सत्त्व नाम**—शुद्ध-सत्त्व नामक, शुद्ध अस्तित्व, भौतिक कल्मष से रहित; **शुद्ध-सत्त्व-मय**—शुद्ध आध्यात्मिक अस्तित्व का; **यत**—सभी; **वैकुण्ठ-आदि-धाम**—वैकुण्ठ लोक।

अनुवाद

आध्यात्मिक शक्ति की एक लीला विशुद्ध सत्त्व के रूप में वर्णित है। इसमें सारे वैकुण्ठ-धाम सम्मिलित हैं।

षड्-विधैश्वर्य ताँहा सकल चिन्मय ।
सङ्कर्षणेर विभूति सब, जानिह निश्चय ॥ ४४ ॥

षड्-विधैश्वर्य्य ताँहा सकल चिन्मय ।
सङ्कर्षणेर विभूति सब, जानिह निश्चय ॥ ४४ ॥

षट्-विध-ऐश्वर्य्य—छः प्रकार के ऐश्वर्य; **ताँहा**—वहाँ; **सकल चित्-मय**—सब कुछ आध्यात्मिक; **सङ्कर्षणेर**—भगवान् संकर्षण का; **विभूति सब**—सभी विभिन्न विभूतियाँ; **जानिह निश्चय**—निश्चयात्मक रूप से जानते हैं।

अनुवाद

सारे छहों ऐश्वर्य आध्यात्मिक हैं। इसे निश्चित रूप से जानिए कि ये सब संकर्षण के ऐश्वर्य की ही अभिव्यक्तियाँ हैं।

'जीव'-नाम तटस्थाख्य एक शक्ति हय ।
महा-सङ्कर्षण——सब जीवेर आश्रय ॥ ४५ ॥

'जीव'-नाम तटस्थाख्य एक शक्ति हय ।
महा-सङ्कर्षण——सब जीवेर आश्रय ॥ ४५ ॥

जीव—जीव; **नाम**—नामक; **तट-स्था-आख्य**—तटस्था शक्ति नामक; **एक**—एक; **शक्ति**—शक्ति; **हय**—है; **महा-सङ्कर्षण**—महासंकर्षण; **सब**—सब; **जीवेर**—जीवों के; **आश्रय**—आश्रय।

अनुवाद

एक तटस्था शक्ति है, जो जीव कहलाती है। महासंकर्षण समस्त जीवों के आश्रय हैं।

याँहा हैते विश्वोत्पत्ति, याँहाते प्रलय ।
सेइ पुरुषेर सङ्कर्षण समाश्रय ॥ ४६ ॥

याँहा हैते विश्वोत्पत्ति, याँहाते प्रलय ।
सेइ पुरुषेर सङ्कर्षण समाश्रय ॥ ४६ ॥

याँहा हैते—जिनसे; **विश्व-उत्पत्ति**—भौतिक विश्व की उत्पत्ति; **याँहाते**—जिनमें; **प्रलय**—प्रलय, लीन होना; **सेइ पुरुषेर**—उसी भगवान् की; **सङ्कर्षण**—संकर्षण; **समाश्रय**—मूल आश्रय।

अनुवाद

संकर्षण पुरुष के मूल आश्रय हैं, जिनसे यह जगत् उत्पन्न होता है और जिनमें यह विलीन हो जाता है।

सर्वाश्रय, सर्वाद्भुत, ऐश्वर्य अपार ।
'अनन्त' कहिते नारे महिमा याँहार ॥ ४७ ॥

सर्वाश्रय, सर्वाद्भुत, ऐश्वर्य अपार ।
'अनन्त' कहिते नारे महिमा याँहार ॥ ४७ ॥

सर्व-आश्रय—सबके आश्रय; **सर्व-अद्भुत**—हर प्रकार से अद्भुत; **ऐश्वर्य**—ऐश्वर्य; **अपार**—जिसका पार न पाया जा सके, अपार; **अनन्त**—अनन्त शेष; **कहिते नारे**—कह नहीं सकते; **महिमा याँहार**—जिनकी महिमाएँ।

अनुवाद

वे (संकर्षण) सबके आश्रय हैं। वे हर प्रकार से अद्भुत हैं और उनका ऐश्वर्य अपार है, यहाँ तक कि अनन्त भी उनकी महिमा का वर्णन नहीं कर सकते।

तुरीय, विशुद्ध-सत्त्व, 'सङ्कर्षण' नाम ।
तिँहो याँर अंश, सेई नित्यानन्द-राम ॥ ४८ ॥

तुरीय, विशुद्ध-सत्त्व, 'सङ्कर्षण' नाम ।
तिंहो याँर अंश, सेइ नित्यानन्द-राम ॥ ४८ ॥

तुरीय—दिव्य; **विशुद्ध-सत्त्व**—विशुद्ध अस्तित्व; **सङ्कर्षण नाम**—संकर्षण नामक; **तिंहो याँर अंश**—जिनके संकर्षण भी एक अंश हैं; **सेइ नित्यानन्द-राम**—उनका नाम है बलराम अर्थात् नित्यानन्द।

अनुवाद

वे दिव्य शुद्ध सत्त्व संकर्षण नित्यानन्द बलराम के अंश विस्तार हैं।

अष्टम श्लोकेर कैल सङ्क्षेपे विवरण ।
नवम श्लोकेर अर्थ शुन दिया मन ॥ ४९ ॥

अष्टम श्लोकेर कैल सङ्क्षेपे विवरण ।
नवम श्लोकेर अर्थ शुन दिया मन ॥ ४९ ॥

अष्टम—आठवें; **श्लोकेर**—श्लोक का; **कैल**—मैंने किया है; **सङ्क्षेपे**—संक्षेप में; **विवरण**—विवरण; **नवम**—नौवें; **श्लोकेर**—श्लोक का; **अर्थ**—अर्थ; **शुन**—कृपया सुनो; **दिया मन**—मन लगाकर।

अनुवाद

मैंने आठवें श्लोक का संक्षिप्त विवेचन किया है। अब कृपा करके ध्यानपूर्वक नवें श्लोक की व्याख्या सुनें।

माया-भर्ताजाण्ड-सङ्घाश्रयाङ्गः
शेते साक्षात्कारणाम्भोधि-मध्ये ।
यस्यैकांशः श्री-पुमानादि-देवस्
तं श्री-नित्यानन्द-रामं प्रपद्ये ॥ ५० ॥

माया-भर्ताजाण्ड-सङ्घाश्रयाङ्गः
शेते साक्षात्कारणाम्भोधि-मध्ये ।
यस्यैकांशः श्री-पुमानादि-देवस्
तं श्री-नित्यानन्द-रामं प्रपद्ये ॥ ५० ॥

माया-भर्ता—माया के स्वामी; **अज-अण्ड-सङ्घ**—ब्रह्माण्ड समूह के; **आश्रय**—आश्रय; **अङ्गः**—जिनका शरीर; **शेते**—वे लेटे हैं; **साक्षात्**—साक्षात्; **कारण-अम्भोधि-मध्ये**—कारण सागर के बीच; **यस्य**—जिनका; **एक-अंशः**—एक भाग; **श्री-पुमान्**—परम पुरुष; **आदि-देवः**—आदि पुरुष अवतार; **तम्**—उनको; **श्री-नित्यानन्द-रामम्**—भगवान् नित्यानन्द के रूप में भगवान् बलराम की; **प्रपद्ये**—मैं शरण लेता हूँ।

अनुवाद

मैं श्री नित्यानन्द राम के चरणों में पूर्ण दण्डवत् प्रणाम अर्पित करता हूँ, जिनके अंशरूप कारण-सागर में लेटे हुए कारणोदकशायी विष्णु आदि पुरुष हैं, माया के पति हैं और समस्त ब्रह्माण्डों के आश्रय हैं।

वैकुण्ठ-बाहिरे येई ज्योतिर्मय धाम ।
ताहार बाहिरे 'कारणार्णव' नाम ॥ ५१ ॥

वैकुण्ठ-बाहिरे ग्रेइ ज्योतिर्मय धाम ।
ताहार बाहिरे 'कारणार्णव' नाम ॥ ५१ ॥

वैकुण्ठ-बाहिरे—वैकुण्ठ लोकों के बाहर; **ग्रेइ**—वह; **ज्योतिः-मय धाम**—निर्विशेष ब्रह्मज्योति; **ताहार बाहिरे**—उस ज्योति के बाहर; **कारण-अर्णव नाम**—कारण नामक सागर।

अनुवाद

वैकुण्ठ ग्रहों के बाहर निर्विशेष ब्रह्मतेज है और इस तेज से परे कारणार्णव या कारण सागर है।

तात्पर्य

निर्विशेष प्रकाशमान तेज, जो निर्विशेष ब्रह्म कहलाता है, वह आध्यात्मिक आकाश में वैकुण्ठ ग्रहों का बाह्य आकाश है। इस निर्विशेष ब्रह्म से परे महान् कारण सागर है, जो भौतिक आकाश तथा आध्यात्मिक आकाश के बीच स्थित है। भौतिक प्रकृति इस कारण समुद्र की गौण उत्पाद है।

जब कारण सागर में शयन करने वाले कारणोदकशायी विष्णु भौतिक प्रकृति पर दृष्टिपात करते हैं, तो ब्रह्माण्डों की सृष्टि होती है। फलतः कृष्ण को स्वयं भौतिक सृष्टि से कुछ भी लेना-देना नहीं होता। *भगवद्गीता* पुष्टि करती है कि भगवान् भौतिक प्रकृति पर दृष्टिपात करते हैं और इस तरह प्रकृति अनेक ब्रह्माण्डों को जन्म देती है। किन्तु न तो गोलोकवासी कृष्ण, न ही वैकुण्ठवासी नारायण भौतिक सृष्टि के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आते हैं। वे भौतिक शक्ति से पूर्णतया अलग रहते हैं।

कारणोदकशायी विष्णु के रूप में महासंकर्षण का यह कार्य है कि भौतिक सृष्टि पर दृष्टिपात करें, जो कारण सागर की सीमाओं से परे स्थित है। भौतिक प्रकृति का भगवान् से इतना ही सम्बन्ध है कि वे उस पर दृष्टिपात करते हैं, इससे आगे कुछ भी नहीं। कहा जाता है कि वह उनकी दृष्टि की शक्ति से ही गर्भधारण करती है। भौतिक शक्ति या *माया* कारण सागर को स्पर्श तक नहीं करती, क्योंकि भगवान् की दृष्टि बहुत दूर से उस पर केन्द्रित होती है।

भगवान् की दृष्टि-शक्ति सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड-शक्ति को सक्रिय करती है और इस तरह उसका कार्य तुरन्त ही प्रारम्भ हो जाता है। इससे यह सूचित होता है कि भौतिक प्रकृति कितनी भी शक्तिशाली क्यों न हो, उसमें अपनी खुद की

कोई शक्ति नहीं होती। उसकी क्रियाशीलता भगवान् की कृपा से प्रारम्भ होती है और तब सम्पूर्ण जागतिक सृष्टि नियमबद्ध रूप में प्रकट होती है। गर्भधारण करने वाली स्त्री के दृष्टान्त से इस विषय को समझने में कुछ सहायता मिल सकती है। माता निष्क्रिय रहती है, किन्तु पिता उसके गर्भ में अपनी शक्ति स्थापित करता है और इस तरह वह गर्भवती हो जाती है। वह अपने गर्भ में शिशु-जन्म के लिए आवश्यक सामग्री की पूर्ति करती है। इसी प्रकार भगवान् भी भौतिक प्रकृति को सक्रिय बनाते हैं, जिससे फिर वह विश्व के विकास हेतु सामग्री प्रदान करती है।

भौतिक प्रकृति की दो भिन्न अवस्थाएँ हैं। एक *प्रधान* कहलाती है, जो विश्व के विकास के लिए भौतिक सामग्री प्रदान करती है और दूसरी *माया* कहलाती है, जो समुद्र के बुलबुलों के समान क्षणभंगुर अपने अवयवों को प्रकट करती है। वास्तव में भौतिक प्रकृति की क्षणभंगुर अभिव्यक्ति मूलत: भगवान् के आध्यात्मिक दृष्टिपात से उत्पन्न होती है। भगवान् सृष्टि के प्रत्यक्ष या सुदूरवर्ती कारण हैं और भौतिक प्रकृति अप्रत्यक्ष या तात्कालिक कारण है। भौतिकतावादी विज्ञानी अपने तथाकथित अन्वेषणों के कारण हुए जादुई परिवर्तनों से गर्वित होकर पदार्थ के पीछे ईश्वर की वास्तविक शक्ति को नहीं देख सकते। इसलिए विज्ञान के करतब लोगों को मानव-जीवन के लक्ष्य को भुलाकर ईश्वरविहीन सभ्यता की ओर लिए जा रहे हैं। जीवन-लक्ष्य को भूलकर, भौतिकतावादी लोग आत्मनिर्भरता के पीछे भागते रहते हैं। उन्हें यह पता ही नहीं होता कि ईश्वर की कृपा से भौतिक प्रकृति पहले से ही आत्मनिर्भर है। इस प्रकार सभ्यता के नाम पर अव्यवस्था फैलाते हुए वे लोग प्रकृति की सहज आत्मनिर्भरता में असंतुलन उत्पन्न कर देते हैं।

मूल कारण को न जानकर भौतिक प्रकृति को ही सर्वेसर्वा मानना अज्ञान है। भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु आध्यात्मिक ज्ञान का दीप जलाकर इसी अज्ञान के अंधकार को दूर करने और समस्त जगत् को प्रकाशित करने के लिए अपनी अहैतुकी कृपा से प्रकट हुए।

माया किस प्रकार कृष्ण की शक्ति से कार्य करती है, इसे समझाने के लिए श्री *श्रीचैतन्य-चरितामृत* के रचयिता अग्नि में रखी लोहे की छड़ का

दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं—यद्यपि यह छड़ अग्नि नहीं होती, किन्तु यह लाल होकर स्वयं अग्नि जैसा कार्य करती है। इसी प्रकार भौतिक प्रकृति की सारी क्रियाएँ तथा प्रतिक्रियाएँ वास्तव में भौतिक प्रकृति के कार्य नहीं होतीं, अपितु पदार्थ के माध्यम से प्रकट हुई भगवान् की शक्ति की क्रियाएँ तथा प्रतिक्रियाएँ होती हैं। विद्युत शक्ति ताँबे के माध्यम से संचारित है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं होता कि ताँबा ही बिजली है। यह विद्युत शक्ति एक दक्ष व्यक्ति के नियन्त्रण में विद्युत-केन्द्र में उत्पन्न की जाती है। इसी तरह प्राकृतिक नियमों के मायाजाल के पीछे एक महान् पुरुष रहता है, जो विद्युत-केन्द्र के यांत्रिक अभियंता जैसा व्यक्ति होता है। उन्हीं की बुद्धि से यह सम्पूर्ण सृष्टि व्यवस्थित रूप से परिचालित होती है।

भौतिक कार्यों को प्रत्यक्ष रूप से उत्पन्न करने वाले प्रकृति के गुण भी मूलत: नारायण द्वारा सक्रिय बनाये जाते हैं। एक सरल उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायेगी : जब कुम्हार मिट्टी से घड़ा तैयार करता है, तो कुम्हार का चाक, उसके यांत्रिक उपकरण तथा मिट्टी उस घड़े के तात्कालिक कारण होते हैं, किन्तु कुम्हार मुख्य कारण होता है। इसी प्रकार नारायण समस्त भौतिक सृष्टियों के प्रधान कारण हैं, जबकि भौतिक शक्ति पदार्थ रूपी अवयवों की पूर्ति करती है। अतएव नारायण के बिना अन्य सारे कारण वैसे ही व्यर्थ हैं, जैसे कि कुम्हार के बिना उसका चाक तथा अन्य उपकरण व्यर्थ होते हैं। चूँकि भौतिक विज्ञानी भगवान् की उपेक्षा करते हैं, इससे ऐसा लगता है कि वे कुम्हार के चाक, उसकी गति, कुम्हार के यांत्रिक उपकरणों और घड़े की सामग्री के प्रति अधिक चिन्तित रहते हैं, किन्तु कुम्हार के विषय में उन्हें कोई ज्ञान नहीं रहता। अतएव आधुनिक विज्ञान ने ईश्वरविहीन अपूर्ण सभ्यता को जन्म दिया है, जो परम कारण के विषय में पूर्णतया अनजान है। वैज्ञानिक प्रगति का अभिप्राय किसी महान् लक्ष्य की प्राप्ति होना चाहिए और वह महान् लक्ष्य परम पुरुष भगवान् होने चाहिएँ। *भगवद्गीता* में कहा गया है कि अनेकानेक जन्मों तक खोज करने के बाद ही प्रयोगात्मक विचारधारा के महत्त्व पर जोर देने वाले ज्ञानवान पुरुष, समस्त कारणों के कारण भगवान् को जान पाते हैं। जब कोई उन्हें पूरी तरह जान लेता है, तब वह उनकी शरण स्वीकार करता है और महात्मा बन जाता है।

वैकुण्ठ वेड़िया एक आछे जल-निधि ।
अनन्त, अपार—तार नाहिक अवधि ॥५२॥

वैकुण्ठ बेड़िया एक आछे जल-निधि ।
अनन्त, अपार—तार नाहिक अवधि ॥५२॥

वैकुण्ठ—वैकुण्ठ के दिव्य लोकों की; **बेड़िया**—चारों ओर; **एक**—एक; **आछे**—है; **जल-निधि**—जलनिधि; **अनन्त**—अनन्त; **अपार**—अपार; **तार**—उसकी; **नाहिक**—नहीं; **अवधि**—सीमा।

अनुवाद

वैकुण्ठ के चारों ओर अपार जलराशि है, जो अनन्त, अगाध और असीम है।

वैकुण्ठेर पृथिव्यादि सकल चिन्मय ।
मायिक भूतेर तथि जन्म नाहि हय ॥५३॥

वैकुण्ठेर पृथिव्यादि सकल चिन्मय ।
मायिक भूतेर तथि जन्म नाहि हय ॥५३॥

वैकुण्ठेर—आध्यात्मिक जगत् की; **पृथिवी-आदि**—पृथ्वी, जल आदि; **सकल**—सब; **चित्-मय**—आध्यात्मिक; **मायिक**—भौतिक; **भूतेर**—तत्त्वों का; **तथि**—वहाँ; **जन्म**—उत्पत्ति; **नाहि हय**—नहीं हैं।

अनुवाद

वैकुण्ठ में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश—सभी आध्यात्मिक हैं। वहाँ भौतिक तत्त्व नहीं पाये जाते।

चिन्मय-जल सेइ परम कारण ।
यार एक कणा गङ्गा पतित-पावन ॥५४॥

चिन्मय-जल सेइ परम कारण ।
यार एक कणा गङ्गा पतित-पावन ॥५४॥

चित्-मय—चिन्मय; **जल**—जल; **सेइ**—वह; **परम कारण**—परम कारण; **यार**—जिसकी; **एक**—एक; **कणा**—बूँद; **गङ्गा**—पवित्र गंगा नदी; **पतित-पावन**—पतित आत्माओं को पावन करने वाली।

अनुवाद

अतएव परम कारण स्वरूप कारण सागर का जल आध्यात्मिक है। पवित्र गंगा नदी, जो उसकी एक बूँद मात्र है, पतितात्माओं को शुद्ध बनाती है।

सेइ त' कारणार्णवे सेइ सङ्कर्षण ।
आपनार एक अंशे करेन शयन ॥ ५५ ॥

सेइ त' कारणार्णवे सेइ सङ्कर्षण ।
आपनार एक अंशे करेन शयन ॥ ५५ ॥

सेइ—वह; **त'**—निश्चय ही; **कारण-अर्णवे**—कारणार्णव में या कारण सागर में; **सेइ**—वह; **सङ्कर्षण**—भगवान् संकर्षण; **आपनार**—अपना ही; **एक**—एक; **अंशे**—अंश से; **करेन शयन**—शयन करते हैं।

अनुवाद

उस सागर में भगवान् संकर्षण के एक पूर्ण अंश शयन करते हैं।

महत्स्रष्टा पुरुष, तिँहो जगत्कारण ।
आद्य-अवतार करे मायाय ईक्षण ॥ ५६ ॥

महत्स्रष्टा पुरुष, तिंहो जगत्कारण ।
आद्य-अवतार करे मायाय ईक्षण ॥ ५६ ॥

महत्-स्रष्टा—समग्र भौतिक शक्ति के निर्माता; **पुरुष**—पुरुष; **तिंहो**—वे; **जगत्-कारण**—भौतिक वैश्विक प्राकट्य के कारण; **आद्य**—मूल; **अवतार**—अवतार; **करे**—करते हैं; **मायाय**—भौतिक शक्ति पर; **ईक्षण**—दृष्टिपात।

अनुवाद

वे समग्र भौतिक शक्ति के सृजनकर्ता प्रथम पुरुष के नाम से जाने जाते हैं। वे समस्त ब्रह्माण्डों के कारण एवं प्रथम पुरुष अवतार माया के ऊपर दृष्टिपात करते हैं।

माया-शक्ति रहे कारणाब्धिर बाहिरे ।
कारण-समुद्र माया परशिते नारे ॥ ५७ ॥

माया-शक्ति रहे कारणाब्धिर बाहिरे ।
कारण-समुद्र माया परशिते नारे ॥ ५७॥

माया-शक्ति—भौतिक शक्ति; **रहे**—रहती है; **कारण-अब्धिर**—कारण सागर; **बाहिरे**—बाहर; **कारण-समुद्र**—कारण सागर; **माया**—भौतिक शक्ति; **परशिते नारे**—स्पर्श नहीं कर सकती।

अनुवाद

मायाशक्ति कारण सागर के बाहर निवास करती है। माया इसके जल को स्पर्श नहीं कर सकती।

সেই ত' মায়ার দুই-বিধ অবস্থিতি ।
জগতের উপাদান 'প্রধান', প্রকৃতি ॥ ৫৮॥

सेइ त' मायार दुइ-विध अवस्थिति ।
जगतेर उपादान 'प्रधान', प्रकृति ॥ ५८॥

सेइ—वह; **त'**—निश्चित रूप से; **मायार**—भौतिक शक्ति के; **दुइ-विध**—दो प्रकार; **अवस्थिति**—अस्तित्व; **जगतेर**—भौतिक संसार का; **उपादान**—अवयव; **प्रधान**—प्रधान नामक; **प्रकृति**—भौतिक प्रकृति।

अनुवाद

माया का अस्तित्व दो प्रकार का होता है। एक प्रधान या प्रकृति कहलाता है। यह भौतिक जगत् के अवयवों (उपादानों) की पूर्ति करता है।

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की बहिरंगा शक्ति माया दो भागों में विभक्त है। माया ही भौतिक जगत् की कारण है और वही सृजन की सामग्री (उपादान) उपलब्ध करने वाली माध्यम है। वैश्विक प्राकट्य की कारण होने के फलस्वरूप वह *माया* कहलाती है और वैश्विक प्राकट्य की सामग्री की पूर्ति करने के कारण वह *प्रधान* कहलाती है। *श्रीमद्भागवत* (११.२४.१-४) में बहिरंगा शक्ति के इन विभागों का स्पष्ट वर्णन मिलता है। *श्रीमद्भागवत* में ही अन्यत्र (१०.६३.२६) जगत् के सृजन की सामग्री एवं कारण का वर्णन इस प्रकार हुआ है :

कालो दैवं कर्म जीवः स्वभावो
द्रव्यं क्षेत्रं प्राण आत्मा विकारः।
तत्सङ्घातो बीजरोह
प्रवाहस्त्वन्मायैषा तन्निषेधं प्रपद्ये॥

"हे प्रभु! काल, कर्म, भाग्य तथा प्रकृति—ये बहिरंगा शक्ति के कारण पक्ष माया के चार अंश हैं। बद्ध प्राण-शक्ति, सूक्ष्म भौतिक अवयव, जिन्हें द्रव्य कहते हैं तथा भौतिक प्रकृति (वह कार्यक्षेत्र जिसमें मिथ्या अहंकार आत्मा के रूप में कार्य करता है), ग्यारह इन्द्रियाँ और पाँच तत्त्व (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश) शरीर के ये कुल सोलह अवयव—ये सब माया के अवयव (उपादान) हैं। शरीर कर्म से उत्पन्न होता है और कर्म शरीर से उत्पन्न होता है, उसी तरह जिस प्रकार वृक्ष से बीज उत्पन्न होता है और फिर बीज से वृक्ष उत्पन्न होता है। यही पारस्परिक कार्य-कारण का क्रम माया कहलाता है। हे स्वामी, आप मुझे इस कार्य-कारण के चक्र से बचा सकते हैं। मैं आपके चरणकमलों की पूजा करता हूँ।"

यद्यपि जीव मुख्य रूप से माया के कारण (निमित्त) अंश से सम्बन्धित है, फिर भी इसका संचालन माया के अवयवों द्वारा होता है। माया के कारण अंश में तीन शक्तियाँ कार्यरत रहती हैं—ज्ञान, इच्छा तथा कर्म। भौतिक अवयव प्रधान के रूप में माया की अभिव्यक्ति होते हैं। दूसरे शब्दों में, जब माया के तीन गुण सुप्त अवस्था में रहते हैं, तो वे *प्रकृति, अव्यक्त* या *प्रधान* रूप में रहते हैं। *अव्यक्त* शब्द प्रधान का दूसरा नाम है। अव्यक्त अवस्था में भौतिक प्रकृति विविधता से रहित होती है। यह विविधता माया के प्रधान अंश द्वारा व्यक्त होती है। अतएव प्रधान शब्द अव्यक्त या प्रकृति से अधिक महत्त्वपूर्ण है।

जगत्कारण नहे प्रकृति जड़-रूपा ।
शक्ति सञ्चारिया तारे कृष्ण करे कृपा ॥५९॥

जगत्कारण नहे प्रकृति जड़-रूपा ।
शक्ति सञ्चारिया तारे कृष्ण करे कृपा ॥५९॥

जगत्—भौतिक जगत् का; **कारण**—कारण; **नहे**—नहीं हो सकती; **प्रकृति**—भौतिक

प्रकृति; **जड़-रूपा**—जड़ रूपा, कर्म के बिना; **शक्ति**—शक्ति; **सञ्चारिया**—संचार करके; **तारे**—जड़ भौतिक प्रकृति पर; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **करे**—करते हैं; **कृपा**—दया, कृपा।

अनुवाद

चूँकि प्रकृति जड़ तथा निष्क्रिय है, अतएव यह वास्तव में भौतिक जगत् की कारण नहीं हो सकती। लेकिन भगवान् कृष्ण जड़ निष्क्रिय भौतिक प्रकृति में अपनी शक्ति संचारित करके अपनी कृपा प्रदर्शित करते हैं।

कृष्ण-शक्त्ये प्रकृति हय गौण कारण ।
अग्नि-शक्त्ये लौह यैछे करय़े जारण ॥ ६०॥

कृष्ण-शक्त्ये प्रकृति हय गौण कारण ।
अग्नि-शक्त्ये लौह य़ैछे करये जारण ॥ ६०॥

कृष्ण-शक्त्ये—कृष्ण की शक्ति से; **प्रकृति**—भौतिक प्रकृति; **हय**—हो जाती है; **गौण**—गौण; **कारण**—कारण; **अग्नि-शक्त्ये**—अग्नि की शक्ति से; **लौह**—लोहा; **य़ैछे**—जैसे; **करये**—हो जाता है; **जारण**—शक्तिशाली या रक्तोष्ण।

अनुवाद

इस तरह भगवान् कृष्ण की शक्ति के द्वारा प्रकृति गौण कारण बन जाती है, जिस तरह लोहा अग्नि की शक्ति से लाल हो जाता है।

अतएव कृष्ण मूल-जगत्कारण ।
प्रकृति—कारण यैछे अजा-गल-स्तन ॥ ६१॥

अतएव कृष्ण मूल-जगत्कारण ।
प्रकृति—कारण य़ैछे अजा-गल-स्तन ॥ ६१॥

अतएव—अतएव; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **मूल**—मूल; **जगत्-कारण**—जगत् के कारण; **प्रकृति**—भौतिक प्रकृति; **कारण**—कारण; **य़ैछे**—ठीक जैसे; **अजा-गल-स्तन**—बकरी के गले पर के स्तन।

अनुवाद

अतएव भगवान् कृष्ण इस जगत् के प्राकट्य के मूल कारण हैं।

प्रकृति तो बकरी के गले से लटकने वाले उन स्तनों की भाँति है, जिनसे दूध नहीं निकलता।

तात्पर्य

बहिरंगा शक्ति मायाशक्ति कहलाती है। यह अवयव (सामग्री) उपलब्ध कराने वाली के रूप में *प्रधान* या *प्रकृति* से युक्त होती है तथा कारण-अंश के रूप में *माया* से युक्त होती है। जड़ भौतिक प्रकृति इस भौतिक जगत् का वास्तविक कारण नहीं है, क्योंकि कृष्ण के पूर्ण विस्तार कारणार्णवशायी महाविष्णु सारे अवयवों (उपादानों) को सक्रिय बनाते हैं। भौतिक प्रकृति में अवयवों की पूर्ति करने की शक्ति इसी प्रकार आती है। यहाँ पर लोहे का उदाहरण दिया गया है, जिसमें गर्म करने या जलाने का गुण नहीं होता, किन्तु वही लोहा अग्नि के सम्पर्क में आकर लाल हो जाता है और गर्मी दे सकता है तथा अन्य वस्तुओं को जला सकता है। भौतिक प्रकृति भी लोहे की भाँति है, क्योंकि उसमें भी अग्नितुल्य विष्णु का स्पर्श पाये बिना कार्य करने की स्वतंत्रता नहीं होती। भगवान् विष्णु अपनी दृष्टि शक्ति से भौतिक प्रकृति को उत्तेजित करते हैं और तब लौह-तुल्य भौतिक प्रकृति सामग्री प्रदान करने में सक्षम हो जाती है, जिस तरह गरम लोहा जलाने का कार्य कर सकता है। प्रकृति स्वतन्त्र रूप से सामग्री की आपूर्ति करने में सक्षम नहीं है। इसकी स्पष्ट व्याख्या ईश्वर के अवतार श्री कपिलदेव द्वारा *श्रीमद्भागवत* (३.२८.४०) में की गई है :

यथोल्मुकाद् विस्फुलिङ्गाद् धूमाद् वापि स्वसम्भवात्।
अप्यात्मत्वेनाभिमताद् यथाग्निः पृथगुल्मुकात्॥

"यद्यपि धुआँ, जलती लकड़ी तथा स्फुलिंग सभी मिलकर अग्नि के अवयव कहलाते हैं, फिर भी जलती लकड़ी अग्नि से भिन्न होती है और धुआँ जलती लकड़ी से भिन्न होता है।" सारे भौतिक तत्त्व (पृथ्वी, जल, अग्नि इत्यादि) धुएँ के समान हैं, सारे जीव स्फुलिंग तुल्य हैं और *प्रधान* के रूप में भौतिक प्रकृति जलती लकड़ी के समान है। किन्तु ये सभी मिलकर पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से शक्ति प्राप्त करते हैं और तब अपनी पृथक् क्षमता प्रदर्शित कर पाते हैं। दूसरे शब्दों में, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सारी सृष्टि के मूल हैं। भौतिक

प्रकृति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की दृष्टि-शक्ति से सक्रिय होने पर ही कुछ प्रदान कर सकती है।

जिस प्रकार स्त्री पुरुष का वीर्य धारण करने के बाद ही सन्तान को जन्म दे सकती है, उसी प्रकार भौतिक प्रकृति भी महाविष्णु की दृष्टि-शक्ति प्राप्त होने पर ही भौतिक अवयवों को प्रदान कर सकती है। अतएव *प्रधान* पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की अध्यक्षता से कभी स्वतन्त्र नहीं हो सकता। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (९.१०) में की गई है—*मयाध्यक्षेणप्रकृतिः सूयते सचराचरम्*—सम्पूर्ण भौतिक शक्ति अर्थात् प्रकृति भगवान् की अध्यक्षता में कार्य करती है। भौतिक तत्त्वों के मूल स्रोत कृष्ण हैं। अतएव कृष्ण को भुलाकर भौतिक प्रकृति को ही इन तत्त्वों का स्रोत मानने का नास्तिक सांख्य दार्शनिकों का प्रयास ठीक उसी तरह व्यर्थ है, जिस प्रकार बकरी के गले से लटकते हुए स्तन के समान दिखने वाले पिण्ड से दूध प्राप्त करने का प्रयास व्यर्थ होता है।

মায়া-অংশে কহি তারে নিমিত্ত-কারণ ।
সেহ নহে, যাতে কর্তা-হেতু—নারায়ণ ॥ ৬২ ॥

माया-अंशे कहि तारे निमित्त-कारण ।
सेह नहे, ग्राते कर्ता-हेतु—नारायण ॥ ६२ ॥

माया-अंशे—भौतिक प्रकृति के दूसरे भाग को; **कहि**—मैं कहता हूँ; **तारे**—उसको; **निमित्त-कारण**—तात्कालिक कारण; **सेह नहे**—वह नहीं हो सकता; **ग्राते**—क्योंकि; **कर्ता-हेतु**—मूल कारण; **नारायण**—भगवान् नारायण।

अनुवाद

भौतिक प्रकृति का माया अंश विश्व के प्राकट्य का तात्कालिक कारण है। किन्तु यह वास्तविक कारण नहीं हो सकता, क्योंकि मूल कारण तो भगवान् नारायण हैं।

ঘটের নিমিত্ত-হেতু যৈছে কুম্ভকার ।
তৈছে জগতের কর্তা—পুরুষাবতার ॥ ৬৩ ॥

घटेर निमित्त-हेतु ग्रैछे कुम्भकार ।
तैछे जगतेर कर्ता—पुरुषावतार ॥ ६३ ॥

घटेर—मिट्टी के घड़े का; **निमित्त-हेतु**—मूल कारण; **ग्रैछे**—जैसे; **कुम्भकार**—कुम्हार; **तैछे**—इसी प्रकार; **जगतेर कर्ता**—भौतिक जगत् के स्रष्टा; **पुरुष-अवतार**—पुरुष अवतार या कारणार्णवशायी विष्णु।

अनुवाद

जिस प्रकार मिट्टी के पात्र का मूल कारण कुम्हार है, उसी तरह भौतिक जगत् के स्रष्टा प्रथम पुरुषावतार (कारणार्णवशायी विष्णु) हैं।

कृष्ण—कर्ता, माया তাঁর করেন সহায় ।
ঘটের কারণ—চক্র-দণ্ডাদি উপায় ॥ ৬৪॥

कृष्ण—कर्ता, माया ताँर करेन सहाय ।
घटेर कारण—चक्र-दण्डादि उपाय ॥ ६४॥

कृष्ण—भगवान् कृष्ण; **कर्ता**—स्रष्टा; **माया**—भौतिक शक्ति; **ताँर**—उनकी; **करेन**—करती है; **सहाय**—सहायता; **घटेर कारण**—घड़े का कारण; **चक्र-दण्ड-आदि**—चक्र, दण्ड आदि; **उपाय**—साधन।

अनुवाद

भगवान् कृष्ण स्रष्टा हैं और माया उपकरण के रूप में उनकी सहायता के लिए है, ठीक वैसे ही जैसे कुम्हार का चाक तथा अन्य उपकरण पात्र के साधन-रूप कारण होते हैं।

দূর হৈতে পুরুষ করে মায়াতে অবধান ।
জীব-রূপ বীর্য তাতে করেন আধান ॥ ৬৫॥

दूर हैते पुरुष करे मायाते अवधान ।
जीव-रूप वीर्य ताते करेन आधान ॥ ६५॥

दूर हैते—दूर से; **पुरुष**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **करे**—करते हैं; **मायाते**—भौतिक शक्ति पर; **अवधान**—दृष्टिपात करके; **जीव-रूप**—जीव; **वीर्य**—वीर्य, बीज; **ताते**—उसमें; **करेन**—करते हैं; **आधान**—गर्भवती।

अनुवाद

प्रथम पुरुष दूर से माया पर दृष्टिपात करते हैं और इस प्रकार वे जीव रूपी वीर्य से गर्भाधान कराते हैं।

एक अङ्गाभासे करे मायाते मिलन ।
माया हैते जन्मे तबे ब्रह्माण्डेर गण ॥ ६६ ॥

एक—एक; **अङ्ग-आभासे**—शारीरिक परछाई; **करे**—करता है; **मायाते**—भौतिक शक्ति में; **मिलन**—मिश्रण; **माया**—भौतिक शक्ति माया; **हैते**—से; **जन्मे**—जन्म लेता है; **तबे**—तब; **ब्रह्म-अण्डेर गण**—ब्रह्माण्ड का समूह।

अनुवाद

उसके शरीर की प्रतिफलित किरणें माया से मिलती हैं, जिसके फलस्वरूप माया अनेक ब्रह्माण्डों को जन्म देती है।

तात्पर्य

वैदिक निष्कर्ष यही है कि बद्धजीवों को दिखने वाला प्रकट जगत् परम सत्य भगवान् द्वारा उनकी विशिष्ट शक्तियों से उत्पन्न किया गया है, यद्यपि नास्तिक मानते हैं कि यह जगत् भौतिक प्रकृति द्वारा उत्पन्न हुआ है। परम सत्य भगवान् की शक्ति तीन प्रकार से प्रदर्शित होती है—आध्यात्मिक, भौतिक और तटस्था। परम सत्य अपनी आध्यात्मिक शक्ति से अभिन्न हैं। भौतिक शक्ति इसी आध्यात्मिक शक्ति के सम्पर्क में आने पर ही कार्य कर सकती है और इस तरह क्षणिक भौतिक जगत् सक्रिय प्रतीत होता है। बद्ध अवस्था में तटस्था शक्ति के सारे जीव आध्यात्मिक तथा भौतिक शक्तियों के मिश्रण होते हैं। तटस्था शक्ति मूलत: आध्यात्मिक शक्ति के अधीन है, किन्तु सारे जीव इस भौतिक जगत् में भौतिक शक्ति के वशीभूत होकर अनन्त काल से विस्मृति की दशा में भटक रहे हैं।

बद्ध अवस्था का कारण आध्यात्मिक स्तर की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का दुरुपयोग है, क्योंकि इससे जीव आध्यात्मिक शक्ति की संगति से अलग हो जाता है। किन्तु जब जीव भगवान् की कृपा से या उनके शुद्ध भक्त की कृपा से ज्ञान प्राप्त करता है और अपनी प्रेममयी सेवा की मूल स्थिति को पुन: प्राप्त करने की ओर उन्मुख होता है, तब वह शाश्वत आनन्द तथा ज्ञान के अत्यन्त शुभ धरातल पर स्थित होता है। जब जीव स्वतन्त्र भाव से यह सोचता है कि

वह शक्ति नहीं अपितु शक्तिमान है, तब वह तटस्थ शक्तिरूप जीव अपनी स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करके सनातन सेवा के भाव से विमुख हो जाता है। अपने अस्तित्व की इस भ्रान्त धारणा के वशीभूत होकर वह भौतिक प्रकृति पर अपना प्रभुत्व जताने लगता है।

भौतिक प्रकृति आध्यात्मिक शक्ति के सर्वथा विपरीत प्रतीत होती है। तथ्य तो यह है कि भौतिक शक्ति आध्यात्मिक शक्ति के सम्पर्क में आने पर ही कार्य कर सकती है। कृष्ण की शक्ति मूलत: आध्यात्मिक है, किन्तु वह नाना रूपों में कार्य करती है—यथा विद्युत शक्ति, जो ठंडा या गरम करने के विविध कार्य कर सकती है। भौतिक शक्ति आध्यात्मिक शक्ति ही है, जो भ्रम के आवरण से या माया से आच्छादित है। अतएव भौतिक शक्ति कार्य करने में आत्मनिर्भर नहीं है। भौतिक शक्ति में कृष्ण अपनी आध्यात्मिक शक्ति लगाते हैं; तभी वह कार्य कर पाती है, जिस तरह लोहा अग्नि में गरम होने के बाद ही अग्नि की तरह कार्य कर सकता है। भौतिक शक्ति तभी कार्य कर सकती है, जब वह आध्यात्मिक शक्ति द्वारा अधिकृत होती है।

जब जीव भौतिक शक्ति के आवरण से आच्छादित हो जाता है, तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की आध्यात्मिक शक्ति होते हुए भी वह आध्यात्मिक शक्ति के कार्यकलापों को भूल जाता है और सोचता है कि जगत् में जो कुछ भी घटित हो रहा है, वह अद्‌भुत है। किन्तु पूरी तरह से कृष्णभावना में, भक्ति में लगा रहने वाला व्यक्ति सदैव आध्यात्मिक शक्ति में स्थित है। वह समझ सकता है कि भौतिक शक्ति का कोई स्वतन्त्र सामर्थ्य नहीं होता। जितने भी कार्य सम्पन्न हो रहे हैं, वे आध्यात्मिक शक्ति की सहायता के कारण हो रहे हैं। भौतिक शक्ति, जो आध्यात्मिक शक्ति का विकृत रूप है, उससे हर वस्तु विकृत होकर प्रस्तुत होती है; फलस्वरूप द्वैतावस्था तथा भ्रान्ति उत्पन्न होती है। भौतिक विज्ञानी तथा दार्शनिक भौतिक प्रकृति के जादू से वशीभूत होकर यह मान बैठते हैं कि भौतिक शक्ति स्वयमेव कार्य करती है, अतएव बकरी के गले पर लटकते स्तन जैसे दिखने वाले चमड़ी के पिण्ड से दूध प्राप्त करने का प्रयास करने वाले भ्रान्त व्यक्ति की तरह वे हताश हो जाते हैं। जिस तरह चर्म के इन थैलों (स्तनों) से दूध प्राप्त करने की आशा व्यर्थ है, उसी तरह यदि कोई चाहे

कि वह भौतिक शक्ति से पैदा किये गये सिद्धान्त प्रस्तुत करके सृष्टि के मूल कारण को समझने में सफल होगा, तो इसकी कोई सम्भावना नहीं है। ऐसा प्रयास अज्ञानता का सूचक है।

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की भौतिक शक्ति *माया* या भ्रमणा कहलाती है, क्योंकि वह दो सामर्थ्यों के कारण (भौतिक तत्त्व प्रदान करके तथा जगत् की सृष्टि करके) बद्धजीव को सृष्टि के वास्तविक सत्य को समझने में अक्षम बनाती है। किन्तु जब जीव पदार्थ के बद्ध जीवन से मुक्त हो जाता है, तब वह भौतिक प्रकृति के दो विभिन्न कार्यों, आच्छादित करने तथा मोहग्रस्त करने को समझ सकता है।

सृष्टि के स्रोत पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। *भगवद्गीता* (९.१०) में पुष्टि की गई है कि यह प्रकट जगत् परमेश्वर के निर्देशन में कार्य कर रहा है, जो भौतिक शक्ति को तीन भौतिक गुण प्रदान करते हैं। इन गुणों से सक्रिय होकर भौतिक शक्ति द्वारा दिये गये तत्त्व नाना प्रकार की वस्तुएँ उत्पन्न करते हैं, जिस प्रकार एक चित्रकार लाल, पीले तथा नीले—इन तीन रंगों को मिलाकर तरह-तरह के चित्र तैयार करता है। इनमें से पीला रंग सत्त्वगुण का, लाल रजोगुण का और नीला तमोगुण का द्योतक है। अतएव रंगीन भौतिक सृष्टि इन्हीं तीन गुणों की अन्तर्क्रिया से बनी है और ८१ प्रकार के मिश्रण प्रदर्शित करती है। (तीन गुना तीन नौ होता है और नौ गुना नौ ८१ होता है।) भौतिक शक्ति से भ्रमित होकर बद्धजीव इन ८१ प्रकार की अभिव्यक्तियों से मोहित होकर भौतिक प्रकृति पर प्रभुत्व जताना चाहता है, जिस प्रकार एक पतंगा अग्नि का भोग करना चाहता है। यह भ्रम या मोह बद्धजीव द्वारा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के साथ अपने सनातन सम्बन्ध को भूल जाने का प्रतिफल होता है। बद्ध होने पर भौतिक शक्ति जीव को बाध्य करती है कि वह इन्द्रियतृप्ति में रत हो, जबकि आध्यात्मिक शक्ति से प्रबुद्ध हुआ व्यक्ति अपने सनातन सम्बन्ध के अनुसार भगवान् की सेवा में रत होता है।

कृष्ण आध्यात्मिक जगत् के मूल कारण और भौतिक जगत् के प्रच्छन्न कारण हैं। वे तटस्था शक्ति अर्थात् जीवों के भी मूल कारण हैं। वे उन जीवों के अग्रणी एवं पालक हैं, जो तटस्था शक्ति कहलाते हैं, क्योंकि ये जीव

आध्यात्मिक शक्ति के संरक्षण में या भौतिक शक्ति के आवरण के अन्तर्गत कार्य कर सकते हैं। आध्यात्मिक शक्ति के प्रभाव से हम समझ सकते हैं कि केवल कृष्ण में ही स्वतन्त्रता दिखती है और कृष्ण अपनी अचिन्त्य शक्ति द्वारा इच्छानुसार कार्य करने में सक्षम हैं।

भगवान् परम पूर्ण हैं और सारे जीव परम पूर्ण के अंश हैं। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तथा जीवों का यह सम्बन्ध शाश्वत है। किसी को गलती से यह नहीं सोचना चाहिए कि आध्यात्मिक पूर्ण को क्षुद्र भौतिक शक्ति द्वारा छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँटा जा सकता है। *भगवद्गीता* में इस मायावाद सिद्धान्त का समर्थन नहीं होता, प्रत्युत उसमें यह स्पष्ट कहा गया है कि जीव शाश्वत रूप से सर्वोपरि आध्यात्मिक पूर्ण के छोटे अंश हैं। जिस प्रकार कोई अंश कभी भी पूर्ण के समान नहीं हो सकता, उसी प्रकार परम पूर्ण का क्षुद्र अंश होने के कारण जीव कभी भी परम पूर्ण भगवान् की समता नहीं कर सकता। यद्यपि भगवान् तथा जीव मात्रा की दृष्टि से क्रमशः पूर्ण तथा अंशों के रूप में सम्बन्धित हैं, किन्तु गुण की दृष्टि से सारे अंश पूर्ण के साथ समान हैं। इस तरह यद्यपि सारे जीव गुणात्मक दृष्टि से भगवान् जैसे होते हैं, किन्तु वे सापेक्ष पद पर होते हैं। पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर सारी वस्तुओं के नियामक हैं और जीव या तो भौतिक शक्ति द्वारा या आध्यात्मिक शक्ति द्वारा सदैव नियन्त्रित होते हैं। अतएव जीव कभी भी भौतिक या आध्यात्मिक शक्तियों का नियन्ता नहीं बन सकता। जीव की स्वाभाविक स्थिति यह है कि वह सदैव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अधीन होता है। जब कोई इस स्थिति में कार्य करना स्वीकार करता है, तो उसे जीवन की पूर्णता प्राप्त होती है, किन्तु इस सिद्धान्त के विरुद्ध विद्रोह करने पर वह बद्ध अवस्था को प्राप्त होता है।

अगण्य, अनन्त यत अण्ड-सन्निवेश ।
तत-रूपे पुरुष करे सबाते प्रकाश ॥ ६७ ॥

अगण्य, अनन्त यत अण्ड-सन्निवेश ।
तत-रूपे पुरुष करे सबाते प्रकाश ॥ ६७ ॥

अगण्य—असंख्य; **अनन्त**—अनन्त; **यत**—सब; **अण्ड**—ब्रह्माण्ड; **सन्निवेश**—समूह;

तत-रूपे—उतने ही रूपों में; **पुरुष**—भगवान्; **करे**—करते हैं; **सबाते**—उनमें से प्रत्येक में; **प्रकाश**—प्राकट्य, प्रकाश।

अनुवाद

पुरुष असंख्य ब्रह्माण्डों में से प्रत्येक में प्रवेश करते हैं। वे अपने आपको उतने ही पृथक् रूपों में प्रकट करते हैं, जितने कि ब्रह्माण्ड हैं।

पुरुष-नासाते यबे बाहिराय श्वास ।
निश्वास सहिते हय ब्रह्माण्ड-प्रकाश ॥६८॥

पुरुष-नासाते यबे बाहिराय श्वास ।
निश्वास सहिते हय ब्रह्माण्ड-प्रकाश ॥ ६८ ॥

पुरुष-नासाते—भगवान् के नथुनों से; **यबे**—जब; **बाहिराय**—बाहर निकलता है; **श्वास**—श्वास; **निश्वास सहिते**—निःश्वास के साथ; **हय**—होता है; **ब्रह्माण्ड-प्रकाश**—ब्रह्माण्डों का प्राकट्य।

अनुवाद

जब पुरुष श्वास छोड़ते हैं, तो प्रत्येक उच्छ्वास के साथ ब्रह्माण्ड प्रकट होते हैं।

पुनरपि श्वास यबे प्रवेशे अन्तरे ।
श्वास-सह ब्रह्माण्ड पैशे पुरुष-शरीरे ॥६९॥

पुनरपि श्वास यबे प्रवेशे अन्तरे ।
श्वास-सह ब्रह्माण्ड पैशे पुरुष-शरीरे ॥ ६९ ॥

पुनरपि—तत्पश्चात्; **श्वास**—श्वास; **यबे**—जब; **प्रवेशे**—प्रवेश करता है; **अन्तरे**—अन्दर; **श्वास-सह**—उस श्वास के साथ; **ब्रह्माण्ड**—ब्रह्माण्ड; **पैशे**—प्रवेश करते हैं; **पुरुष-शरीरे**—भगवान् के शरीर में।

अनुवाद

तत्पश्चात् जब वे श्वास लेते हैं, तब सारे ब्रह्माण्ड पुनः उसके शरीर में प्रवेश कर जाते हैं।

तात्पर्य

कारणोदकशायी विष्णु के रूप में भगवान् प्रकृति को अपनी दृष्टि से गर्भित

करते हैं। उस दृष्टि के दिव्य अणु आत्मा के कण अथवा आध्यात्मिक परमाणु होते हैं, जो विगत वैश्विक प्राकट्यों में उनके व्यक्तिगत *कर्म* के बीज के अनुसार विभिन्न योनियों में प्रकट होते हैं। भगवान् स्वयं अपने अंश रूप में असंख्य ब्रह्माण्डों का समूह उत्पन्न करते हैं और इन ब्रह्माण्डों में से प्रत्येक में गर्भोदकशायी विष्णु के रूप में प्रवेश कर जाते हैं। *भगवद्गीता* में उनका माया के सम्पर्क में आना वायु तथा आकाश के उदाहरण द्वारा समझाया गया है। आकाश प्रत्येक भौतिक वस्तु में प्रवेश करता है, फिर भी यह हमसे दूर रहता है।

गवाक्षेर रन्ध्रे येन त्रसरेणु चले ।
पुरुषेर लोम-कूपे ब्रह्माण्डेर जाले ॥७०॥

गवाक्षेर रन्ध्रे येन त्रसरेणु चले ।
पुरुषेर लोम-कूपे ब्रह्माण्डेर जाले ॥७०॥

गवाक्षेर—कमरों की खिड़कियों के; **रन्ध्रे**—छिद्रों के भीतर; **येन**—की भाँति; **त्रसरेणु**—छः अणु इकट्ठे; **चले**—चलते हैं; **पुरुषेर**—भगवान् के; **लोम-कूपे**—रोम-छिद्रों में; **ब्रह्माण्डेर**—ब्रह्माण्डों के; **जाले**—जाली।

अनुवाद

जिस प्रकार धूल के छोटे-छोटे कण खिड़की के छेदों से निकल जाते हैं, उसी तरह ब्रह्माण्डों के समूह पुरुष के रोम-छिद्रों से होकर निकल जाते हैं।

यस्यैक-निश्वसित-कालमथावलम्ब्य
जीवन्ति लोम-विलजा जगदण्ड-नाथाः ।
विष्णुर्महान्स इह यस्य कला-विशेषो
गोविन्दमादि-पुरुषं तमहं भजामि ॥७१॥

यस्यैक-निश्वसित-कालमथावलम्ब्य
जीवन्ति लोम-विलजा जगदण्ड-नाथाः ।
विष्णुर्महान्स इह यस्य कला-विशेषो
गोविन्दमादि-पुरुषं तमहं भजामि ॥७१॥

ग्रस्य—जिनके; **एक**—एक; **निश्वसित**—नि:श्वास के; **कालम्**—समय; **अथ**—इस प्रकार; **अवलम्ब्य**—का सहारा लेकर; **जीवन्ति**—जीवित रहते हैं; **लोम-विल-जाः**—बाल के छिद्रों में विकसित; **जगत्-अण्ड-नाथाः**—ब्रह्माण्डों के स्वामी (ब्रह्मागण); **विष्णुः महान्**—परम स्वामी, महाविष्णु; **सः**—वह; **इह**—यहाँ; **ग्रस्य**—जिनका; **कला-विशेषः**—विशिष्ट अंश या विस्तार; **गोविन्दम्**—भगवान् गोविन्द; **आदि-पुरुषम्**—आदि पुरुष; **तम्**—उनकी; **अहम्**—मैं; **भजामि**—पूजा करता हूँ।

अनुवाद

"ब्रह्मागण तथा भौतिक लोकों के अन्य स्वामी महाविष्णु के रोमछिद्रों से उत्पन्न होते हैं और उनके एक उच्छ्वास-काल तक जीवित रहते हैं। मैं उन आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ, महाविष्णु जिनके पूर्ण अंश के अंश हैं।"

तात्पर्य

भगवान् की सृजन-शक्ति का यह वर्णन *ब्रह्म-संहिता* (५.४८) से लिया गया है, जिसकी रचना ब्रह्माजी ने आत्म-साक्षात्कार होने के बाद की। जब महाविष्णु श्वास छोड़ते हैं, तो ब्रह्माण्ड के आध्यात्मिक बीज अणुओं जैसे कणों के रूप में उनसे प्रकट होते हैं। ये कण परमाणु के आकार से तिगुने होते हैं और उन धूल-कणों जैसे हैं, जो एक छोटे-से छेद में से होकर सूर्य की किरणों में दिखते हैं। आज के परमाणु-शोध के दिनों में परमाणु विज्ञानियों के लिए यह जानना सार्थक होगा कि सारा ब्रह्माण्ड किस तरह भगवान् के शरीर से निकलने वाले आध्यात्मिक परमाणुओं से विकसित होता है।

काहं तमो-महदहं-ख-चराग्नि-वार्भू-
संवेष्टिताण्ड-घट-सप्त-वितस्ति-कायः ।
क्वेदृग्विधाविगणिताण्ड-पराणु-चर्या-
वाताध्व-रोम-विवरस्य च ते महित्वम् ॥७२॥

क्वाहं तमो-महदहं-ख-चराग्नि-वार्भू-
संवेष्टिताण्ड-घट-सप्त-वितस्ति-कायः ।
क्वेदृग्विधाविगणिताण्ड-पराणु-चर्या-
वाताध्व-रोम-विवरस्य च ते महित्वम् ॥७२॥

क्व—कहाँ; **अहम्**—मैं; **तमः**—भौतिक प्रकृति; **महत्**—समग्र भौतिक शक्ति; **अहम्**—मिथ्या अहंकार; **ख**—आकाश; **चर**—वायु; **अग्नि**—अग्नि; **वाः**—जल; **भू**—पृथ्वी; **संवेष्टित**—से घिरे हुए; **अण्ड-घट**—घड़े जैसे ब्रह्माण्ड से; **सप्त-वितस्ति**—सात बलिश्त; **कायः**—शरीर; **क्व**—कहाँ; **ईदृक्**—ऐसा; **विध**—जैसा; **अविगणित**—असीम; **अण्ड**—ब्रह्माण्ड; **पर-अणु-चर्या**—बारीक धूल की तरह उड़ती हुई; **वात-अध्व**—वायु छिद्र; **रोम**—शरीर पर के बाल के; **विवरस्य**—छिद्रों की; **च**—और; **ते**—आपकी; **महित्वम्**—महिमा।

अनुवाद

"मैं अपने हाथ के सात बित्ताओं के माप वाला क्षुद्र प्राणी कहाँ हूँ? मैं भौतिक प्रकृति, समग्र भौतिक शक्ति, मिथ्या अहंकार, आकाश, वायु, जल तथा पृथ्वी से निर्मित इस ब्रह्माण्ड से घिरा हुआ हूँ। और आपकी महिमा क्या है? आपके शरीर के रोमकूपों से असंख्य ब्रह्माण्ड उसी तरह निकल रहे हैं, जिस प्रकार खिड़की के छेद से धूल के कण निकलते हैं।"

तात्पर्य

जब ब्रह्माजी ने कृष्ण के सारे बछड़ों तथा ग्वालबालों को चुरा लिया और लौटकर देखा कि सारे बछड़े तथा बालक अब भी कृष्ण के साथ घूम रहे हैं, तो उन्होंने अपनी हार मानकर यह स्तुति की। (*श्रीमद्भागवत* १०.१४.११) एक बद्धजीव, यहाँ तक कि संपूर्ण ब्रह्माण्ड के कार्यों की व्यवस्था करने वाले ब्रह्माजी जैसे महान् जीव भी भगवान् के साथ अपनी तुलना नहीं कर सकते, क्योंकि भगवान् अपने शरीर के छिद्रों से निकलने वाली आध्यात्मिक किरणों मात्र से असंख्य ब्रह्माण्ड उत्पन्न कर सकते हैं। भौतिक विज्ञानियों को चाहिए कि वे श्री ब्रह्माजी की स्तुति से, ईश्वर की तुलना में हमारी तुच्छता के विषय में शिक्षा ग्रहण करें। ब्रह्माजी की इन स्तुतियों में उन लोगों के सीखने के लिए बहुत कुछ है, जो शक्ति का संचय करके मिथ्या गर्व से फूले रहते हैं।

অংশের অংশ যেই, 'কলা' তার নাম ।
গোবিন্দের প্রতিমূর্তি শ্রী-বলরাম ॥৭৩॥

अंशेर अंश येइ, 'कला' तार नाम ।
गोविन्देर प्रतिमूर्ति श्री-बलराम ॥७३॥

अंशेर—अंश का; **अंश**—अंश; **ग्रेइ**—वह जो; **कला**—कला या पूर्णांश का अंश; **तार**—इसका; **नाम**—नाम; **गोविन्देर**—भगवान् गोविन्द का; **प्रति-मूर्ति**—प्रतिमूर्ति; **श्री-बलराम**—भगवान् बलराम।

अनुवाद

सम्पूर्ण के अंश का अंश 'कला' कहलाता है। श्री बलराम तो भगवान् गोविन्द के प्रतिरूप हैं।

ताँर एक स्वरूप—श्री-महा-सङ्कर्षण ।
ताँर अंश 'पुरुष' हय कलाते गणन ॥७४॥

ताँर एक स्वरूप—श्री-महा-सङ्कर्षण ।
ताँर अंश 'पुरुष' हय कलाते गणन ॥७४॥

ताँर—उनका; **एक**—एक; **स्वरूप**—स्वरूप; **श्री-महा-सङ्कर्षण**—भगवान् महा संकर्षण; **ताँर**—उनका; **अंश**—अंश; **पुरुष**—महाविष्णु अवतार; **हय**—है; **कलाते गणन**—कला माने जाते हैं।

अनुवाद

बलराम के निजी विस्तार महासंकर्षण कहलाते हैं और उनके अंश 'पुरुष' कला (अर्थात् पूर्ण अंश के अंश) कहलाते हैं।

याँहाके त' कला कहि, तिँहो महा-विष्णु ।
महा-पुरुषावतारी तेँहो सर्व-जिष्णु ॥७५॥

याँहाके त' कला कहि, तिंहो महा-विष्णु ।
महा-पुरुषावतारी तेंहो सर्व-जिष्णु ॥७५॥

याँहाके—जिनको; **त'**—निश्चय ही; **कला कहि**—मैं कला कहता हूँ; **तिंहो**—वे; **महा-विष्णु**—भगवान् महाविष्णु; **महा-पुरुषावतारी**—महाविष्णु, अन्य पुरुष अवतारों के उद्गम; **तेंहो**—वे; **सर्व-जिष्णु**—सर्वव्यापक।

अनुवाद

मैं कहता हूँ कि यह कला महाविष्णु हैं। वे महापुरुष हैं, जो अन्य पुरुषों के स्त्रोत हैं और जो सर्वव्यापी हैं।

গর্ভোদ-ক্ষীরোদ-শায়ী দোঁহে 'পুরুষ' নাম ।
সেই দুই, যাঁর অংশ,—বিষ্ণু, বিশ্ব-ধাম ॥৭৬॥

गर्भोद-क्षीरोद-शायी दोंहे 'पुरुष' नाम ।
सेइ दुइ, याँर अंश,—विष्णु, विश्व-धाम ॥ ७६ ॥

गर्भ-उद—ब्रह्माण्ड में गर्भोदक नाम से जाने जाने वाले सागर में; **क्षीर-उद-शायी**—जो क्षीरोदक सागर में लेटते हैं; **दोंहे**—उनमें से दोनों; **पुरुष नाम**—पुरुष के नाम से विख्यात भगवान् विष्णु; **सेइ**—वे; **दुइ**—दोनों; **याँर अंश**—जिनके पूर्ण अंश; **विष्णु विश्व-धाम**—सभी ब्रह्माण्डों के धाम भगवान् विष्णु।

अनुवाद

गर्भोदकशायी तथा क्षीरोदकशायी दोनों पुरुष कहलाते हैं। वे प्रथम पुरुष और समस्त ब्रह्माण्डों के धाम कारणोदकशायी विष्णु के पूर्ण अंश हैं।

तात्पर्य

लघु भागवतामृत में *पुरुष* के लक्षण वर्णित किये गये हैं। ग्रंथकार ने पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अवतारों का वर्णन करते हुए *विष्णु पुराण* (६.८.५९) से प्रमाण दिया है, जिसमें कहा गया है, "मैं उन पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण को सादर नमस्कार करता हूँ, जो छह प्रकार के भौतिक द्वैतों के कल्मष से सदैव मुक्त रहते हैं; जिनके पूर्ण अंश महाविष्णु जगत् की सृष्टि करने के लिए पदार्थ पर दृष्टिपात करते हैं; जो एकजैसे अनेक दिव्य रूपों में अपना विस्तार करते हैं; जो सारे जीवों के स्वामी हैं, जो भौतिक शक्ति के कल्मष से सदैव मुक्त रहने वाले हैं और जो इस भौतिक जगत् में प्रकट होने पर हमारे समान प्रतीत होते हैं, यद्यपि उनका रूप सदैव आध्यात्मिक, आनन्दमय तथा दिव्य होता है।" रूप गोस्वामी ने इस कथन के सार रूप में बतलाया है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का वह पूर्ण विस्तार जो भौतिक शक्ति के सहयोग से कार्य करता है, *पुरुष* कहलाता है।

বিষ্ণোস্তু ত্রীণি রূপাণি পুরুষাখ্যান্যথো বিদুঃ ।
একং তু মহতঃ স্রষ্টৃ দ্বিতীয়ং ত্বণ্ড-সংস্থিতম্ ।
তৃতীয়ং সর্ব-ভূত-স্থং তানি জ্ঞাত্বা বিমুচ্যতে ॥৭৭॥

विष्णोस्तु त्रीणि रूपाणि पुरुषाख्यान्यथो विदुः ।
एकं तु महतः स्रष्टृ द्वितीयं त्वण्ड-संस्थितम् ।
तृतीयं सर्व-भूत-स्थं तानि ज्ञात्वा विमुच्यते ॥ ७७॥

विष्णोः—भगवान् विष्णु का; **तु**—निश्चित रूप से; **त्रीणि**—तीन; **रूपाणि**—रूप; **पुरुष-आख्यानि**—पुरुष के रूप में विख्यात; **अथो**—कैसे; **विदुः**—वे जानते हैं; **एकम्**—उनमें से एक; **तु**—किन्तु; **महतः स्रष्टृ**—समग्र भौतिक शक्ति के स्रष्टा; **द्वितीयम्**—दूसरा; **तु**—किन्तु; **अण्ड-संस्थितम्**—ब्रह्माण्ड में स्थित; **तृतीयम्**—तीसरा; **सर्व-भूत-स्थम्**—सर्व जीवों के हृदय में; **तानि**—ये तीन; **ज्ञात्वा**—जानकर; **विमुच्यते**—मुक्त हो जाता है।

अनुवाद

"विष्णु के तीन रूप हैं, जो पुरुष कहलाते हैं। पहला रूप महाविष्णु है, जो सम्पूर्ण भौतिक शक्ति (महत्) के स्रष्टा हैं, दूसरा रूप गर्भोदकशायी है, जो प्रत्येक ब्रह्माण्ड में स्थित रहते हैं और तीसरा रूप क्षीरोदकशायी है, जो हर जीव के हृदय में निवास करते हैं। जो व्यक्ति इन तीनों को जानता है, वह माया के चंगुल से मुक्त हो जाता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक *लघु भागवतामृत* (पूर्व खण्ड २.९) में आया है, जिसे *सात्वत तन्त्र* से लिया गया है।

যদ্যপি কহিয়ে তাঁরে কৃষ্ণের 'কলা' করি ।
মৎস্য-কূর্মাদ্যবতারের তিঁহো অবতারী ॥ ৭৮॥

यद्यपि कहिये ताँरे कृष्णेर 'कला' करि ।
मत्स्य-कूर्माद्यवतारेर तिंहो अवतारी ॥ ७८॥

यद्यपि—यद्यपि; **कहिये**—मैं कहता हूँ; **ताँरे**—उनको; **कृष्णेर**—भगवान् कृष्ण का; **कला**—अंश का अंश; **करि**—करके; **मत्स्य**—मत्स्य अवतार; **कूर्म-आदि**—कूर्मावतार आदि; **अवतारेर**—इन सभी अवतारों के; **तिंहो**—वे; **अवतारी**—मूल स्रोत।

अनुवाद

यद्यपि कारणोदकशायी विष्णु को भगवान् कृष्ण की 'कला' कहा जाता है, किन्तु वे मत्स्य, कूर्म तथा अन्य अवतारों के उद्गम हैं।

এতে চাংশ-কলাঃ পুংসঃ কৃষ্ণস্তু ভগবান্স্বয়ম্ ।
ইন্দ্রারি-ব্যাকুলং লোকং মৃড়য়ন্তি যুগে যুগে ॥৭৯॥

एते चांश-कलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान्स्वयम् ।
इन्द्रारि-व्याकुलं लोकं मृड़यन्ति युगे युगे ॥७९॥

एते—ये सारे; **च**—भी; **अंश-कलाः**—अंश के अंश; **पुंसः**—परम पुरुष के; **कृष्णः तु**—किन्तु भगवान् कृष्ण; **भगवान्**—आदि भगवान्; **स्वयम्**—स्वयं; **इन्द्र-अरि**—दैत्य; **व्याकुलम्**—व्याकुल; **लोकम्**—सभी लोक; **मृड़यन्ति**—उन्हें प्रसन्न करते हैं; **युगे युगे**—विभिन्न युगों में।

अनुवाद

"भगवान् के ये सारे अवतार या तो पुरुषावतारों के पूर्ण अंश हैं या पूर्णांशों अंश हैं। किन्तु कृष्ण तो स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। जब संसार इन्द्र के शत्रुओं से व्याकुल हो जाता है, तब वे प्रत्येक युग में अपने विभिन्न स्वरूपों के द्वारा संसार की रक्षा करते हैं।

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* (१.३.२८) का है।

সেই পুরুষ সৃষ্টি-স্থিতি-প্রলয়ের কর্তা ।
নানা অবতার করে, জগতের ভর্তা ॥৮০॥

सेइ पुरुष सृष्टि-स्थिति-प्रलयेर कर्ता ।
नाना अवतार करे, जगतेर भर्ता ॥८०॥

सेइ—वे; **पुरुष**—भगवान्; **सृष्टि-स्थिति-प्रलयेर**—सृष्टि, पालन तथा प्रलय; **कर्ता**—करने वाले; **नाना**—विभिन्न; **अवतार**—अवतार; **करे**—करते हैं; **जगतेर**—भौतिक जगत् के; **भर्ता**—पालक।

अनुवाद

वे पुरुष (कारणोदकशायी विष्णु) सृजन, पालन और संहार करने वाले हैं। वे नाना अवतारों में अपने आपको प्रकट करते हैं, क्योंकि वे जगत् के पालनहार हैं।

সৃষ্ট্যাদি-নিমিত্তে যেই অংশের অবধান ।
সেই ত' অংশেরে কহি 'অবতার' নাম ॥৮১॥

সৃষ্ট্যাদি-নিমিত্তে যেই অংশের অবধান ।
সেই ত' অংশেরে কহি 'অবতার' নাম ॥৮১॥

সৃষ্টি-আদি-নিমিত্তে—সৃষ্টি, পালন এবং বিনাশ के लिए; **যেই**—जो; **অংশের অবধান**—अंश को प्रकट करनेवाले; **সেই ত'**—निश्चय ही वे; **অংশেরে কহি**—मैं उस पूर्णांश अवतार के विषय में कहता हूँ; **অবতার নাম**—"अवतार" के नाम से।

अनुवाद

सृजन, पालन तथा संहार के निमित्त प्रकट होने वाले भगवान् के अंश, जो महापुरुष के नाम से जाने जाते हैं, अवतार कहलाते हैं।

আদ্যাবতার, মহা-পুরুষ, ভগবান্ ।
সর্ব-অবতার-বীজ, সর্বাশ্রয়-ধাম ॥৮২॥

আদ্যাবতার, মহা-পুরুষ, ভগবান্ ।
সর্ব-অবতার-বীজ, সর্বাশ্রয়-ধাম ॥৮২॥

আদ্য-অবতার—आदि अवतार; **মহা-পুরুষ**—भगवान् महाविष्णु; **ভগবান্**—भगवान्; **সর্ব-অবতার-বীজ**—सभी अवतारों के बीज; **সর্ব-আশ্রয়-ধাম**—सबके आश्रय।

अनुवाद

वे महापुरुष भगवान् से अभिन्न हैं। वे मूल अवतार, अन्य सबके बीज तथा हर वस्तु के आश्रय हैं।

আদ্যোঽবতারঃ পুরুষঃ পরস্য
কালঃ স্বভাবঃ সদসন্মনশ্চ ।
দ্রব্যং বিকারো গুণ ইন্দ্রিয়াণি
বিরাট্স্বরাট্স্থাস্নু চরিষ্ণু ভূম্নঃ ॥৮৩॥

আদ্যোঽবতারঃ পুরুষঃ পরস্য
কালঃ স্বভাবঃ সদসন্মনশ্চ ।
দ্রব্যং বিকারো গুণ ইন্দ্রিয়াণি
বিরাট্স্বরাট্স্থাস্নু চরিষ্ণু ভূম্নঃ ॥৮৩॥

आद्यः अवतारः—आदि अवतार; **पुरुषः**—महाविष्णु; **परस्य**—भगवान् का; **कालः**—काल; **स्वभावः**—स्वभाव; **सत्-असत्**—कार्य तथा कारण; **मनः च**—और मन; **द्रव्यम्**—पाँच तत्त्व; **विकारः**—मिथ्या अहंकार का विकार; **गुणः**—प्रकृति के गुण; **इन्द्रियाणि**—इन्द्रियाँ; **विराट्**—विराट् रूप; **स्वराट्**—पूर्ण स्वतंत्रता; **स्थास्नु**—अचर; **चरिष्णु**—चर; **भूम्नः**—परम भगवान् का।

अनुवाद

"पुरुष (महाविष्णु) पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रमुख अवतार हैं। काल, स्वभाव, प्रकृति (कार्य-कारण के रूप में), मन, भौतिक तत्त्व, मिथ्या अहंकार, प्रकृति के गुण, इन्द्रियाँ, विराट् रूप, पूर्ण स्वतन्त्रता तथा चर और अचर प्राणी अन्ततः उनके ऐश्वर्य रूप में प्रकट होते हैं।"

तात्पर्य

लघु भागवतामृत में अवतारों एवं उनके लक्षणों का वर्णन करते हुए बतलाया गया है कि जब भगवान् कृष्ण भौतिक जगत् के सृजनात्मक कार्यकलाप चलाने के लिए अवतरित होते हैं, तो वे *अवतार* कहलाते हैं। अवतारों की दो कोटियाँ हैं—*शक्त्यावेश भक्त* तथा *तद्एकात्म रूप* (स्वयं भगवान्)। तद्एकात्म रूप के उदाहरण शेष हैं और भक्त के उदाहरण श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव हैं। श्रील बलदेव विद्याभूषण ने टीका की है कि यह भौतिक जगत् ईश्वर का आंशिक राज्य है, जहाँ विशेष कार्य सम्पन्न करने के लिए भगवान् कभी-कभी प्रकट होते हैं। भगवान् कृष्ण जिस अंश के द्वारा ऐसे कार्य सम्पन्न करते हैं, वे महाविष्णु कहलाते हैं, जो समस्त अवतारों के शुभारम्भ हैं। अनुभवहीन वैज्ञानिक मान लेते हैं कि भौतिक शक्ति भौतिक जगत् के लिए कारण तथा अवयव दोनों प्रदान करती है और जीव भौतिक प्रकृति के भोक्ता हैं। किन्तु भागवत विचारधारा के भक्त सारी स्थिति की सूक्ष्म छानबीन कर लेने के बाद समझ सकते हैं कि भौतिक प्रकृति न तो स्वतन्त्र रूप से भौतिक अवयवों की पूर्ति कर सकती है, न ही भौतिक जगत् का कारण बन सकती है। भौतिक प्रकृति महापुरुष महाविष्णु के दृष्टिपात से ही भौतिक सामग्री की पूर्ति करने की क्षमता प्राप्त करती है और उनसे शक्ति प्राप्त कर लेने पर वह भौतिक जगत् की कारण कहलाती है। भौतिक प्रकृति के ये दोनों गुण—

भौतिक जगत् का कारण तथा इसकी सामग्री का स्रोत होना—परमेश्वर के दृष्टिपात के कारण विद्यमान हैं। भगवान् के वे विभिन्न विस्तार जो भौतिक प्रकृति को शक्ति प्रदान करते हैं, वे पूर्ण विस्तार या अवतार कहलाते हैं। जिस प्रकार एक दीप से अनेक दीप प्रज्ज्वलित किये जा सकते हैं, उसी तरह ये सारे पूर्ण विस्तार तथा अवतार विष्णु के तुल्य ही होते हैं। फिर भी *माया* को नियन्त्रित करने के कार्यकलापों के कारण वे कभी-कभी *मायिक* अर्थात् माया से सम्बन्धित कहलाते हैं। यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (२.६.४२) से लिया गया है।

जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः ।
सम्भूतं षोड़श-कलमादौ लोक-सिसृक्षया ॥ ८४॥

जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः ।
सम्भूतं षोड़श-कलमादौ लोक-सिसृक्षया ॥ ८४॥

जगृहे—स्वीकार किया; **पौरुषम्**—पुरुष अवतार; **रूपम्**—रूप; **भगवान्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **महत्-आदिभिः**—समग्र भौतिक शक्ति आदि से; **सम्भूतम्**—उत्पन्न हुई; **षोड़श**—सोलह; **कलम्**—शक्तियाँ; **आदौ**—शुरू में; **लोक**—भौतिक लोक; **सिसृक्षया**—निर्माण करने की इच्छा से।

अनुवाद

"सृष्टि के प्रारम्भ में भगवान् ने भौतिक सृष्टि के समस्त अवयवों (उपादानों) के साथ पुरुष अवतार के रूप में अपना विस्तार किया। सर्वप्रथम उन्होंने सृष्टि के लिए उपयुक्त सोलह प्रधान शक्तियों का सृजन किया। ऐसा उन्होंने भौतिक ब्रह्माण्डों को प्रकट करने के उद्देश्य से किया।"

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१.३.१) का है। *श्रीमद्भागवत* पर मध्व की टीका में बतलाया गया है कि आध्यात्मिक जगत् में निम्नलिखित सोलह आध्यात्मिक शक्तियाँ पाई जाती हैं :

(१) श्री, (२) भू, (३) लीला, (४) कान्ति, (५) कीर्ति, (६) तुष्टि, (७) गीर्, (८) पुष्टि, (९) सत्या, (१०) ज्ञानाज्ञान, (११) जया उत्कर्षिणी,

(१२) विमला, (१३) योगमाया, (१४) प्रह्वी, (१५) ईशाना तथा (१६) अनुग्रहा। श्री बलदेव विद्याभूषण ने *लघु भागवतामृत* के अपने भाष्य में बतलाया है कि उपर्युक्त सोलह शक्तियाँ अन्य नौ नामों से भी जानी जाती हैं : (१) विमला, (२) उत्कर्षिणी, (३) ज्ञाना, (४) क्रिया, (५) योगा, (६) प्रह्वी, (७) सत्या, (८) ईशाना तथा (९) अनुग्रहा। श्रील जीव गोस्वामी ने *भागवत् सन्दर्भ* (श्लोक १०३) में इनके नाम इस प्रकार गिनाये हैं—श्री, पुष्टि, गीर्, कान्ति, कीर्ति, तुष्टि, इला, जया, विद्याविद्या, माया, सम्वित्, सन्धिनी, ह्लादिनी, भक्ति, मूर्ति, विमला, योगा, प्रह्वी, ईशाना, अनुग्रहा इत्यादि। ये सारी शक्तियाँ भगवान् के प्रभाव के विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करती हैं।

यद्यपि सर्वाश्रय तिँहो, ताँहाते संसार ।
अन्तरात्मा-रूपे तिँहो जगताधार ॥ ८५॥

य्रद्यपि सर्वाश्रय तिंहो, ताँहाते संसार ।
अन्तरात्मा-रूपे तिंहो जगताधार ॥ ८५॥

य्रद्यपि—यद्यपि; **सर्व-आश्रय**—सबके आश्रय; **तिंहो**—वे (भगवान्); **ताँहाते**—उनमें; **संसार**—संसार, भौतिक सृष्टि; **अन्तः-आत्मा-रूपे**—अन्तरात्मा (परमात्मा) के रूप में; **तिंहो**—वे; **जगत्-आधार**—सारे जगत् के आश्रय।

अनुवाद

यद्यपि भगवान् हर वस्तु के आश्रय हैं और सारे ब्रह्माण्ड उन्हीं पर आश्रित हैं, किन्तु वे परमात्मा रूप में प्रत्येक वस्तु के आधार भी हैं।

प्रकृति-सहिते ताँर उभय सम्बन्ध ।
तथापि प्रकृति-सह नाहि स्पर्श-गन्ध ॥ ८६॥

प्रकृति-सहिते ताँर उभय सम्बन्ध ।
तथापि प्रकृति-सह नाहि स्पर्श-गन्ध ॥ ८६॥

प्रकृति-सहिते—भौतिक शक्ति के साथ; **ताँर**—उनका; **उभय सम्बन्ध**—दोनों सम्बन्ध; **तथापि**—तथापि; **प्रकृति-सह**—भौतिक प्रकृति के साथ; **नाहि**—नहीं है; **स्पर्श-गन्ध**—तनिक भी सम्बन्ध।

अनुवाद

इस तरह यद्यपि वे भौतिक शक्ति से दो प्रकार से जुड़े हुए हैं, तो भी उसके साथ उनका रंचमात्र भी सम्बन्ध नहीं है।

तात्पर्य

श्रील रूप गोस्वामी *लघु भागवतामृत* में भगवान् की गुणातीत दिव्य स्थिति पर टीका करते हुए कहते हैं कि भौतिक प्रकृति के नियन्ता तथा अध्यक्ष होने के कारण विष्णु का सम्बन्ध भौतिक गुणों से है। यह सम्बन्ध *योग* कहलाता है। किन्तु जो व्यक्ति बन्दीगृह की देखभाल करता है, वह बन्दी भी हो, ऐसा नहीं है। इसी प्रकार यद्यपि भगवान् विष्णु गुणात्मक प्रकृति की अध्यक्षता या संचालन करते हैं, किन्तु प्रकृति के भौतिक गुणों से उनका कोई सम्बन्ध नहीं होता। भगवान् विष्णु के विस्तार सदैव अपनी श्रेष्ठता बनाये रखते हैं; वे कभी भी भौतिक गुणों से सम्बन्धित नहीं होते। कोई यह तर्क कर सकता है कि महाविष्णु का भौतिक गुणों से कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता, क्योंकि यदि वे इस तरह सम्बन्धित होते, तो *श्रीमद्भागवत* में यह न कहा गया होता कि भौतिक प्रकृति लज्जा के मारे भगवान् के पीछे रहती है, क्योंकि वह जीवों को भगवान् से विमुख बनाने का प्रशंसारहित कार्य करती है। इस तर्क के उत्तर में कहा जा सकता है कि *गुण* शब्द का अर्थ है "नियमन"। इस ब्रह्माण्ड में भगवान् विष्णु, ब्रह्माजी तथा शिवजी प्रकृति के तीनों गुणों के नियन्ता के रूप में हैं और इन गुणों के साथ उनका सम्बन्ध *योग* कहलाता है। किन्तु इससे यह सूचित नहीं होता कि ये तीनों महापुरुष प्रकृति के गुणों से बँधे हैं। विशेषतया, भगवान् विष्णु सदा इन तीनों गुणों के नियन्ता रहते हैं। अतएव उनका इन गुणों के वश में होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

यद्यपि प्रकृति में उत्पत्ति तथा उपादान-आपूर्ति के गुण भगवान् द्वारा दृष्टिपात के कारण होते हैं, किन्तु इस दृष्टिपात से भगवान् पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यद्यपि भगवान् की इच्छा से भौतिक जगत् में विभिन्न गुणात्मक परिवर्तन होते हैं, किन्तु भगवान् विष्णु में किसी प्रकार का भौतिक लगाव, परिवर्तन या विकार आने की कोई सम्भावना नहीं होती।

এতদীশনমীশস্য প্রকৃতি-স্থোঽপি তদগুণৈঃ ।
ন যুজ্যতে সদাত্ম-স্থৈর্যথা বুদ্ধিস্তদাশ্রয়া ॥ ৮৭॥

एतदीशनमीशस्य प्रकृति-स्थोऽपि तद्गुणैः ।
न युज्यते सदात्म-स्थैर्यथा बुद्धिस्तदाश्रया ॥ ८७॥

एतत्—यह है; **ईशनम्**—ऐश्वर्य; **ईशस्य**—भगवान् का; **प्रकृति-स्थः**—इस भौतिक जगत् में; **अपि**—यद्यपि; **तत्-गुणैः**—भौतिक गुणों से; **न युज्यते**—कभी प्रभावित नहीं होते; **सदा**—सदा; **आत्म-स्थैः**—अपनी ही शक्ति में स्थित; **यथा**—जैसे; **बुद्धिः**—बुद्धि; **तत्**—उनके; **आश्रया**—भक्त।

अनुवाद

"यह भगवान् का ऐश्वर्य है कि वे भौतिक प्रकृति के भीतर रहते हुए भी प्रकृति के गुणों से कभी प्रभावित नहीं होते। इसी प्रकार जिन लोगों ने उनकी शरण ग्रहण की है तथा जिन्होंने अपनी बुद्धि को उनमें स्थिर कर रखा है, वे प्रकृति के गुणों से प्रभावित नहीं होते।"

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१.११.३८) का है।

এই মত গীতাতেহ পুনঃ পুনঃ কয় ।
সর্বদা ঈশ্বর-তত্ত্ব অচিন্ত্য-শক্তি হয় ॥ ৮৮॥

एइ मत गीतातेह पुनः पुनः कय ।
सर्वदा ईश्वर-तत्त्व अचिन्त्य-शक्ति हय ॥ ८८॥

एइ मत—इस प्रकार; **गीतातेह**—*भगवद्गीता* में; **पुनः पुनः**—बारम्बार; **कय**—कहा गया है; **सर्वदा**—सदा; **ईश्वर-तत्त्व**—परम सत्य का तत्त्व; **अचिन्त्य-शक्ति हय**—अचिन्त्य है।

अनुवाद

इस प्रकार *भगवद्गीता* भी बारम्बार कहती है कि परम सत्य में सदैव अचिन्त्य शक्ति होती है।

আমি ত' জগতে বসি, জগতামাতে ।
না আমি জগতে বসি, না আমা জগতে ॥ ৮৯॥

आमि त' जगते वसि, जगतामाते ।
ना आमि जगते वसि, ना आमा जगते ॥ ८९ ॥

आमि—मैं; **त'**—निश्चय ही; **जगते**—भौतिक जगत् में; **वसि**—स्थित; **जगत्**—सारी भौतिक सृष्टि; **आमाते**—मुझमें; **ना**—नहीं; **आमि**—मैं; **जगते**—भौतिक जगत् में; **वसि**—स्थित; **ना**—नहीं; **आमा**—मुझमें; **जगते**—भौतिक जगत्।

अनुवाद

(भगवान् कृष्ण ने कहा :) "मैं भौतिक जगत् में स्थित हूँ और यह जगत् मुझ पर आश्रित है। तथापि इसके साथ ही मैं न तो भौतिक जगत् में स्थित हूँ, न वह सचमुच ही मुझ पर आश्रित है।

तात्पर्य

भगवान् की इच्छा से शक्ति प्राप्त हुए बिना किसी प्रकार का अस्तित्व सम्भव नहीं है। अतएव सारा दृश्य जगत् भगवान् की शक्ति पर आश्रित है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए कि भौतिक जगत् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से एक है। बादल आकाश में रह सकता है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि आकाश तथा बादल एक हैं। इसी प्रकार गुणात्मक भौतिक प्रकृति और इसके पदार्थ कभी भी परमेश्वर से अभिन्न नहीं होते। भौतिक प्रकृति या माया के ऊपर प्रभुत्व जताने की प्रवृत्ति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का गुण नहीं हो सकती। जब वे भौतिक जगत् में अवतरित होते हैं, तो वे अपना आध्यात्मिक स्वभाव बनाये रखते हैं और भौतिक गुणों से एक नहीं होते। वे आध्यात्मिक तथा भौतिक दोनों ही जगतों में सारी शक्तियों के सदैव नियन्ता होते हैं। उनका दिव्य स्वभाव सदैव अकलुषित रहता है। भगवान् अपनी लीलाओं के लिए भौतिक जगत् में विभिन्न रूपों में प्रकट होते हैं और अन्तर्धान होते हैं; फिर भी वे समस्त प्राकट्यों के उद्गम हैं।

भौतिक जगत् का भगवान् से पृथक् अस्तित्व कभी भी नहीं हो सकता, किन्तु भौतिक प्रकृति से उनका सम्बन्ध रहने पर भी वे प्रकृति के प्रभाव के कभी अधीन नहीं होते। उनका शाश्वत आनन्द तथा ज्ञान का मूल रूप कभी भी भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों के अधीन नहीं होता। भगवान् की अचिन्त्य शक्तियों की यही विशिष्टता है।

অচিন্ত্য ঐশ্বর্য এই জানিহ আমার ।
এই ত' গীতার অর্থ কৈল পরচার ॥৯০॥

অচিন্ত্য ঐশ্বর্য্য এই জানিহ আমার ।
এই ত' গীতার অর্থ কৈল পরচার ॥ ৯০ ॥

অচিন্ত্য—अचिन्त्य; **ঐশ্বর্য্য**—ऐश्वर्य; **এই**—यह; **জানিহ**—तुम्हें जानना चाहिए; **আমার**—मेरा; **এই ত'**—यह; **গীতার অর্থ**—*भगवद्गीता* का अर्थ; **কৈল পরচার**—भगवान् कृष्ण ने प्रचार किया।

अनुवाद

"हे अर्जुन, तुम इसे मेरा अचिन्त्य ऐश्वर्य समझो।" *भगवद्गीता* में भगवान् कृष्ण ने इसी अर्थ का प्रचार किया है।

সেই ত' পুরুষ যাঁর 'অংশ' ধরে নাম ।
চৈতন্যের সঙ্গে সেই নিত্যানন্দ-রাম ॥৯১॥

সেই ত' পুরুষ যাঁর 'অংশ' ধরে নাম ।
চৈতন্যের সঙ্গে সেই নিত্যানন্দ-রাম ॥ ৯১ ॥

সেই ত'—वह; **পুরুষ**—परम पुरुष; **যাঁর**—जिनका; **অংশ**—अंश; **ধরে নাম**—जाना जाता है; **চৈতন্যের সঙ্গে**—चैतन्य महाप्रभु के साथ; **সেই**—वह; **নিত্যানন্দ-রাম**—भगवान् नित्यानन्द अथवा बलराम।

अनुवाद

वे महापुरुष (कारणोदकशायी विष्णु) चैतन्य महाप्रभु के प्रिय संगी भगवान् नित्यानन्द बलराम के पूर्ण अंश हैं।

এই ত' নবম শ্লোকের অর্থ-বিবরণ ।
দশম শ্লোকের অর্থ শুন দিয়া মন ॥৯২॥

এই ত' নবম শ্লোকের অর্থ-বিবরণ ।
দশম শ্লোকের অর্থ শুন দিয়া মন ॥ ৯২ ॥

এই ত'—इस प्रकार; **নবম শ্লোকের**—नवम श्लोक का; **অর্থ-বিবরণ**—अर्थ का वर्णन; **দশম শ্লোকের**—दशमें श्लोक का; **অর্থ**—अर्थ; **শুন**—सुनो; **দিয়া মন**—ध्यान देकर।

अनुवाद

इस तरह मैंने नवें श्लोक की व्याख्या कर दी है और अब मैं दसवें श्लोक की व्याख्या करूँगा। कृपया ध्यानपूर्वक सुनें।

यस्यांशांशः श्रील-गर्भोद-शायी
यन्नाभ्यब्जं लोक-सङ्घात-नालम् ।
लोक-स्रष्टुः सूतिका-धाम धातुस्
तं श्री-नित्यानन्द-रामं प्रपद्ये ॥९३॥

यस्यांशांशः श्रील-गर्भोद-शायी
यन्नाभ्यब्जं लोक-सङ्घात-नालम् ।
लोक-स्रष्टुः सूतिका-धाम धातुस्
तं श्री-नित्यानन्द-रामं प्रपद्ये ॥९३॥

यस्य—जिनके; **अंश-अंशः**—स्वांश का अंश; **श्रील-गर्भ-उद-शायी**—गर्भोदकशायी विष्णु; **यत्**—जिनका; **नाभि-अब्जम्**—नाभि कमल; **लोक-सङ्घात**—लोक समूह; **नालम्**—नाल जो स्तम्भ अथवा आधार है; **लोक-स्रष्टुः**—ग्रहों के स्रष्टा ब्रह्माजी; **सूतिका-धाम**—जन्म स्थान; **धातुः**—स्रष्टा का; **तम्**—उनको; **श्री-नित्यानन्द-रामम्**—भगवान् नित्यानन्द के रूप में भगवान् बलराम की; **प्रपद्ये**—मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

अनुवाद

मैं उन श्री नित्यानन्द राम के चरणों में नमस्कार करता हूँ, जिनके पूर्णांश के अंश गर्भोदकशायी विष्णु हैं। इन गर्भोदकशायी विष्णु की नाभि से कमल उत्पन्न होता है, जो ब्रह्माण्ड के शिल्पी ब्रह्मा का जन्मस्थान है। इस कमल की नाल असंख्य लोकों का विश्राम-स्थल है।

तात्पर्य

महाभारत के *शान्ति पर्व* में कहा गया है कि जो प्रद्युम्न हैं, वे ही अनिरुद्ध हैं। वे ही ब्रह्मा के पिता भी हैं। इस तरह गर्भोदकशायी विष्णु तथा क्षीरोदकशायी विष्णु कमल से उत्पन्न ब्रह्मा के आदि देव प्रद्युम्न के पूर्णांश विस्तारों से अभिन्न हैं। प्रद्युम्न ही ब्रह्मा को जगत् की व्यवस्था का निर्देश देते हैं। *श्रीमद्भागवत* (३.८.१५-१६) में ब्रह्मा के जन्म का पूरा विवरण दिया हुआ है।

तीनों पुरुषों के लक्षणों का वर्णन करते हुए *लघु भागवतामृत* में कहा गया

है कि गर्भोदकशायी विष्णु का रूप चतुर्भुज है। जब वे स्वयं ब्रह्माण्ड के भीतर प्रविष्ट होते हैं और क्षीरसागर में लेट जाते हैं, तब वे क्षीरोदकशायी विष्णु कहलाते हैं, जो समस्त जीवों तथा देवताओं के परमात्मा हैं। *सात्वत तन्त्र* में कहा गया है कि तृतीय पुरुषावतार क्षीरोदकशायी विष्णु हर एक के हृदय में परमात्मा के रूप में स्थित हैं। ये क्षीरोदकशायी विष्णु लीलाओं के लिए गर्भोदकशायी विष्णु के एक विस्तार हैं।

সেই ত' পুরুষ অনন্ত-ব্রহ্মাণ্ড সৃজিয়া ।
সব অণ্ডে প্রবেশিলা বহু-মূর্তি হঞা ॥ ৯৪ ॥

সেই ত' পুরুষ অনন্ত-ব্রহ্মাণ্ড সৃজিয়া ।
সব অণ্ডে প্রবেশিলা বহু-মূর্তি হঞা ॥ ৯৪ ॥

সেই—वह; **ত'**—निश्चित रूप से; **পুরুষ**—अवतार; **অনন্ত-ব্রহ্মাণ্ড**—अनन्त ब्रह्माण्ड; **সৃজিয়া**—सृष्टि करके; **সব**—सब; **অণ্ডে**—अण्ड रूप ब्रह्माण्डों में; **প্রবেশিলা**—प्रविष्ट हुए; **বহু-মূর্তি হঞা**—विविध रूपों में।

अनुवाद

करोड़ों ब्रह्माण्डों की रचना करने के बाद प्रथम पुरुष श्री गर्भोदकशायी के रूप में हर एक ब्रह्माण्ड में भिन्न रूप से प्रविष्ट हो गये।

ভিতরে প্রবেশি' দেখে সব অন্ধকার ।
রহিতে নাহিক স্থান করিল বিচার ॥ ৯৫ ॥

ভিতরে প্রবেশি' দেখে সব অন্ধকার ।
রহিতে নাহিক স্থান করিল বিচার ॥ ৯৫ ॥

ভিতরে—ब्रह्माण्ड के भीतर; **প্রবেশি'**—प्रविष्ट होकर; **দেখে**—वे देखते हैं; **সব**—सब; **অন্ধকার**—अन्धकार; **রহিতে**—रहने के लिए; **নাহিক**—नहीं है; **স্থান**—स्थान; **করিল বিচার**—विचार किया।

अनुवाद

ब्रह्माण्ड में प्रवेश करने पर उन्होंने केवल अंधकार देखा, जहाँ रहने योग्य कोई स्थान न था। तब वे इस प्रकार विचार करने लगे।

निजाङ्ग-स्वेद-जल करिल सृजन ।
सेइ जले कैल अर्ध-ब्रह्माण्ड भरण ॥९६॥

निजाङ्ग-स्वेद-जल करिल सृजन ।
सेइ जले कैल अर्ध-ब्रह्माण्ड भरण ॥ ९६ ॥

निज-अङ्ग—अपने ही शरीर के; **स्वेद-जल**—पसीने का पानी; **करिल**—किया; **सृजन**—सृजन; **सेइ जले**—उसी जल से; **कैल**—किया; **अर्ध-ब्रह्माण्ड**—आधा ब्रह्माण्ड; **भरण**—भर दिया।

अनुवाद

तब उन्होंने अपने शरीर के पसीने से जल उत्पन्न किया और उस जल से आधा ब्रह्माण्ड भर दिया।

ब्रह्माण्ड-प्रमाण पञ्चाशत्कोटि-योजन ।
आयाम, विस्तार, दुई हय एक सम ॥९७॥

ब्रह्माण्ड-प्रमाण पञ्चाशत्कोटि-योजन ।
आयाम, विस्तार, दुइ हय एक सम ॥ ९७ ॥

ब्रह्माण्ड-प्रमाण—ब्रह्माण्ड की माप; **पञ्चाशत्**—पचास; **कोटि**—करोड़; **योजन**—आठ मील की लम्बाई, योजन; **आयाम**—लम्बाई; **विस्तार**—चौड़ाई; **दुइ**—दोनों; **हय**—हैं; **एक सम**—एक समान।

अनुवाद

ब्रह्माण्ड की माप पचास करोड़ योजन है। इसकी लम्बाई तथा चौड़ाई एकसमान है।

जले भरि' अर्ध ताँहा कैल निज-वास ।
आर अर्धे कैल चौद्द-भुवन प्रकाश ॥९८॥

जले भरि' अर्ध ताँहा कैल निज-वास ।
आर अर्धे कैल चौद्द-भुवन प्रकाश ॥ ९८ ॥

जले—जल से; **भरि'**—भरकर; **अर्ध**—आधा; **ताँहा**—वहाँ; **कैल**—किया; **निज-वास**—अपना निवास; **आर**—अन्य, दूसरे; **अर्धे**—आधे में; **कैल**—किये; **चौद्द-भुवन**—चौदह भुवन; **प्रकाश**—प्रकट।

अनुवाद

जब आधा ब्रह्माण्ड जल से भर गया, तो उन्होंने उसी में अपना निवासस्थान बनाया और शेष आधे में चौदह भुवन प्रकट किये।

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कंध के पाँचवे अध्याय में १४ भुवनों के नाम गिनाये गये हैं। ऊपरी लोक हैं (१) भू, (२) भुवर्, (३) स्वर्, (४) महर्, (५) जनस्, (६) तपस् तथा (७) सत्य। सात अधोलोक हैं—(१) तल, (२) अतल, (३) वितल, (४) नितल, (५) तलातल, (६) महातल तथा (७) सुतल। सारे अधोलोक मिलकर पाताल कहलाते हैं। ऊपरी लोकों में भू, भुवर् तथा स्वर् स्वर्गलोक कहलाते हैं और शेष मर्त्यलोक कहलाते हैं। इस तरह समस्त ब्रह्माण्ड त्रिलोक कहलाता है।

তাঁহাই প্রকট কৈল বৈকুণ্ঠ নিজ-ধাম ।
শেষ-শয়ন-জলে করিল বিশ্রাম ॥৯৯॥

তাঁহাই প্রকট কৈল বৈকুণ্ঠ নিজ-ধাম ।
শেষ-শয়ন-জলে করিল বিশ্রাম ॥ ৯৯ ॥

তাঁহাই—वहाँ; **প্রকট**—प्रकट; **কৈল**—किया; **বৈকুণ্ঠ**—वैकुण्ठ लोक; **নিজ-ধাম**—अपना धाम; **শেষ**—भगवान् शेष की; **শয়ন**—शय्या पर; **জলে**—जल में; **করিল**—किया; **বিশ্রাম**—विश्राम।

अनुवाद

वहाँ उन्होंने अपने धाम के रूप में वैकुण्ठ को प्रकट किया और भगवान् शेष की शय्या पर वे जल में विश्राम करने लगे।

অনন্ত-শয়্যাতে তাঁহা করিল শয়ন ।
সহস্র মস্তক তাঁর সহস্র বদন ॥১০০॥
সহস্র-চরণ-হস্ত, সহস্র-নয়ন ।
সর্ব-অবতার-বীজ, জগৎকারণ ॥১০১॥

অনন্ত-শয়্যাতে তাঁহা করিল শয়ন ।
সহস্র মস্তক তাঁর সহস্র বদন ॥ ১০০ ॥

सहस्र-चरण-हस्त, सहस्र-नयन ।
सर्व-अवतार-बीज, जगत्कारण ॥ १०१ ॥

अनन्त-शय्याते—भगवान् अनन्त को शय्या बनाकर; **ताँहा**—वहाँ; **करिल शयन**—शयन किया, लेट गये; **सहस्र**—हजारों; **मस्तक**—शीर्ष; **ताँर**—उनके; **सहस्र वदन**—हजारों मुख; **सहस्र**—सहस्रों; **चरण**—चरण; **हस्त**—हाथ; **सहस्र-नयन**—हजारों नेत्र; **सर्व-अवतार-बीज**—सभी अवतारों के बीज; **जगत्-कारण**—भौतिक संसार के कारण।

अनुवाद

वे वहाँ अनन्त को अपनी शय्या बनाकर लेट गये। भगवान् अनन्त हजारों सिर, हजारों मुख, हजारों नेत्र और हजारों हाथ-पाँव वाले दिव्य सर्प हैं। वे सभी अवतारों के बीज हैं और भौतिक जगत् के कारण हैं।

तात्पर्य

गर्भोदकशायी विष्णु के पसीने से उत्पन्न जलराशि में विष्णु के पूर्ण अंश शेष पर भगवान् शयन करते हैं, जिनका वर्णन *श्रीमद्भागवत* तथा चारों वेदों में इस प्रकार हुआ है :

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥

"अनन्तशयन नामक विष्णु रूप के हजारों हाथ-पाँव तथा हजारों आँखें हैं। वे भौतिक जगत् के भीतर सारे अवतारों के वास्तविक जनक हैं।"

তাঁর নাভি-পদ্ম হৈতে উঠিল এক পদ্ম ।
সেই পদ্মে হৈল ব্রহ্মার জন্ম-সদ্ম ॥ ১০২ ॥

ताँर नाभि-पद्म हैते उठिल एक पद्म ।
सेइ पद्मे हैल ब्रह्मार जन्म-सद्म ॥ १०२ ॥

ताँर—उनका; **नाभि-पद्म**—नाभि कमल; **हैते**—से; **उठिल**—उठा, उगा; **एक**—एक; **पद्म**—कमल पुष्प; **सेइ पद्मे**—उस कमल पर; **हैल**—वहाँ था; **ब्रह्मार**—ब्रह्माजी का; **जन्म-सद्म**—जन्म स्थान।

अनुवाद

उनकी नाभि से एक कमल-पुष्प उत्पन्न हुआ, जो ब्रह्माजी का जन्म-स्थान बन गया।

সেই পদ্ম-নালে হৈল চৌদ্দ-ভুবন ।
তেঁহো ব্রহ্মা হঞা সৃষ্টি করিল সৃজন ॥ ১০৩ ॥

सेइ पद्म-नाले हैल चौद्द-भुवन ।
तेंहो ब्रह्मा हञा सृष्टि करिल सृजन ॥ १०३ ॥

सेइ पद्म-नाले—उस कमल की नाल में; **हैल**—थे; **चौद्द-भुवन**—चौदह भुवन; **तेंहो**—वे स्वयं; **ब्रह्मा हञा**—ब्रह्मा के रूप में; **सृष्टि**—सृष्टि; **करिल सृजन**—सृजन किया।

अनुवाद

उस कमल की नाल के भीतर चौदह भुवन थे। इस प्रकार भगवान् ने ब्रह्मा के रूप में सारी सृष्टि का सृजन किया।

বিষ্ণু-রূপ হঞা করে জগৎপালনে ।
গুণাতীত-বিষ্ণু স্পর্শ নাহি মায়া-গুণে ॥ ১০৪ ॥

विष्णु-रूप हञा करे जगत्पालने ।
गुणातीत-विष्णु स्पर्श नाहि माया-गुणे ॥ १०४ ॥

विष्णु-रूप—भगवान् विष्णु का रूप; **हञा**—होकर; **करे**—करते हैं; **जगत् पालने**—भौतिक जगत् का पालन; **गुण-अतीत**—भौतिक गुणों के परे; **विष्णु**—भगवान् विष्णु; **स्पर्श**—स्पर्श; **नाहि**—नहीं; **माया-गुणे**—भौतिक गुणों में।

अनुवाद

और भगवान् विष्णु के रूप में वे सारे जगत् का पालन करते हैं। समस्त भौतिक गुणों से परे होने के कारण भगवान् विष्णु का भौतिक गुणों से किसी तरह का स्पर्श नहीं होता।

तात्पर्य

श्री बलदेव विद्याभूषण कहते हैं कि यद्यपि विष्णु भौतिक जगत् में सत्त्वगुण के अधिष्ठाता देव हैं, किन्तु वे सत्त्वगुण से कभी भी प्रभावित नहीं होते, क्योंकि वे अपनी परम इच्छा से ही उस गुण का निर्देशन करते हैं। यह कहा जाता है कि सारे जीव भगवान् की इच्छा मात्र से समस्त सौभाग्य प्राप्त कर सकते हैं। *वामन पुराण* में कहा गया है कि वही विष्णु विभिन्न गुणों के निर्देशन करने के लिए ब्रह्मा तथा शिव के रूप में अपना विस्तार करते हैं।

चूँकि भगवान् विष्णु सत्त्वगुण का विस्तार करते हैं, अतएव उनका नाम सत्त्वतनु है। क्षीरोदकशायी विष्णु के विविध अवतार सत्त्वतनु के नाम से जाने जाते हैं। इसीलिए समस्त वैदिक ग्रंथों में विष्णु को सारे भौतिक गुणों से मुक्त माना गया है। *श्रीमद्भागवत* (१०.८८.५) में कहा गया है :

हरिर्हि निर्गुणः साक्षात् पुरुषः प्रकृतेः परः।
स सर्वदृगुपद्रष्टा तं भजन्निर्गुणो भवेत्॥

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हरि भौतिक प्रकृति के गुणों से सदैव अकलुषित रहते हैं, क्योंकि वे इस भौतिक जगत् से परे हैं। वे ब्रह्माजी इत्यादि समस्त देवताओं के ज्ञान के स्रोत हैं और हर वस्तु के साक्षी हैं। अतएव जो भगवान् विष्णु की पूजा करता है, वह भी भौतिक प्रकृति के कल्मष से मुक्ति प्राप्त कर लेता है।" चूँकि विष्णु की पूजा करने से मनुष्य भौतिक प्रकृति के कल्मष से मुक्त हो सकता है, अतएव वे सत्त्वतनु कहलाते हैं, जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है।

রুদ্র-রূপ ধরি' করে জগত্সংহার ।
সৃষ্টি-স্থিতি-প্রলয়—ইচ্ছায় যাঁহার ॥ ১০৫ ॥

रुद्र-रूप धरि' करे जगत्संहार ।
सृष्टि-स्थिति-प्रलय—इच्छाय याँहार ॥ १०५ ॥

रुद्र-रूप—शिवजी का रूप; **धरि'**—धारण करके; **करे**—करते हैं; **जगत् संहार**—भौतिक जगत् का संहार; **सृष्टि-स्थिति-प्रलय**—सृष्टि, पालन और संहार; **इच्छाय**—इच्छा से; **याँहार**—जिनकी।

अनुवाद

वे रुद्र का रूप धारण करके सृष्टि का संहार करते हैं। इस तरह सृजन, पालन तथा संहार उनकी इच्छा से होता है।

तात्पर्य

महेश्वर या शिवजी न तो सामान्य जीव हैं और न ही भगवान् विष्णु के बराबर हैं। *ब्रह्म-संहिता* में विष्णु तथा शिव की अच्छी तरह तुलना करते हुए कहा गया है कि विष्णु दूध के समान हैं और शिव दही के समान है। दही दूध की तरह नहीं होता, किन्तु फिर भी यह दूध ही होता है।

हिरण्य-गर्भ, अन्तर्यामी, जगत्कारण ।
याँर अंश करि' करे विराट-कल्पन ॥१०६॥

हिरण्य-गर्भ, अन्तर्यामी, जगत्कारण ।
याँर अंश करि' करे विराट-कल्पन ॥१०६॥

हिरण्य-गर्भ—हिरण्यगर्भ, भौतिक जगत् के कारण; **अन्तः-यामी**—अन्तर्यामी, परमात्मा; **जगत्-कारण**—भौतिक जगत् के कारण; **याँर अंश करि'**—उनका विस्तार करके; **करे**—करते हैं; **विराट-कल्पन**—विराट् रूप की कल्पना।

अनुवाद

वे परमात्मा, हिरण्यगर्भ अर्थात् भौतिक जगत् के कारण हैं। विराट् रूप उनका अंश माना जाता है।

हेन नारायण,—याँर अंशेर अंश ।
सेइ प्रभु नित्यानन्द—सर्व-अवतंस ॥१०७॥

हेन नारायण,—याँर अंशेर अंश ।
सेइ प्रभु नित्यानन्द—सर्व-अवतंस ॥१०७॥

हेन—ऐसा; **नारायण**—भगवान् नारायण; **याँर**—जिनका; **अंशेर**—स्वांश का; **अंश**—अंश; **सेइ**—वह; **प्रभु**—प्रभु, भगवान्; **नित्यानन्द**—नित्यानन्द; **सर्व-अवतंस**—सभी अवतारों के उद्गम।

अनुवाद

वे भगवान् नारायण, भगवान् नित्यानन्द बलराम के पूर्णांश के अंश मात्र हैं। भगवान् नित्यानन्द समस्त अवतारों के स्त्रोत हैं।

दशम श्लोकेर अर्थ कैल विवरण ।
एकादश श्लोकेर अर्थ शुन दिया मन ॥१०८॥

दशम श्लोकेर अर्थ कैल विवरण ।
एकादश श्लोकेर अर्थ शुन दिया मन ॥१०८॥

दशम—दसवें; **श्लोकेर**—श्लोक का; **अर्थ**—अर्थ; **कैल**—किया है; **विवरण**—वर्णन; **एकादश**—ग्यारहवें; **श्लोकेर**—श्लोक का; **अर्थ**—अर्थ; **शुन**—कृपया सुनो; **दिया मन**—मन से।

अनुवाद

इस तरह मैंने दसवें श्लोक का अर्थ बतला दिया है। अब कृपया पूरे मनोयोग से ग्यारहवें श्लोक का अर्थ सुनें।

যস্যাংশাংশাংশঃ পরাত্মাখিলানাং
পোষ্টা বিষ্ণুর্ভাতি দুগ্ধাব্ধি-শায়ী ।
ক্ষৌণী-ভর্তা যৎকলা সোঽপ্যনন্তস্
তং শ্রী-নিত্যানন্দ-রামং প্রপদ্যে ॥১০৯॥

यस्यांशांशांश: परात्माखिलानां
पोष्टा विष्णुर्भाति दुग्धाब्धि-शायी ।
क्षौणी-भर्ता यत्कला सोऽप्यनन्तस्
तं श्री-नित्यानन्द-रामं प्रपद्ये ॥ १०९ ॥

यस्य—जिनका; **अंश-अंश-अंश:**—स्वांश के अंश के भी अंश; **पर-आत्मा**—परमात्मा; **अखिलानाम्**—सभी जीवों के; **पोष्टा**—पालनकर्ता; **विष्णु:**—विष्णु; **भाति**—प्रकट होते हैं; **दुग्ध-अब्धि-शायी**—क्षीरोदकशायी विष्णु; **क्षौणी-भर्ता**—पृथ्वी के पालनकर्ता; **यत्**—जिनके; **कला**—अंश के अंश; **स:**—वे; **अपि**—निश्चित रूप से; **अनन्त:**—शेषनाग; **तम्**—उनको; **श्री-नित्यानन्द-रामम्**—भगवान् नित्यानन्द के रूप में भगवान् बलराम को; **प्रपद्ये**—मैं शरणागत होता हूँ।

अनुवाद

मैं उन श्री नित्यानन्द राम के चरणकमलों में सादर नमस्कार करता हूँ, जिनके गौण अंश क्षीरोदकशायी विष्णु हैं। वे क्षीरोदकशायी विष्णु ही समस्त जीवों के परमात्मा और समस्त ब्रह्माण्डों के पालक हैं। शेषनाग उनके अंशांश हैं।

নারায়ণের নাভি-নাল-মধ্যেতে ধরণী ।
ধরণীর মধ্যে সপ্ত সমুদ্র যে গণি ॥১১০॥

नारायणेर नाभि-नाल-मध्येते धरणी ।
धरणीर मध्ये सप्त समुद्र ये गणि ॥ ११० ॥

नारायणेर—भगवान् नारायण की; **नाभि-नाल**—नाभि से निकली नाल; **मध्येते**—

भीतर; **धरणी**—भौतिक ग्रह; **धरणीर मध्ये**—भौतिक ग्रहों में के; **सप्त**—सात; **समुद्र**—समुद्र; **ग्रे गणि**—वे गिनते हैं।

अनुवाद

सारे भौतिक लोक उस कमलनाल के भीतर स्थित हैं, जो भगवान् नारायण की नाभि कमल से निकला है। इन लोकों के मध्य सात समुद्र हैं।

তাঁহা ক্ষীরোদধি-মধ্যে 'শ্বেতদ্বীপ' নাম ।
পালয়িতা বিষ্ণু,—তাঁর সেই নিজ ধাম ॥১১১॥

তাঁহা ক্ষীরোদধি-মধ্যে 'শ্বেতদ্বীপ' নাম ।
পালয়িতা বিষ্ণু,—তাঁর সেই নিজ ধাম ॥১১১॥

তাঁহা—उसमें; **ক্ষীর-উদধি-মধ্যে**—क्षीर सागर की मध्य में; **শ্বেতদ্বীপ নাম**—श्वेतद्वीप नामक द्वीप में; **পালয়িতা বিষ্ণু**—पालक भगवान् विष्णु; **তাঁর**—उनका; **সেই**—वह; **নিজ ধাম**—अपना निवासस्थान।

अनुवाद

वहाँ क्षीर सागर के मध्य में श्वेतद्वीप है, जो पालनकर्ता विष्णु का धाम है।

तात्पर्य

ज्योतिष ग्रंथ *सिद्धान्त-शिरोमणि* में विभिन्न समुद्रों के नाम इस प्रकार दिये गये हैं : (१) लवण सागर, (२) क्षीर सागर, (३) दधि सागर, (४) घृत सागर, (५) इक्षु-रस सागर, (६) सुरा सागर तथा (७) मीठे जल का सागर। लवण सागर के दक्षिण में क्षीर सागर है, जहाँ क्षीरोदकशायी विष्णु निवास करते हैं। वहाँ ब्रह्मा इत्यादि देवता उनकी पूजा करते हैं।

সকল জীবের তিঁহো হয়ে অন্তর্যামী ।
জগৎপালক তিঁহো জগতের স্বামী ॥১১২॥

সকল জীবের তিঁহো হয়ে অন্তর্যামী ।
জগৎপালক তিঁহো জগতের স্বামী ॥১১২॥

सकल—सब; **जीवेर**—जीवों के; **तिंहो**—वे; **हये**—हैं; **अन्तः-यामी**—अन्तर्यामी, परमात्मा; **जगत्-पालक**—के जगत् के पालक; **तिंहो**—वे; **जगतेर स्वामी**—भौतिक जगत् के स्वामी।

अनुवाद

वे सारे जीवों के परमात्मा हैं। वे इस भौतिक जगत् का पालन करते हैं और वे इसके स्वामी हैं।

तात्पर्य

इस ब्रह्माण्ड में विष्णु-लोक का वर्णन *लघु-भागवतामृत* (पूर्व २.३६-४२) में प्राप्त है, जो *विष्णु धर्मोत्तर* से लिया गया है—"रुद्र-लोक अर्थात् शिवजी के लोक के ऊपर विष्णु-लोक नामक ग्रह है, जिसकी परिधि ४ लाख मील है और जो किसी भी मर्त्य प्राणी की पहुँच के बाहर है। इस विष्णु-लोक के ऊपर तथा सुमेरु पर्वत के पूर्व में लवण सागर में महाविष्णु लोक है, जो एक सुनहरा द्वीप है। कभी-कभी ब्रह्माजी तथा अन्य देवतागण भगवान् विष्णु से भेंट करने वहाँ पर जाते हैं। भगवान् विष्णु लक्ष्मी सहित वहाँ शयन करते हैं और कहा जाता है कि वर्षा ऋतु के चार महीने वे शेषशय्या पर शयन करने का आनन्द लेते हैं। सुमेरु पर्वत के पूर्व की दिशा में क्षीर सागर है, जिसमें श्वेतद्वीप में एक श्वेत नगरी है, जहाँ पर भगवान् विष्णु अपनी प्रियतमा लक्ष्मी के साथ शेष के सिंहासन पर आसीन देखे जा सकते हैं। विष्णु का यह रूप भी वर्षा ऋतु के चार महीनों में शयन का आनन्द लेता है। क्षीरसागर में यह श्वेतद्वीप लवण सागर के ठीक दक्षिण में स्थित है। गणना के अनुसार श्वेतद्वीप का क्षेत्रफल २ लाख वर्ग मील है। यह दिव्य सुन्दर द्वीप भगवान् विष्णु तथा उनकी प्रियतमा को प्रसन्न करने के लिए कल्पवृक्षों से सज्जित रहता है।" *ब्रह्माण्ड-पुराण, विष्णु-पुराण, महाभारत* तथा *पद्म-पुराण* में श्वेतद्वीप का सन्दर्भ मिलता है और *श्रीमद्भागवत* (११.१५.१८) में निम्नलिखित सन्दर्भ पाया जाता है :

श्वेतद्वीपपतौ चित्तं शुद्धे धर्ममये मयि।
धारयञ्छ्वेततां याति षड्ऊर्मिरहितो नरः॥

"हे उद्धव, तुम जान लो कि श्वेतद्वीप में विष्णु का दिव्य रूप मेरे रूप से दिव्यता

की दृष्टि से अभिन्न है। जो भी श्वेतद्वीप के इन स्वामी को अपने हृदय में धारण करता है, वह छः भौतिक कष्टों—भूख, प्यास, जन्म, मृत्यु, शोक तथा मोह—को पार कर सकता है। इस तरह वह अपने आदि दिव्य रूप को प्राप्त कर सकता है।"

युग-मन्वन्तरे धरि' नाना अवतार ।
धर्म संस्थापन करे, अधर्म संहार ॥ ११३॥

युग-मन्वन्तरे धरि' नाना अवतार ।
धर्म संस्थापन करे, अधर्म संहार ॥ ११३॥

युग-मनु-अन्तरे—मनु के युग और मन्वन्तर में; **धरि'**—धारण करके; **नाना**—विविध; **अवतार**—अवतार; **धर्म संस्थापन करे**—धर्म की स्थापना करते हैं; **अधर्म संहार**—अधर्म का नाश करके।

अनुवाद

वास्तविक धर्म के सिद्धान्तों को स्थापित करने और अधर्म के सिद्धान्तों का विनाश करने के लिए भगवान् विभिन्न युगों और मन्वन्तरों में विविध अवतारों में प्रकट होते हैं।

तात्पर्य

क्षीर सागर में शयन करने वाले भगवान् विष्णु ब्रह्माण्ड के नियमों को बनाये रखने और उत्पात के कारणों को विनष्ट करने के लिए विविध रूपों में अवतरित होते हैं। ऐसे अवतार हर मन्वन्तर में (प्रत्येक मनु के राज्य काल में, जो ७१ × ४३,२०,००० वर्ष तक जीवित रहते हैं) देखे जाते हैं। ब्रह्मा के एक दिन में ऐसे १४ मनु जन्म लेते और मरते हैं, जिससे अगले मनु को स्थान मिलता है।

देव-गणे ना पाय याँहार दरशन ।
क्षीरोदक-तीरे याइ' करेन स्तवन ॥ ११४॥

देव-गणे ना पाय याँहार दरशन ।
क्षीरोदक-तीरे याइ' करेन स्तवन ॥ ११४॥

देव-गणे—देवगण; **ना**—नहीं; **पाय**—पाते हैं; **याँहार**—जिनका; **दरशन**—दर्शन; **क्षीर-उदक-तीरे**—क्षीर सागर के तट पर; **याइ'**—जाते हैं; **करेन स्तवन**—स्तुति करने के लिए।

अनुवाद

उनका दर्शन न पाकर देवतागण क्षीर सागर के तट पर जाते हैं और उनकी स्तुति करते हैं।

तात्पर्य

स्वर्लोक आदि लोकों में रहने वाले स्वर्ग के निवासी तक श्वेतद्वीप में भगवान् विष्णु का दर्शन नहीं कर पाते। वे द्वीप तक नहीं पहुँच पाते—केवल क्षीर सागर के तट तक पहुँचकर भगवान् की दिव्य स्तुति करते हैं कि वे विशेष अवसरों पर अवतार के रूप में प्रकट हों।

তবে অবতরি' করে জগত্পালন ।
অনন্ত বৈভব তাঁর নাহিক গণন ॥১১৫॥

तबे अवतरि' करे जगत्पालन ।
अनन्त वैभव ताँर नाहिक गणन ॥ ११५ ॥

तबे—उस समय; **अवतरि'**—अवतरित होकर; **करे**—करते हैं; **जगत् पालन**—भौतिक जगत् का पालन; **अनन्त**—अनन्त; **वैभव**—ऐश्वर्य; **ताँर**—उनकी; **नाहिक**—नहीं है; **गणन**—गिनती।

अनुवाद

तब वे भौतिक संसार का पालन करने के लिए अवतरित होते हैं। उनके अनन्त ऐश्वर्य की गणना नहीं की जा सकती।

সেই বিষ্ণু হয় যাঁর অংশাংশের অংশ ।
সেই প্রভু নিত্যানন্দ—সর্ব-অবতংস ॥১১৬॥

सेइ विष्णु हय याँर अंशांशेर अंश ।
सेइ प्रभु नित्यानन्द—सर्व-अवतंस ॥ ११६ ॥

सेइ—वे; **विष्णु**—भगवान् विष्णु; **हय**—हैं; **याँर**—जिनके; **अंश-अंशेर**—स्वांश का अंश; **अंश**—अंश; **सेइ**—वे; **प्रभु**—प्रभु; **नित्यानन्द**—नित्यानन्द; **सर्व-अवतंस**—सभी अवतारों के स्रोत।

अनुवाद

ये भगवान् विष्णु नित्यानन्द प्रभु के पूर्णांश के अंश के भी अंश हैं, क्योंकि भगवान् नित्यानन्द समस्त अवतारों के उद्गम हैं।

तात्पर्य

श्वेतद्वीप के स्वामी में सृजन तथा संहार की महान् शक्ति है। श्री नित्यानन्द प्रभु संकर्षण के आदि रूप साक्षात् बलदेव होने के कारण श्वेतद्वीप के भगवान् के आदि रूप हैं।

सेइ विष्णु 'शेष'-रूपे धरेन धरणी ।
काँहा आछे मही, शिरे, हेन नाहि जानि ॥ ११७॥

सेइ विष्णु 'शेष'-रूपे धरेन धरणी ।
काँहा आछे मही, शिरे, हेन नाहि जानि ॥ ११७॥

सेइ—वे; **विष्णु**—भगवान् विष्णु; **शेष-रूपे**—भगवान् शेष के रूप में; **धरेन**—धारण करते हैं; **धरणी**—लोकों को; **काँहा**—जहाँ; **आछे**—हैं; **मही**—लोक; **शिरे**—सिर पर; **हेन नाहि जानि**—मैं समझ नहीं सकता।

अनुवाद

वही भगवान् विष्णु भगवान् शेष के रूप में सारे लोकों को अपने शिरों पर धारण करते हैं, यद्यपि वे यह नहीं जानते कि वे कहाँ हैं, क्योंकि अपने सिरों पर उन्हें उनके अस्तित्व का आभास नहीं हो पाता।

सहस्र विस्तीर्ण याँर फणार मण्डल ।
सूर्य जिनि' मणि-गण करे झल-मल ॥ ११८॥

सहस्र विस्तीर्ण याँर फणार मण्डल ।
सूर्य जिनि' मणि-गण करे झल-मल ॥ ११८॥

सहस्र—हजारों; **विस्तीर्ण**—विस्तीर्ण; **याँर**—जिनके; **फणार**—फनों का; **मण्डल**—समूह; **सूर्य**—सूर्य; **जिनि'**—जीतकर; **मणि-गण**—मणियाँ; **करे**—करते हैं; **झल-मल**—चमकते हैं।

अनुवाद

उनके हजारों फैले हुए फन सूर्य को भी मात देने वाली चमचमाती मणियों से सज्जित रहते हैं।

पञ्चाशत्कोटि-योजन पृथिवी-विस्तार ।
याँर एक-फणे रहे सर्षप-आकार ॥ ११९॥

पञ्चाशत्कोटि-योजन पृथिवी-विस्तार ।
याँर एक-फणे रहे सर्षप-आकार ॥ ११९॥

पञ्चाशत्—पचास; **कोटि**—करोड़ों; **योजन**—योजन, आठ मील; **पृथिवी**—ब्रह्माण्ड की; **विस्तार**—चौड़ाई; **याँर**—जिनके; **एक-फणे**—एक फन पर; **रहे**—रहता है; **सर्षप-आकार**—सरसों के बीज की भाँति।

अनुवाद

यह ब्रह्माण्ड जिसका व्यास पचास करोड़ योजन है, उनके एक फन पर इस तरह टिका है, मानो सरसों का बीज हो।

तात्पर्य

श्वेतद्वीप के स्वामी शेष नाग के रूप में अपना विस्तार करते हैं, जो अपने असंख्य फनों पर सारे लोकों को धारण करते हैं। इन विशाल ब्रह्माण्डों की तुलना सरसों के बीजों से की गई है, जो शेषनाग के दिव्य फनों पर टिके हुए हैं। वैज्ञानिकों का गुरुत्वाकर्षण नियम भगवान् संकर्षण की शक्ति की आंशिक व्याख्या है। *संकर्षण* नाम शब्द-रूप में गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त से सम्बन्धित है। *श्रीमद्भागवत* (५.१७.२१) में शेषनाग का प्रसंग आता है, जहाँ कहा गया है :

यमाहुरस्य स्थिति जन्मसंयमं
त्रिभिर्विहीनं यमनन्तमृषयः ।
न वेद सिद्धार्थमिव क्वचित् स्थितं
भूमण्डलं मूर्धसहस्रधामसु ॥

"हे प्रभु, वेदों की स्तुतियाँ घोषित करती हैं कि आप सृजन, पालन तथा संहार के मुख्य कारण हैं। किन्तु वस्तुतः आप सारी सीमाओं से परे हैं और इसीलिए

अनन्त कहलाते हैं। आपके सहस्रों फनों पर असंख्य ब्रह्माण्ड सरसों के दानों की तरह इतने नगण्य लगते हैं कि आपको उनके भार का पता भी नहीं चलता।" *भागवत* में ही (५.२५.२) आगे यह कहा गया है :

यस्येदं क्षिति-मंडलं भगवतोऽनन्तमूर्तेः सहस्रशिरस एकस्मिन्नेव शीर्षणि ध्रियमाणं सिद्धार्थ इव लक्ष्यते।

"भगवान् अनन्तदेव के हजारों फन हैं। प्रत्येक फन एक लोक को धारण किये रहता है, जो सरसों के बीज जैसा लगता है।"

सेइ त' 'अनन्त' 'शेष'—भक्त-अवतार ।
ईश्वरेर सेवा विना नाहि जाने आर ॥ १२० ॥

सेइ त' 'अनन्त' 'शेष'—भक्त-अवतार ।
ईश्वरेर सेवा विना नाहि जाने आर ॥ १२० ॥

सेइ त'—वे; **अनन्त**—भगवान् अनन्त; **शेष**—शेषावतार; **भक्त-अवतार**—भक्त के अवतार; **ईश्वरेर सेवा**—ईश्वर की सेवा; **विना**—बिना; **नाहि**—नहीं; **जाने**—जानते हैं; **आर**—और कुछ।

अनुवाद

वे अनन्त शेष ईश्वर के भक्त अवतार हैं। वे भगवान् कृष्ण की सेवा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं जानते।

तात्पर्य

श्रील जीव गोस्वामी ने अपने ग्रन्थ *कृष्ण-सन्दर्भ* में शेषनाग का वर्णन इस प्रकार किया है : "श्री अनन्तदेव के हजारों मुख हैं और वे पूर्ण स्वाधीन हैं। वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा करने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। वे उनके आदेश की सदा प्रतीक्षा करते रहते हैं। संकर्षण वासुदेव के प्रथम विस्तार हैं और चूँकि वे अपनी खुद की इच्छा से प्रकट होते हैं, अतएव *स्वराट्* अर्थात् पूर्णतया स्वाधीन कहलाते हैं। अतएव वे असीम हैं और देश-काल की सारी सीमाओं से परे हैं। वे स्वयं एक हजार शीश वाले शेष के रूप में प्रकट होते हैं।" *स्कन्द पुराण* के *अयोध्या-माहात्म्य* अध्याय में इन्द्र देव ने अपने समक्ष लक्ष्मण के रूप में खड़े भगवान् शेष से प्रार्थना की, "कृपया अपने नित्य धाम

विष्णु-लोक को चले जाएँ, जहाँ आपके अंश शेष अपने फनों समेत उपस्थित हैं।" इस तरह लक्ष्मण को पाताल लोक के क्षेत्र में भेजकर इन्द्र भी अपने लोक को वापस चले गये। यह उद्धरण इंगित करता है कि चतुर्व्यूह के संकर्षण भगवान् राम के साथ लक्ष्मण के रूप में अवतरित होते हैं। जब भगवान् राम अन्तर्धान हो जाते हैं, तो शेष भी अपने आपको लक्ष्मण से विलग कर लेते हैं और वे अपने पाताल क्षेत्र को लौट जाते हैं। लक्ष्मण अपने धाम वैकुण्ठ चले जाते हैं।

लघु-भागवतामृत में निम्नलिखित विवरण मिलता है : "द्वितीय चतुर्व्यूह के संकर्षण राम के रूप में प्रकट होते हैं, जिनके साथ शेष रहते हैं, जो ग्रहों को धारण किये रहते हैं। शेष के दो स्वरूप हैं। एक तो ग्रहों को धारण करने वाले और दूसरा शय्यारूप सेवक का। ग्रहों को धारण करने वाले शेष संकर्षण के शक्ति-अवतार हैं, अतएव कभी-कभी वे भी संकर्षण कहलाते हैं। शेष का शय्यारूप स्वरूप भगवान् के नित्य सेवक का है।"

সহস্র-বদনে করে কৃষ্ণ-গুণ গান ।
নিরবধি গুণ গা'ন, অন্ত নাহি পা'ন ॥১২১॥

সহস্র-বদনে করে কৃষ্ণ-গুণ গান ।
নিরবধি গুণ গা'ন, অন্ত নাহি পা'ন ॥ ১২১ ॥

সহস্র-বদনে—সহস্রों मुखों में; **করে**—करते हैं; **কৃষ্ণ-গুণ গান**—कृष्ण के गुणों का गान; **নিরবধি**—निरन्तर; **গুণ গা'ন**—दिव्य गुणों का गान; **অন্ত নাহি পা'ন**—अन्त नहीं पाते।

अनुवाद

अपने एक हजारों मुखों से वे भगवान् कृष्ण का महिमा-गान करते हैं, किन्तु इस प्रकार सदैव गुणगान करते रहने पर भी वे भगवान् के गुणों का कभी पार नहीं पाते।

সনকাদি ভাগবত শুনে যাঁর মুখে ।
ভগবানের গুণ কহে, ভাসে প্রেম-সুখে ॥১২২॥

সনকাদি ভাগবত শুনে যাঁর মুখে ।
ভগবানের গুণ কহে, ভাসে প্রেম-সুখে ॥ ১২২ ॥

सनक-आदि—सनक, सनन्द आदि महान् सन्त; **भागवत**—*श्रीमद्भागवत;* **शुने**—सुनते हैं; **याँर मुखे**—जिनके मुख से; **भगवानेर**—भगवान् के; **गुण**—गुण; **कहे**—कहते हैं; **भासे**—तैरते हैं; **प्रेम-सुखे**—भगवत् प्रेम के दिव्य आनन्द में।

अनुवाद

चारों कुमार उनके मुख से *श्रीमद्भागवत* सुनते हैं और भगवत्प्रेम के दिव्य आनन्द में मग्न होकर उसे दुहराते चलते हैं।

छत्र, पादुका, शय्या, उपाधान, वसन ।
आराम, आवास, यज्ञ-सूत्र, सिंहासन ॥१२३॥

छत्र, पादुका, शय्या, उपाधान, वसन ।
आराम, आवास, यज्ञ-सूत्र, सिंहासन ॥१२३॥

छत्र—छत्र; **पादुका**—पादुका; **शय्या**—शय्या; **उपाधान**—तकिया; **वसन**—पोशाक; **आराम**—विश्राम करने की कुर्सी; **आवास**—निवास; **यज्ञ-सूत्र**—यज्ञोपवीत, जनेउ; **सिंह-आसन**—सिंहासन।

अनुवाद

वे निम्नलिखित सभी रूपों को धारण करके भगवान् कृष्ण की सेवा करते हैं—छाता, पादुका, शय्या, तकिया, वस्त्र, आरामकुर्सी, निवासस्थान, यज्ञोपवीत तथा सिंहासन।

एत मूर्ति-भेद करि' कृष्ण-सेवा करे ।
कृष्णेर शेषता पाञा 'शेष' नाम धरे ॥१२४॥

एत मूर्ति-भेद करि' कृष्ण-सेवा करे ।
कृष्णेर शेषता पाञा 'शेष' नाम धरे ॥१२४॥

एत—इतने; **मूर्ति-भेद**—विभिन्न रूप; **करि'**—करके; **कृष्ण-सेवा करे**—भगवान् कृष्ण की सेवा करते हैं; **कृष्णेर**—भगवान् कृष्ण के; **शेषता**—अन्त; **पाञा**—पाकर; **शेष नाम धरे**—शेष नाग का नाम धारण करते हैं।

अनुवाद

उन्होंने कृष्ण की दासता की चरम सीमा प्राप्त कर ली है, अतएव वे

भगवान् शेष कहलाते हैं। वे कृष्ण की सेवा के लिए नाना रूप धारण करते हैं और इस तरह उनकी सेवा करते हैं।

সেই ত' অনন্ত, যাঁর কহি এক কলা ।
হেন প্রভু নিত্যানন্দ, কে জানে তাঁর খেলা ॥১২৫॥

সেই ত' অনন্ত, যাঁর কহি এক কলা ।
হেন প্রভু নিত্যানন্দ, কে জানে তাঁর খেলা ॥১২৫॥

সেই ত'—वे; **অনন্ত**—भगवान् अनन्त; **যাঁর**—जिनका; **কহি**—मैं कहता हूँ; **এক কলা**—अंश का एक भाग; **হেন**—ऐसा; **প্রভু নিত্যানন্দ**—नित्यानन्द प्रभु; **কে**—कौन; **জানে**—जानते हैं; **তাঁর**—उनकी; **খেলা**—लीलाएँ।

अनुवाद

भगवान् अनन्त जिस पुरुष की कला हैं अर्थात् पूर्णांश के अंश हैं, वे नित्यानन्द प्रभु हैं। अतएव नित्यानन्द प्रभु की लीलाओं को भला कौन जान सकता है?

এ-সব প্রমাণে জানি নিত্যানন্দ-তত্ত্ব-সীমা ।
তাঁহাকে 'অনন্ত' কহি, কি তাঁর মহিমা ॥১২৬॥

এ-সব প্রমাণে জানি নিত্যানন্দ-তত্ত্ব-সীমা ।
তাঁহাকে 'অনন্ত' কহি, কি তাঁর মহিমা ॥১২৬॥

এ-সব—ये सब; **প্রমাণে**—प्रमाणों से; **জানি**—मैं जानता हूँ; **নিত্যানন্দ-তত্ত্ব-সীমা**—भगवान् नित्यानन्द के सत्य की सीमा; **তাঁহাকে**—उनको (भगवान् नित्यानन्द बलराम); **অনন্ত**—भगवान् अनन्त; **কহি**—यदि मैं कहूँ; **কি তাঁর মহিমা**—उनकी कौन सी महिमा की बात है।

अनुवाद

इन सब प्रमाणों से हम नित्यानन्द प्रभु के तत्त्व की सीमा को जान सकते हैं। किन्तु उन्हें अनन्त कहने में कौन-सी महिमा है?

অথবা ভক্তের বাক্য মানি সত্য করি' ।
সকল সম্ভবে তাঁতে, যাতে অবতারী ॥১২৭॥

अथवा भक्तेर वाक्य मानि सत्य करि' ।
सकल सम्भवे ताँते, ग्राते अवतारी ॥ १२७॥

अथवा—अथवा; **भक्तेर वाक्य**—शुद्ध भक्त द्वारा कही गई बात; **मानि**—मैं स्वीकार करता हूँ; **सत्य करि'**—सत्य मानकर; **सकल**—सब कुछ; **सम्भवे**—सम्भव; **ताँते**—उनके; **ग्राते**—क्योंकि; **अवतारी**—सभी अवतारों के मूल स्रोत।

अनुवाद

किन्तु मैं इसे सत्य स्वीकार करता हूँ, क्योंकि यह भक्तों का वचन है। वे (नित्यानन्द प्रभु) समस्त अवतारों के उद्गम हैं, अतएव उनके लिए सब कुछ सम्भव है।

अवतार-अवतारी—अभेद, ये जाने ।
पूर्वे यैछे कृष्णके केहो काहो करि' माने ॥ १२८॥
अवतार-अवतारी—अभेद, ग्रे जाने ।
पूर्वे ग्रैछे कृष्णके केहो काहो करि' माने ॥ १२८॥

अवतार-अवतारी—अवतार और सभी अवतारों के स्रोत; **अभेद**—एक जैसे; **ग्रे जाने**—जो कोई जानता हो; **पूर्वे**—पहले; **ग्रैछे**—जैसे; **कृष्णके**—भगवान् कृष्ण को; **केहो**—कोई; **काहो**—कहीं; **करि'**—करके; **माने**—मानता है।

अनुवाद

वे जानते हैं कि अवतार तथा समस्त अवतारों के उद्गम में कोई भेद नहीं होता। पहले भगवान् कृष्ण विभिन्न लोगों द्वारा विभिन्न सिद्धांन्तों के सन्दर्भ में समझे जाते थे।

केहो कहे, कृष्ण साक्षात्तर-नारायण ।
केहो कहे, कृष्ण हय साक्षात्वामन ॥ १२९॥
केहो कहे, कृष्ण साक्षात्तर-नारायण ।
केहो कहे, कृष्ण हय साक्षात्वामन ॥ १२९॥

केहो कहे—कोई कहता है; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **साक्षात्**—साक्षात्; **नर-नारायण**—भगवान् नर-नारायण; **केहो कहे**—कोई कहता है; **कृष्ण हय**—कृष्ण हैं; **साक्षात् वामन**—भगवान् वामनदेव।

अनुवाद

कुछ लोग कहते थे कि कृष्ण साक्षात् भगवान् नर-नारायण थे और कुछ उन्हें वामनदेव का अवतार कहते थे।

কেহো কহে, কৃষ্ণ ক্ষীরোদ-শায়ী অবতার ।
অসম্ভব নহে, সত্য বচন সবার ॥ ১৩০ ॥

কেহো কহে, কৃষ্ণ ক্ষীরোদ-শায়ী অবতার ।
অসম্ভব নহে, সত্য বচন সবার ॥ ১৩০ ॥

কেহো কহে—कोई कहता है; **কৃষ্ণ**—भगवान् कृष्ण; **ক্ষীরোদ-শায়ী অবতার**—क्षीरोदकशायी भगवान् विष्णु के अवतार; **অসম্ভব নহে**—असम्भव नहीं; **সত্য**—सत्य; **বচন সবার**—प्रत्येक का कथन।

अनुवाद

कुछ लोग भगवान् कृष्ण को भगवान् क्षीरोदकशायी का अवतार कहते थे। ये सारे नाम सत्य हैं; कुछ भी असम्भव नहीं है।

কৃষ্ণ যবে অবতরে সর্বাংশ-আশ্রয় ।
সর্বাংশ আসি' তবে কৃষ্ণেতে মিলয় ॥ ১৩১ ॥

কৃষ্ণ যবে অবতরে সর্বাংশ-আশ্রয় ।
সর্বাংশ আসি' তবে কৃষ্ণেতে মিলয় ॥ ১৩১ ॥

কৃষ্ণ—भगवान् कृष्ण; **যবে**—जब; **অবতরে**—अवतार लेते हैं; **সর্ব-অংশ-আশ্রয়**—अन्य सभी विष्णु तत्त्वों के आश्रय; **সর্ব-অংশ**—सभी पूर्णांश; **আসি'**—आते हैं; **তবে**—उस समय; **কৃষ্ণেতে**—कृष्ण में; **মিলয়**—मिल जाते हैं।

अनुवाद

जब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण अवतरित होते हैं, तब वे समस्त पूर्ण अंशों के आश्रय होते हैं। इस तरह उस समय उनके सारे पूर्ण अंश उनके साथ मिल जाते हैं।

যেই যেই রূপে জানে, সেই তাহা কহে ।
সকল সম্ভবে কৃষ্ণে, কিছু মিথ্যা নহে ॥ ১৩২ ॥

येइ येइ रूपे जाने, सेइ ताहा कहे ।
सकल सम्भवे कृष्णे, किछु मिथ्या नहे ॥ १३२ ॥

येइ येइ—जो कुछ, जिस किसी; **रूपे**—रूप में; **जाने**—कोई जानता है; **सेइ**—वह; **ताहा**—उस; **कहे**—कहता है; **सकल सम्भवे कृष्णे**—कृष्ण में सब कुछ सम्भव है; **किछु मिथ्या नहे**—इसमें कोई झूठ नहीं।

अनुवाद

जो जिस रूप में भगवान् को जानता है, वह उसी रूप में उनका वर्णन करता है। इसमें कुछ गलत नहीं है, क्योंकि कृष्ण के लिए सब कुछ सम्भव है।

तात्पर्य

इस प्रसंग में हम एक घटना का वर्णन करना चाहेंगे, जो हमारे दो संन्यासियों के बीच तब घटी, जब हम हैदराबाद में हरे कृष्ण महामन्त्र का प्रचार कर रहे थे। उनमें से एक ने कहा कि "हरे राम" श्री बलराम का द्योतक है, किन्तु दूसरे ने विरोध किया कि "हरे राम" का अर्थ भगवान् राम है। अन्त में यह विवाद मेरे पास पहुँचा, तो मैंने निर्णय दिया कि यदि कोई "हरे राम" में "राम" का अर्थ "श्री बलराम" करता है और दूसरा इसी का अर्थ "भगवान् रामचन्द्र" करता है, तो दोनों सही हैं, क्योंकि श्री बलराम तथा भगवान् राम में कोई अन्तर नहीं है। यहाँ *श्रीचैतन्य-चरितामृत* में कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने इसी निर्णय को कह सुनाया है :

येइ येइ रूपे जाने, सेइ ताहा कहे।
सकल सम्भवे कृष्णे, किछु मिथ्या नहे॥

यदि कोई भगवान् रामचन्द्र को हरे राम ध्वनि से पुकारता है और इसका अर्थ "हे भगवान् रामचन्द्र!" समझता है, तो वह बिल्कुल सही है। इसी तरह यदि कोई कहता है कि हरे राम का अर्थ "हे श्री बलराम!" है, तो वह भी सही है। जो लोग *विष्णुतत्त्व* से अवगत रहते हैं, वे इन बातों पर झगड़ते नहीं।

लघु भागवतामृत में श्रील रूप गोस्वामी ने बतलाया है कि कृष्ण क्षीरोदकशायी विष्णु तथा परव्योम में नारायण हैं और वे वासुदेव, संकर्षण,

प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध के नामों से प्रसिद्ध चतुर्व्यूह में अपना विस्तार करते हैं। उन्होंने इस विचार का खण्डन किया है कि कृष्ण नारायण के अवतार हैं। कुछ भक्त मानते हैं कि नारायण आदि भगवान् हैं और कृष्ण अवतार हैं। यहाँ तक कि शंकराचार्य ने *भगवद्गीता* की टीका में नारायण को दिव्य परम पुरुष भगवान् के रूप में स्वीकार किया है, जो देवकी तथा वसुदेव के पुत्र कृष्ण के रूप में अवतरित हुए। अतएव इस विषय को समझना कठिन हो सकता है, किन्तु गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय ने, जिसके अग्रणी श्रील रूप गोस्वामी हैं, *भगवद्गीता* के इस सिद्धान्त की स्थापना की है कि हर वस्तु के उद्गम कृष्ण हैं, जो *भगवद्गीता* में कहते हैं—*अहं सर्वस्य प्रभवः*—"मैं हर वस्तु का मूल स्रोत हूँ।" इस "हर वस्तु" में नारायण भी आ जाते हैं। इसलिए रूप गोस्वामी ने अपने *लघु भागवतामृत* में स्थापित किया है कि आदि भगवान् कृष्ण हैं, नारायण नहीं।

इस सन्दर्भ में उन्होंने *श्रीमद्भागवत* का यह श्लोक (३.२.१५) लिया गया है :

स्वशान्तरूपेष्वितरैः स्वरूपै-
रभ्यर्द्यमानेष्वनुकम्पितात्मा।
परावरेशो महदंशयुक्तो
ह्यजोऽपि जातो भगवान् यथाग्निः॥

"जब वसुदेव जैसे भगवान् के शुद्ध भक्त कंस जैसे भयानक असुरों से बहुत सताये जाते हैं, तब भगवान् कृष्ण अपने समस्त लीला-विस्तारों—यथा वैकुण्ठनाथ—से मिल जाते हैं और अजन्मा होकर भी उसी तरह प्रकट होते हैं, जिस तरह अरणि काष्ठ के घर्षण से अग्नि प्रकट हो जाती है।" *अरणि* काष्ठ का उपयोग बिना दियासलाई या अन्य किसी लौ के यज्ञ-अग्नि प्रज्ज्वलित करने के लिए किया जाता है। जिस तरह अरणि काष्ठ से अग्नि उत्पन्न हो जाती है, उसी तरह भक्तों और अभक्तों के बीच संघर्ष होता है, तब भगवान् प्रकट होते हैं। जब कृष्ण प्रकट होते हैं, तब वे अपने सारे विस्तारों—यथा नारायण, वासुदेव, संकर्षण, अनिरुद्ध तथा प्रद्युम्न—समेत प्रकट होते हैं। कृष्ण अपने अन्य अवतारों यथा नृसिंहदेव, वराह, वामन, नर-नारायण, हयग्रीव तथा

अजित से सदैव युक्त रहते हैं। वृन्दावन में कभी-कभी कृष्ण ऐसे अवतारों के कार्यों को प्रदर्शित करते हैं।

ब्रह्माण्ड-पुराण में कहा गया है, "जो भगवान् वैकुण्ठ में सभी जीवों के मित्र चतुर्भुज नारायण कहलाते हैं और क्षीर सागर में श्वेतद्वीप के स्वामी कहलाते हैं और जो समस्त पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ हैं, वे ही नन्द के पुत्र के रूप में प्रकट हुए। अग्नि में तरह-तरह के आकार के स्फुलिंग रहते हैं, कुछ बड़े होते हैं, तो कुछ छोटे। छोटे स्फुलिंगों की उपमा जीवों से दी जाती है और बड़े स्फुलिंगों की भगवान् कृष्ण के विष्णु-अंशों से। सारे अवतार कृष्ण से ही प्रकट होते हैं और अपनी लीलाएँ समाप्त करने पर वे पुनः कृष्ण में समा जाते हैं।"

इसीलिए विभिन्न पुराणों में कृष्ण को कभी नारायण, तो कभी क्षीरोदकशायी विष्णु, कभी गर्भोदकशायी विष्णु और कभी-कभी वैकुण्ठनाथ कहा गया है। चूँकि कृष्ण सदैव सम्पूर्ण हैं, मूल संकर्षण कृष्ण में रहते हैं और चूँकि सारे अवतार मूल संकर्षण से प्रकट होते हैं, अतएव यह समझना चाहिए कि वे अपनी परम इच्छा से कृष्ण की उपस्थिति में भी, विभिन्न अवतारों को प्रकट कर सकते हैं। इसीलिए महर्षियों ने विभिन्न नामों से भगवान् का गुणगान किया है। अतएव यदि समस्त अवतारों के उद्गम उन मूल पुरुष को कभी-कभी अवतार कहा जाये, तो इसमें कोई त्रुटि नहीं है।

अतএব শ্রী-কৃষ্ণ-চৈতন্য গোসাঞি ।
সর্ব অবতার-লীলা করি' সবারে দেখাই ॥ ১৩৩ ॥

अतএব শ্রী-কৃষ্ণ-চৈতন্য গোসাঞি ।
সর্ব অবতার-লীলা করি' সবারে দেখাই ॥ ১৩৩ ॥

अतএব—अतএব; **শ্রী-কৃষ্ণ-চৈতন্য**—भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; **গোসাঞি**—भगवान्; **সর্ব**—सभी; **অবতার-লীলা**—विभिन्न अवतारों की लीलाएँ; **করি'**—करके; **সবারে**—प्रत्येक को; **দেখাই**—उन्होंने दिखाई।

अनुवाद

इसलिए भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने सबके सामने सभी विभिन्न अवतारों की सभी लीलाएँ प्रदर्शित की हैं।

এই-রূপে নিত্যানন্দ 'অনন্ত'-প্রকাশ ।
সেই-ভাবে—কহে মুঞি চৈতন্যের দাস ॥ ১৩৪ ॥

এइ-রূপে নিত্যানন্দ 'অনন্ত'-প্রকাশ ।
সেइ-ভাবে—কহে মুঞি চৈতন্যের দাস ॥ ১৩৪ ॥

এइ-রূপে—इस प्रकार; **नित्यानन्द**—भगवान् नित्यानन्द; **अनन्त-प्रकाश**—अनन्त प्राकट्य; **सेइ-भावे**—उस दिव्य भाव में; **कहे**—वे कहते हैं; **मुञि**—मैं; **चैतन्येर दास**—भगवान् चैतन्य का दास।

अनुवाद

इस तरह भगवान् नित्यानन्द के अनन्त अवतार हैं। दिव्य भाव में वे अपने आपको चैतन्य महाप्रभु का दास कहते हैं।

কভু গুরু, কভু সখা, কভু ভৃত্য-লীলা ।
পূর্বে যেন তিন-ভাবে ব্রজে কৈল খেলা ॥ ১৩৫ ॥

কভু গুরু, কভু সখা, কভু ভৃত্য-লীলা ।
পূর্বে যেন তিন-ভাবে ব্রজে কৈল খেলা ॥ ১৩৫ ॥

कभु—कभी-कभी; **गुरु**—गुरु; **कभु**—कभी-कभी; **सखा**—मित्र; **कभु**—कभी-कभी; **भृत्य-लीला**—दास के रूप में लीलाएँ; **पूर्वे**—पहले; **येन**—जैसे; **तिन-भावे**—तीन विभिन्न भावों में; **व्रजे**—वृन्दावन में; **कैल खेला**—कृष्ण के साथ खेलते हैं।

अनुवाद

वे भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की सेवा कभी उनके गुरु के रूप में तो कभी मित्र के रूप में और कभी दास के रूप में करते हैं, जिस प्रकार भगवान् बलराम ने व्रज में इन तीन विभिन्न भावों में भगवान् कृष्ण के साथ क्रीड़ाएँ कीं।

বৃষ হঞা কৃষ্ণ-সনে মাথা-মাথি রণ ।
কভু কৃষ্ণ করে তাঁর পাদ-সংবাহন ॥ ১৩৬ ॥

বৃষ হঞা কৃষ্ণ-সনে মাথা-মাথি রণ ।
কভু কৃষ্ণ করে তাঁর পাদ-সংবাহন ॥ ১৩৬ ॥

वृष हञा—बैल बनकर; **कृष्ण-सने**—कृष्ण के साथ; **माथा-माथि रण**—सिरों से लड़ना; **कभु**—कभी-कभी; **कृष्ण**—कृष्ण; **करे**—करते हैं; **ताँर**—उनकी; **पाद-संवाहन**—पाँव की मालिश करना, पाँवों को दबाना।

अनुवाद

भगवान् बलराम कृष्ण के सिर से अपना सिर भिड़ाकर वृष की तरह लड़ते हैं। और कभी-कभी भगवान् कृष्ण बलरामजी के चरण दबाते हैं।

आपनाके भृत्य करि' कृष्णे प्रभु जाने ।
कृष्णेर कलार कला आपनाके माने ॥ १३७॥

आपनाके भृत्य करि' कृष्णे प्रभु जाने ।
कृष्णेर कलार कला आपनाके माने ॥ १३७॥

आपनाके—स्वयं; **भृत्य करि'**—दास समझकर; **कृष्ण**—कृष्ण; **प्रभु**—स्वामी; **जाने**—वे जानते हैं; **कृष्णेर**—भगवान् कृष्ण के; **कलार कला**—पूर्णांश का पूर्णांश; **आपनाके**—स्वयं; **माने**—वे मानते हैं।

अनुवाद

वे अपने आपको दास मानते हैं और कृष्ण को अपना स्वामी मानते हैं। इस प्रकार वे अपने आपको कृष्ण के अंश का भी अंश मानते हैं।

वृषायमाणौ नर्दन्तौ युयुधाते परस्परम् ।
अनुकृत्य रुतैर्जन्तूंश्चेरतुः प्राकृतौ यथा ॥ १३८॥

वृषायमाणौ नर्दन्तौ युयुधाते परस्परम् ।
अनुकृत्य रुतैर्जन्तूंश्चेरतुः प्राकृतौ यथा ॥ १३८॥

वृषायमाणौ—बैलों की भाँति बनकर; **नर्दन्तौ**—गर्जने की आवाज निकालकर; **युयुधाते**—दोनों लड़ते थे; **परस्परम्**—परस्पर; **अनुकृत्य**—नकल करके; **रुतैः**—चीखों के साथ; **जन्तून्**—पशु; **चेरतुः**—खेल करते थे; **प्राकृतौ**—साधारण बालक; **यथा**—जैसे।

अनुवाद

"सामान्य बालकों की तरह एक-दूसरे से लड़ते समय वे वृषों की तरह गर्जन कर रहे थे और तरह-तरह के पशुओं की आवाजे निकालते थे।"

तात्पर्य

यह तथा आगे के उद्धरण *श्रीमद्भागवत* से हैं (१०.११.४० तथा १०.१५.१४)।

कचिच्क्रीड़ा-परिश्रान्तं गोपोत्सङ्गोपबर्हणम् ।
स्वयं विश्रामयत्यार्यं पाद-संवाहनादिभिः ॥ १३९॥

क्वचित्क्रीड़ा-परिश्रान्तं गोपोत्सङ्गोपबर्हणम् ।
स्वयं विश्रामयत्यार्यं पाद-संवाहनादिभिः ॥ १३९॥

क्वचित्—कभी-कभी; **क्रीड़ा**—खेल; **परिश्रान्तम्**—बहुत थककर; **गोप-उत्सङ्ग**—ग्वाले की गोद में; **उपबर्हणम्**—जिसका तकिया; **स्वयम्**—भगवान् कृष्ण स्वयं; **विश्रामयति**—विश्राम देना; **आर्यम्**—अपने बड़े भाई; **पाद-संवाहन-आदिभिः**—उनके पाँव आदि दबाकर।

अनुवाद

"कभी-कभी जब कृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता भगवान् बलराम खेलने के बाद थक जाते और अपना सिर किसी ग्वालबाल की गोद में रख देते, तो स्वयं भगवान् कृष्ण उनके पाँव दबाकर उनकी सेवा करते।"

केयं वा कुत आयाता दैवी वा नार्युतासुरी ।
प्रायो मायास्तु मे भर्तुर्नान्या मेऽपि विमोहिनी ॥ १४०॥

केयं वा कुत आयाता दैवी वा नार्युतासुरी ।
प्रायो मायास्तु मे भर्तुर्नान्या मेऽपि विमोहिनी ॥ १४०॥

का—कौन; **इयम्**—यह; **वा**—अथवा; **कुतः**—कहाँ से; **आयाता**—आई है; **दैवी**—दैवी; **वा**—अथवा; **नारी**—नारी; **उत**—अथवा; **आसुरी**—आसुरी; **प्रायः**—प्रायः; **माया**—माया; **अस्तु**—वह अवश्य होगी; **मे**—मेरे; **भर्तुः**—स्वामी भगवान् कृष्ण की; **न**—नहीं; **अन्या**—अन्य; **मे**—मेरी; **अपि**—निश्चय ही; **विमोहिनी**—विमोहिनी।

अनुवाद

"यह योगशक्ति कौन है और यह कहाँ से आई है? वह दैवी है या आसुरी? यह मेरे प्रभु भगवान् कृष्ण की मायाशक्ति होगी, क्योंकि उसके अतिरिक्त मुझे और कौन मोहित कर सकता है?"

तात्पर्य

भगवान् की क्रीड़ा-लीलाओं से ब्रह्मा के मन में सन्देह उत्पन्न हुआ, अतएव उन्होंने कृष्ण की प्रभुता की परीक्षा करने के लिए अपनी योगशक्ति से भगवान् के सारे बछड़ों और सारे गोपाल बालकों को चुरा लिया। किन्तु श्रीकृष्ण ने सारे बछड़ों तथा बालकों को फिर से खेत में प्रतिस्थापित करके इसका उत्तर दिया। ऐसे अद्भुत प्रतिकार पर आश्चर्यचकित हुए श्री बलराम के विचारों को इस श्लोक में लिपिबद्ध किया गया है (*भागवत* १०.१३.३७)।

यस्याङ्घ्रि-पङ्कज-रजोऽखिल-लोक-पालैर्
मौल्युत्तमैर्धृतमुपासित-तीर्थ-तीर्थम् ।
ब्रह्मा भवोऽहमपि यस्य कलाः कलायाः
श्रीश्चोद्वहेम चिरमस्य नृपासनं क्व ॥१४१॥

यस्याङ्घ्रि-पङ्कज-रजोऽखिल-लोक-पालैर्
मौल्युत्तमैर्धृतमुपासित-तीर्थ-तीर्थम् ।
ब्रह्मा भवोऽहमपि यस्य कलाः कलायाः
श्रीश्चोद्वहेम चिरमस्य नृपासनं क्व ॥ १४१ ॥

यस्य—जिनके; **अङ्घ्रि-पङ्कज**—चरणकमल; **रजः**—रज; **अखिल-लोक**—अखिल लोक मण्डल; **पालैः**—स्वामीयों से; **मौलि-उत्तमैः**—अमूल्य मुकुटों वाले सिर पर; **धृतम्**—धारण किए जाते हैं; **उपासित**—पूजित; **तीर्थ-तीर्थम्**—तीर्थस्थानों को पवित्र करनेवाले; **ब्रह्मा**—ब्रह्माजी; **भवः**—शिवजी; **अहम् अपि**—मैं भी; **यस्य**—जिनका; **कलाः**—अंश; **कलायाः**—पूर्णांश का; **श्रीः**—लक्ष्मी देवी; **च**—और; **उद्वहेम**—हम धारण करते हैं; **चिरम्**—शाश्वत रूप से, चिरकाल से सदा; **अस्य**—उनकी; **नृप-आसनम्**—राजा का सिंहासन; **क्व**—कहाँ।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण के लिए सिंहासन का क्या महत्त्व है? विभिन्न लोकों के स्वामी उनके चरणकमलों की धूल को अपने मुकुटधारी शिरों पर धारण करते हैं। यह धूल तीर्थस्थलों को पवित्र बनाती है। यहाँ तक कि ब्रह्माजी, शिवजी, लक्ष्मी और मैं, जो कि उनके पूर्णांश के अंश हैं, अपने अपने सिरों पर उस धूल को सदैव धारण करते हैं।"

तात्पर्य

जब कौरवों ने बलदेव को अपनी ओर मिलाने के लिए उनकी चापलूसी की और श्रीकृष्ण के बारे में भला-बुरा कहा, तब भगवान् बलदेव ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर यह श्लोक कहा था (*भागवत* १०.६८.३७)।

একলে ঈশ্বর কৃষ্ণ, আর সব ভৃত্য ।
যারে যৈছে নাচায়, সে তৈছে করে নৃত্য ॥১৪২॥

একले ईश्वर कृष्ण, आर सब भृत्य ।
याँरे यैछे नाचाय, से तैछे करे नृत्य ॥१४२॥

एकले—अकेले; **ईश्वर**—पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर; **कृष्ण**—कृष्ण; **आर**—अन्य; **सब**—सब; **भृत्य**—सेवक, दास; **याँरे**—जिनको; **यैछे**—जैसे; **नाचाय**—वे नचाते हैं; **से**—वे; **तैछे**—उसी प्रकार; **करे नृत्य**—नृत्य करते हैं।

अनुवाद

एकमात्र भगवान् कृष्ण ही परम नियन्ता हैं और अन्य सभी उनके सेवक हैं। वे जैसा चाहते हैं, वैसे उन्हें नचाते हैं।

এই মত চৈতন্য-গোসাঞি একলে ঈশ্বর ।
আর সব পারিষদ, কেহ বা কিঙ্কর ॥১৪৩॥

एइ मत चैतन्य-गोसाञि एकले ईश्वर ।
आर सब पारिषद, केह वा किङ्कर ॥१४३॥

एइ मत—इस प्रकार; **चैतन्य-गोसाञि**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **एकले**—अकेले; **ईश्वर**—ईश्वर; **आर सब**—बाकी सब; **पारिषद**—पार्षद; **केह**—कोई; **वा**—अथवा; **किङ्कर**—दास।

अनुवाद

इसी प्रकार भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ही एकमात्र नियन्ता हैं। अन्य सभी उनके पार्षद या सेवक हैं।

গুরু-বর্গ,—নিত্যানন্দ, অদ্বৈত আচার্য ।
শ্রীবাসাদি, আর যত—লঘু, সম, আর্য ॥১৪৪॥

सबे पारिषद, सबे लीलार सहाय ।
सबा लञा निज-कार्य साधे गौर-राय ॥ १४५ ॥

गुरु-वर्ग,—नित्यानन्द, अद्वैत आचार्य्य ।
श्रीवासादि, आर य्रत—लघु, सम, आर्य्य ॥ १४४ ॥
सबे पारिषद, सबे लीलार सहाय ।
सबा लञा निज-कार्य्य साधे गौर-राय ॥ १४५ ॥

गुरु-वर्ग—वरिष्ठ जन; **नित्यानन्द**—भगवान् नित्यानन्द; **अद्वैत आचार्य्य**—तथा अद्वैताचार्य; **श्रीवास-आदि**—श्रीवास ठाकुर एवं अन्य; **आर**—अन्य; **य्रत**—सब; **लघु, सम, आर्य्य**—कनिष्ठ, समान अथवा ज्येष्ठ; **सबे**—सभी; **पारिषद**—पार्षद; **सबे**—प्रत्येक; **लीलार सहाय**—लीलाओं में सहायक; **सबा लञा**—सभी को लेकर; **निज-कार्य्य**—अपना उद्देश्य; **साधे**—सम्पन्न करते हैं; **गौर-राय**—भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

उनके गुरुजन यथा भगवान् नित्यानन्द, अद्वैत आचार्य तथा श्रीवास ठाकुर एवं उनके अन्य भक्त—चाहे वे छोटे हों, समवयस्क हों या वरिष्ठ हों—सभी उनके पार्षद हैं, जो उनकी लीलाओं में सहायक होते हैं। गौरांग महाप्रभु उनकी सहायता से अपने लक्ष्यों की पूर्ति करते हैं।

अद्वैत आचार्य, नित्यानन्द,—दुइ अङ्ग ।
दुइ-जन लञा प्रभुर य्रत किछु रङ्ग ॥ १४६ ॥

अद्वैत आचार्य्य, नित्यानन्द,—दुइ अङ्ग ।
दुइ-जन लञा प्रभुर य्रत किछु रङ्ग ॥ १४६ ॥

अद्वैत आचार्य्य—श्री अद्वैत आचार्य; **नित्यानन्द**—भगवान् नित्यानन्द; **दुइ अङ्ग**—भगवान् के दो अंग; **दुइ-जन लञा**—दोनों को लेकर; **प्रभुर**—भगवान् चैतन्य महाप्रभु के; **य्रत**—सभी; **किछु**—कुछ; **रङ्ग**—लीलाएँ।

अनुवाद

श्री अद्वैत आचार्य तथा श्रील नित्यानन्द प्रभु, जो भगवान् के पूर्ण अंश हैं, उनके प्रधान पार्षद हैं। इन दोनों के साथ महाप्रभु विभिन्न प्रकार से अपनी लीलाएँ करते हैं।

অদ্বৈত-আচার্য-গোসাঞি সাক্ষাতীশ্বর ।
প্রভু গুরু করি' মানে, তিঁহো ত' কিঙ্কর ॥১৪৭॥

অদ্বৈত-আচার্য্য-গোসাঞি সাক্ষাতীশ্বর ।
প্রভু গুরু করি' মানে, তিঁহো ত' কিঙ্কর ॥ ১৪৭॥

অদ্বৈত-আচার্য্য—অদ্বৈতাচার्य; **গোসাঞি**—भगवान्; **साक्षात् ईश्वर**—साक्षात् परम ईश्वर; **प्रभु**—भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; **गुरु करि' माने**—उन्हें गुरु मानते हैं; **तिंहो त' किङ्कर**—किन्तु वे दास हैं।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य साक्षात् भगवान् हैं। यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु उन्हें अपने गुरु के रूप में स्वीकार करते हैं, किन्तु अद्वैत आचार्य भगवान् के दास हैं।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु सदा अद्वैत प्रभु का अपने पिता के समान आदर करते थे क्योंकि अद्वैत प्रभु आयु में उनके पिता से भी बड़े थे। तो भी अद्वैत प्रभु हमेशा अपने आपको चैतन्य महाप्रभु का दास ही मानते रहे। श्री अद्वैत प्रभु तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के गुरु ईश्वर पुरी दोनों ही माधवेन्द्र पुरी के शिष्य थे, जो नित्यानन्द प्रभु के भी गुरु थे। इस तरह अद्वैत प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु के चाचा-गुरु थे, अतएव आदरणीय थे; क्योंकि अपने गुरु के गुरुभाइयों का आदर वैसे ही करना चाहिए, जैसे अपने गुरु का। इस तरह सभी प्रकार से श्री अद्वैत प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु से श्रेष्ठ थे, फिर भी उन्होंने अपने आपको श्री चैतन्य महाप्रभु का आश्रित समझा।

আচার্য-গোসাঞির তত্ত্ব না যায় কথন ।
কৃষ্ণ অবতারি যেঁহো তারিল ভুবন ॥১৪৮॥

আচার্য্য-গোসাঞির তত্ত্ব না য়ায় কথন ।
কৃষ্ণ অবতারি য়েঁহো তারিল ভুবন ॥ ১৪৮॥

आचार्य्य-गोसाञिर—अद्वैताचार्य का; **तत्त्व**—तत्त्व; **ना य़ाय कथन**—वर्णन नहीं किया जा सकता; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **अवतारि**—अवतरण करवाकर; **य़ेंहो**—जो; **तारिल**—तार दिया; **भुवन**—सारे जगत् को।

अनुवाद

मैं अद्वैत आचार्य के तत्त्व का वर्णन नहीं कर सकता। उन्होंने कृष्ण का अवतरण कराकर सारे विश्व का उद्धार किया है।

নিত্যানন্দ-স্বরূপ পূর্বে হইয়া লক্ষ্মণ ।
লঘু-ভ্রাতা হৈয়া করে রামের সেবন ॥ ১৪৯॥

নিত্যানন্দ-স্বরূপ পূর্বে হইয়া লক্ষ্মণ ।
লঘু-ভ্রাতা হৈয়া করে রামের সেবন ॥ ১৪৯॥

नित्यानन्द-स्वरूप—भगवान् नित्यानन्द स्वरूप; **पूर्वे**—पहले; **हइया**—होकर; **लक्ष्मण**—लक्ष्मण, भगवान् रामचन्द्र के छोटे भाई; **लघु-भ्रात्रा हैया**—छोटा भाई बनकर; **करे**—करते हैं; **रामेर सेवन**—भगवान् रामचन्द्र की सेवा।

अनुवाद

भगवान् नित्यानन्द स्वरूप पूर्वजन्म में लक्ष्मण के रूप में प्रकट हुए थे और उन्होंने भगवान् रामचन्द्र की सेवा उनके छोटे भाई के रूप में की थी।

तात्पर्य

शंकर सम्प्रदाय के संन्यासियों में ब्रह्मचारियों को कई नामों से पुकारा जाता है। हर संन्यासी के कुछ सहायक होते हैं, जिन्हें *ब्रह्मचारी* कहते हैं, जो संन्यासी के नाम के अनुसार विभिन्न नामों से जाने जाते हैं। ऐसे ब्रह्मचारियों में चार नाम हैं—स्वरूप, आनन्द, प्रकाश तथा चैतन्य। नित्यानन्द प्रभु ब्रह्मचारी थे, उन्होंने कभी संन्यास नहीं लिया। ब्रह्मचारी के रूप में उनका नाम नित्यानन्द स्वरूप था, अतएव वे जिस संन्यासी के आश्रय में रह रहे थे, उनका नाम शंकराचार्य सम्प्रदाय के *तीर्थ* या *आश्रम* में से होगा, क्योंकि ऐसे संन्यासी के सहायक ब्रह्मचारी के नामों में से एक नाम स्वरूप है।

রামের চরিত্র সব,—দুঃখের কারণ ।
স্বতন্ত্র লীলায় দুঃখ সহেন লক্ষ্মণ ॥ ১৫০॥

রামের চরিত্র সব,—দুঃখের কারণ ।
স্বতন্ত্র লীলায় দুঃখ সহেন লক্ষ্মণ ॥ ১৫০॥

रामेर चरित्र सब—भगवान् रामचन्द्र की सभी लीलाएँ; **दुःखेर कारण**—दुःख का कारण; **स्व-तन्त्र**—यद्यपि स्वतंत्र; **लीलाय**—लीलाओं में; **दुःख**—दुःख; **सहेन लक्ष्मण**—लक्ष्मण सहन करते हैं।

अनुवाद

भगवान् राम के कार्यकलाप दुःखों से भरे थे, किन्तु लक्ष्मण ने स्वेच्छा से उस दुःख को सहन किया।

निषेध करिते नारे, याते छोट भाई ।
मौन धरि' रहे लक्ष्मण मने दुःख पाई' ॥ १५१ ॥

निषेध करिते नारे, ग्राते छोट भाइ ।
मौन धरि' रहे लक्ष्मण मने दुःख पाइ' ॥ १५१ ॥

निषेध करिते नारे—भगवान् रामचन्द्र को मना करने में अक्षम; **ग्राते**—क्योंकि; **छोट भाइ**—छोटा भाई; **मौन धरि'**—चुप होकर; **रहे**—रहते हैं; **लक्ष्मण**—लक्ष्मण; **मने**—मन में; **दुःख**—दुःख; **पाइ'**—लेते हैं।

अनुवाद

छोटे भाई के रूप में वे भगवान् राम को उनके संकल्प से रोक नहीं सके, अतएव वे मौन रहे, भले ही मन ही मन वे दुःखी थे।

कृष्ण-अवतारे ज्येष्ठ हैला सेवार कारण ।
कृष्णके कराइल नाना सुख आस्वादन ॥ १५२ ॥

कृष्ण-अवतारे ज्येष्ठ हैला सेवार कारण ।
कृष्णके कराइल नाना सुख आस्वादन ॥ १५२ ॥

कृष्ण-अवतारे—भगवान् कृष्ण के अवतार में; **ज्येष्ठ हैला**—वे बड़े भाई हो गये; **सेवार कारण**—सेवा के लिए; **कृष्णके**—कृष्ण की; **कराइल**—करवाया; **नाना**—विविध; **सुख**—सुख; **आस्वादन**—आस्वादन।

अनुवाद

जब भगवान् कृष्ण प्रकट हुए, तो वे (बलराम) उनकी मन भर के सेवा करने एवं सभी प्रकार के सुखों का भोग कराने के लिए उनके बड़े भाई बने।

राम-लक्ष्मण——कृष्ण-रामेर अंश-विशेष ।
अवतार-काले दोँहे दोँहाते प्रवेश ॥ १५३ ॥

राम-लक्ष्मण——कृष्ण-रामेर अंश-विशेष ।
अवतार-काले दोंहे दोंहाते प्रवेश ॥ १५३ ॥

राम-लक्ष्मण—रामचन्द्र तथा लक्ष्मण; **कृष्ण-रामेर अंश-विशेष**—भगवान् कृष्ण और भगवान् बलराम के विशेष विस्तार; **अवतार-काले**—अवतार के समय; **दोंहे**—दोनों (राम और लक्ष्मण); **दोंहाते प्रवेश**—उन दोनों में (कृष्ण और बलराम में) प्रविष्ट कर गये।

अनुवाद

श्री राम तथा श्री लक्ष्मण, जो क्रमशः भगवान् कृष्ण तथा बलराम के पूर्ण अंश हैं, कृष्ण तथा बलराम के आविर्भाव के समय उनमें प्रविष्ट हो गये।

तात्पर्य

लघु भागवतामृत ने *विष्णु धर्मोत्तर* का सन्दर्भ देते हुए बतलाया है कि राम वासुदेव के अवतार हैं, लक्ष्मण संकर्षण के अवतार हैं, भरत प्रद्युम्न के तथा शत्रुघ्न अनिरुद्ध के अवतार हैं। *पद्म पुराण* में रामचन्द्र को नारायण कहा गया है तथा लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न को क्रमशः शेष, चक्र तथा शंख कहा गया है। *स्कन्द पुराण* के *रामगीत* में लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न को भगवान् राम के तीन परिचारक कहा गया है।

सेइ अंश लञा ज्येष्ठ-कनिष्ठाभिमान ।
अंशांशि-रूपे शास्त्रे करये व्याख्यान ॥ १५४ ॥

सेइ अंश लञा ज्येष्ठ-कनिष्ठाभिमान ।
अंशांशि-रूपे शास्त्रे करये व्याख्यान ॥ १५४ ॥

सेइ अंश लञा—उसी स्वांश को लेकर; **ज्येष्ठ-कनिष्ठ-अभिमान**—अपने आपको ज्येष्ठ अथवा कनिष्ठ समझते हुए; **अंश-अंशि-रूपे**—विस्तार तथा आदि भगवान् के रूप में; **शास्त्रे**—प्रामाणिक शास्त्रों में; **करये**—करते हैं; **व्याख्यान**—व्याख्यान।

अनुवाद

कृष्ण तथा बलराम छोटे और बड़े भाई के रूप में प्रकट होते हैं, किन्तु शास्त्रों में उन्हें आदि भगवान् तथा उनके अंश बतलाया गया है।

रामादि-मूर्तिषु कला-नियमेन तिष्ठन्
नानावतारमकरोद्भुवनेषु किन्तु ।
कृष्णः स्वयं समभवत्परमः पुमान् यो
गोविन्दमादि-पुरुषं तमहं भजामि ॥ १५५॥

रामादि-मूर्तिषु कला-नियमेन तिष्ठन्
नानावतारमकरोद्भुवनेषु किन्तु ।
कृष्णः स्वयं समभवत्परमः पुमान् यो
गोविन्दमादि-पुरुषं तमहं भजामि ॥ १५५॥

राम-आदि—भगवान् राम आदि का अवतार; **मूर्तिषु**—विविध रूपों में; **कला-नियमेन**—स्वांश के आदेश से; **तिष्ठन्**—होते हुए; **नाना**—विविध; **अवतारम्**—अवतार; **अकरोत्**—सम्पन्न किया; **भुवनेषु**—भुवनों में; **किन्तु**—किन्तु; **कृष्णः**—भगवान् कृष्ण; **स्वयम्**—स्वयं; **समभवत्**—प्रकट हुए; **परमः**—परम; **पुमान्**—पुरुष; **यः**—जो; **गोविन्दम्**—भगवान् गोविन्द को; **आदि-पुरुषम्**—आदि पुरुष; **तम्**—उनको; **अहम्**—मैं; **भजामि**—नमस्कार करता हूँ।

अनुवाद

"मैं उन आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ, जो अपने विविध पूर्ण अंशों से विविध रूपों तथा भगवान् राम आदि अवतारों के रूप में प्रकट होते हैं, किन्तु जो भगवान् कृष्ण के अपने परम मूल रूप में स्वयं प्रकट होते हैं।"

तात्पर्य

यह उद्धरण *ब्रह्म-संहिता* (५.३९) का है।

श्री-चैतन्य—सेइ कृष्ण, नित्यानन्द—राम ।
नित्यानन्द पूर्ण करे चैतन्येर काम ॥ १५६॥

श्री-चैतन्य—सेइ कृष्ण, नित्यानन्द—राम ।
नित्यानन्द पूर्ण करे चैतन्येर काम ॥ १५६॥

श्री-चैतन्य—भगवान् श्री चैतन्य; **सेइ कृष्ण**—वे मूल कृष्ण; **नित्यानन्द**—भगवान् नित्यानन्द; **राम**—बलराम; **नित्यानन्द**—भगवान् नित्यानन्द; **पूर्ण करे**—पूर्ण करते हैं; **चैतन्येर काम**—श्री चैतन्य महाप्रभु की सभी इच्छाएँ।

अनुवाद

भगवान् चैतन्य ही भगवान् कृष्ण हैं और श्री नित्यानन्द भगवान् बलराम हैं। भगवान् नित्यानन्द श्री चैतन्य महाप्रभु की सारी इच्छाओं को पूर्ण करते हैं।

নিত্যানন্দ-মহিমা-সিন্ধু অনন্ত, অপার ।
এক কণা স্পর্শি মাত্র,—সে কৃপা তাঁহার ॥ ১৫৭ ॥

নিত্যানন্দ-মহিমা-সিন্ধু অনন্ত, অপার ।
এক কণা স্পর্শি মাত্র,—সে কৃপা তাঁহার ॥ ১৫৭ ॥

নিত্যানন্দ-মহিমা—भगवान् नित्यानन्द की महिमाओं का; **সিন্ধু**—समुद्र; **অনন্ত**—अनन्द; **অপার**—अपार; **এক কণা**—एक अंश; **স্পর্শি**—मैं स्पर्श करता हूँ; **মাত্র**—केवल; **সে**—वह; **কৃপা**—कृपा; **তাঁহার**—उनकी।

अनुवाद

भगवान् नित्यानन्द की महिमाओं का सागर अनन्त और अगाध है। केवल उनकी कृपा से ही मैं इसकी एक बूँद का स्पर्श कर सकता हूँ।

আর এক শুন তাঁর কৃপার মহিমা ।
অধম জীবেরে চঢ়াইল ঊর্ধ্ব-সীমা ॥ ১৫৮ ॥

আর এক শুন তাঁর কৃপার মহিমা ।
অধম জীবেরে চঢ়াইল ঊর্ধ্ব-সীমা ॥ ১৫৮ ॥

আর—अन्य; **এক**—एक; **শুন**—कृपया सुनो; **তাঁর কৃপার মহিমা**—उनकी कृपा की महिमा; **অধম জীবেরে**—अधम जीव; **চঢ়াইল**—उन्होंने ऊपर उठाया; **ঊর্ধ্ব-সীমা**—उच्चतम सीमा तक।

अनुवाद

कृपया उनकी कृपा की दूसरी महिमा सुनें। उन्होंने एक पतित जीव को सर्वोच्च सीमा तक ऊपर उठाया है।

বেদ-গুহ্য কথা এই অয়োগ্য কহিতে ।
তথাপি কহিয়ে তাঁর কৃপা প্রকাশিতে ॥ ১৫৯ ॥

वेद-गुह्य कथा एइ अयोग्य कहिते ।
तथापि कहिये ताँर कृपा प्रकाशिते ॥ १५९ ॥

वेद—वेदों की भाँति; **गुह्य**—अत्यन्त गुप्त; **कथा**—घटना; **एइ**—यह; **अयोग्य कहिते**—प्रकट करने के लिए अयोग्य; **तथापि**—तथापि; **कहिये**—मैं कहता हूँ; **ताँर**—उनकी; **कृपा**—कृपा; **प्रकाशिते**—प्रकट करने के लिए।

अनुवाद

इसे प्रकट करना उचित नहीं होगा, क्योंकि इसे वेदों के समान ही गुप्त रखना चाहिए; फिर भी मैं इसे कह रहा हूँ, जिससे उनकी कृपा सबको ज्ञात हो जाये।

উল্লাস-উপরি লেখোঁ তোমার প্রসাদ ।
নিত্যানন্দ প্রভু, মোর ক্ষম অপরাধ ॥ ১৬০ ॥

উল্লাস-উপরি লেখোঁ তোমার প্রসাদ ।
নিত্যানন্দ প্রভু, মোর ক্ষম অপরাধ ॥ १६० ॥

উল্লাস-উপরি—उल्लास के कारण; **লেখোঁ**—मैं लिखता हूँ; **তোমার প্রসাদ**—आपकी कृपा; **নিত্যানন্দ প্রভু**—नित्यानन्द प्रभु; **মোর**—मेरे; **ক্ষম**—कृपया क्षमा करें; **অপরাধ**—अपराध।

अनुवाद

हे नित्यानन्द प्रभु! मैं अत्यन्त उल्लास के साथ आपकी कृपा के बारे में लिख रहा हूँ। कृपया मेरे इस अपराध के लिए आप मुझे क्षमा कर दें।

অবধূত গোসাঞির এক ভৃত্য প্রেম-ধাম ।
মীনকেতন রামদাস হয় তাঁর নাম ॥ ১৬১ ॥

অবধূত গোসাঞির এক ভৃত্য প্রেম-ধাম ।
মীনকেতন রামদাস হয় তাঁর নাম ॥ १६१ ॥

অবধূত—भिक्षुक; **গোসাঞির**—भगवान् नित्यानन्द का; **এক**—एक; **ভৃত্য**—दास; **প্রেম-ধাম**—प्रेम के आगार; **মীনকেতন**—मीनकेतन; **রাম-দাস**—रामदास; **হয়**—है; **তাঁর**—उसका; **নাম**—नाम।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु के एक सेवक थे, जिनका नाम श्री मीनकेतन रामदास था, जो प्रेम के आगार थे।

आमार आलये अहो-रात्र-सङ्कीर्तन ।
ताहाते आइला तेँहो पाञा निमन्त्रण ॥ १६२॥

आमार आलये अहो-रात्र-सङ्कीर्तन ।
ताहाते आइला तेंहो पाञा निमन्त्रण ॥ १६२॥

आमार आलये—मेरे घर में; **अहः-रात्र**—दिन-रात; **सङ्कीर्तन**—हरे कृष्ण मंत्र का संकीर्तन; **ताहाते**—इस कारण; **आइला**—आये; **तेंहो**—वे; **पाञा निमन्त्रण**—निमंत्रण पाकर।

अनुवाद

मेरे घर में अखण्ड संकीर्तन था, अतएव आमन्त्रित किये जाने पर वे वहाँ पर आये।

महा-प्रेम-मय तिँहो वसिला अङ्गने ।
सकल वैष्णव ताँर वन्दिला चरणे ॥ १६३॥

महा-प्रेम-मय तिंहो वसिला अङ्गने ।
सकल वैष्णव ताँर वन्दिला चरणे ॥ १६३॥

महा-प्रेम-मय—महाप्रेम में डूबे हुए; **तिंहो**—वे; **वसिला**—बैठ गये; **अङ्गने**—आंगन में; **सकल वैष्णव**—अन्य सभी वैष्णव; **ताँर**—उनकी; **वन्दिला**—पूजा की; **चरणे**—चरणकमल।

अनुवाद

भावजन्य प्रेम में निमग्न होकर वे मेरे आँगन में बैठ गये और सारे वैष्णव उनके चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करने लगे।

नमस्कार करिते, का'र उपरेते चड़े ।
प्रेमे का'रे वंशी मारे, काहाके चापड़े ॥ १६४॥

नमस्कार करिते, का'र उपरेते चड़े ।
प्रेमे का'रे वंशी मारे, काहाके चापड़े ॥ १६४॥

नमस्कार करिते—नमस्कार करते समय, नीचे झुकते समय; **का'र**—किसी के; **उपरेते**—शरीर पर; **चड़े**—ऊपर चढ़े; **प्रेमे**—भावावेश में; **का'रे**—कोई; **वंशी**—बांसुरी; **मारे**—मारते; **काहाके**—कोई; **चापड़े**—थप्पड़।

अनुवाद

भगवत्प्रेम के आनन्द में वे कभी नमस्कार करने वाले के कंधे पर चढ़ जाते, कभी अन्यों को अपनी बाँसुरी से मारते या उन्हें मुख पर धीरे से चपत लगा देते।

যে নয়ন দেখিতে অশ্রু হয় মনে যার ।
সেই নেত্রে অবিচ্ছিন্ন বহে অশ্রু-ধার ॥ ১৬৫ ॥

য়ে নয়ন দেখিতে অশ্রু হয় মনে য়ার ।
সেइ নেত্রে অবিচ্ছিন্ন বহে অশ্রু-ধার ॥ ১৬৫ ॥

য়ে—उनकी; **নয়ন**—आँखें; **দেখিতে**—देखने पर; **অশ্রু**—अश्रु; **হয়**—प्रकट होते हैं; **মনে**—मन से; **য়ার**—किसी का; **সেइ নেত্রে**—उसके नेत्रों में; **অবিচ্ছিন্ন**—लगातार; **বহে**—बहती है; **অশ্রু-ধার**—अश्रु-धारा।

अनुवाद

जब कोई मीनकेतन रामदास की आँखें देखता, तो उसके नेत्रों से भी स्वत: अश्रु बहने लगते, क्योंकि मीनकेतन रामदास के नेत्रों से अश्रु की धारा निरन्तर बहती रहती थी।

কভু কোন অঙ্গে দেখি পুলক-কদম্ব ।
এক অঙ্গে জাড্য তাঁর, আর অঙ্গে কম্প ॥ ১৬৬ ॥

কভু কোন অঙ্গে দেখি পুলক-কদম্ব ।
এক অঙ্গে জাড্য তাঁর, আর অঙ্গে কম্প ॥ ১৬৬ ॥

কভু—कभी-कभी; **কোন**—कोई; **অঙ্গে**—शरीर के अंगों में; **দেখি**—मैं देखता हूँ; **পুলক-কদম্ব**—कदम्ब-पुष्पों की भाँति आनन्द का फूटना; **এক অঙ্গে**—शरीर के एक अंग में; **জাড্য**—जड़ हो गया; **তাঁর**—उसका; **আর অঙ্গে**—दूसरे अंग में; **কম্প**—कम्पन।

अनुवाद

कभी उनके शरीर के कुछ भागों में कदम्ब फूलों के समान आनन्द

का उभार दृष्टिगत होता और कभी शरीर का एक अंग जड़ हो जाता, जबकि दूसरा अंग काँपने लगता था।

নিত্যানন্দ বলি' যবে করেন হুঙ্কার ।
তাহা দেখি' লোকের হয় মহা-চমত্কার ॥ ১৬৭॥

নিত্যানন্দ বলি' য়বে করেন হুঙ্কার ।
তাহা দেখি' লোকের হয় মহা-চমত্কার ॥ ১৬৭॥

नित्यानन्द—नित्यानन्द नाम; **बलि'**—कहना; **य्रबे**—जब कभी; **करेन हुङ्कार**—ऊँची आवाज करना; **ताहा देखि'**—उसे देखकर; **लोकेर**—लोगों का; **हय**—है; **महा-चमत्कार**—महा-चमत्कार और आश्चर्य।

अनुवाद

जब भी वे नित्यानन्द का नाम लेकर जोर से चीत्कार करते, तो उनके आसपास के लोग अत्यधिक विस्मित हो जाते थे।

গুণার্ণব মিশ্র নামে এক বিপ্র আর্য ।
শ্রী-মূর্তি-নিকটে তেঁহো করে সেবা-কার্য ॥ ১৬৮॥

গুণার্ণব মিশ্র নামে এক বিপ্র আর্য্র ।
শ্রী-মূর্তি-নিকটে তেঁহো করে সেবা-কার্য্র ॥ ১৬৮॥

गुणार्णव मिश्र—गुणार्णव मिश्र के; **नामे**—नाम से; **एक**—एक; **विप्र**—ब्राह्मण; **आर्य्र**—अत्यन्त आदरणीय; **श्री-मूर्ति-निकटे**—अर्चाविग्रह के पास; **तेंहो**—वह; **करे**—करता है; **सेवा-कार्य्र**—सेवा कार्य।

अनुवाद

श्री गुणार्णव मिश्र नामक एक सम्माननीय ब्राह्मण अर्चाविग्रह की सेवा करता था।

অঙ্গনে আসিয়া তেঁহো না কৈল সম্ভাষ ।
তাহা দেখি' ক্রুদ্ধ হঞা বলে রামদাস ॥ ১৬৯॥

অঙ্গনে আসিয়া তেঁহো না কৈল সম্ভাষ ।
তাহা দেখি' ক্রুদ্ধ হঞা বলে রামদাস ॥ ১৬৯॥

अङ्गने—आंगन में; **आसिया**—आकर; **तेंहो**—वह; **ना**—नहीं; **कैल**—किया; **सम्भाष**—बातचीत; **ताहा देखि'**—इसे देखकर; **क्रुद्ध हञा**—क्रुद्ध होकर; **बले**—कहते हैं; **राम-दास**—श्री रामदास।

अनुवाद

जब मीनकेतन आँगन में बैठे थे, तो इस ब्राह्मण ने उनका सम्मान नहीं किया। यह देखकर, श्री रामदास क्रुद्ध हुए और बोले।

'एइ त' द्वितीय सूत रोमहरषण ।
बलदेव देखि' ये ना कैल प्रत्युदगम' ॥ १७० ॥

'एइ त' द्वितीय सूत रोमहरषण ।
बलदेव देखि' ये ना कैल प्रत्युद्गम' ॥ १७० ॥

एइ त'—यह; **द्वितीय**—दूसरा; **सूत रोमहरषण**—रोमहर्षण-सूत; **बलदेव देखि'**—भगवान् बलराम को देखकर; **ये**—जो; **ना**—नहीं; **कैल**—किया; **प्रत्युद्गम**—खड़े होना।

अनुवाद

"यहाँ मैं दूसरा रोमहर्षण सूत देख रहा हूँ, जो भगवान् बलराम को देखकर सम्मान प्रदर्शित करने के लिए उठ खड़ा नहीं हुआ।"

एत बलि' नाचे गाय, करये सन्तोष ।
कृष्ण-कार्य करे विप्र——ना करिल रोष ॥ १७१ ॥

एत बलि' नाचे गाय, करये सन्तोष ।
कृष्ण-कार्य्य करे विप्र——ना करिल रोष ॥ १७१ ॥

एत बलि'—यह कहकर; **नाचे**—वे नाचते हैं; **गाय**—गाते हैं, कीर्तन करते हैं; **करये सन्तोष**—सन्तुष्ट हो गये; **कृष्ण-कार्य्य**—अर्चाविग्रह की पूजा का कार्य; **करे**—करता है; **विप्र**—ब्राह्मण; **ना करिल**—नहीं हुआ; **रोष**—क्रुद्ध।

अनुवाद

यह कहकर वे जी-भरकर नाचने-गाने लगे, किन्तु वह ब्राह्मण क्रुद्ध नहीं हुआ, क्योंकि तब वह भगवान् कृष्ण की सेवा में लगा था।

तात्पर्य

मीनकेतन रामदास नित्यानन्द प्रभु के बहुत बड़े भक्त थे। जब वे कृष्णदास

कविराज के घर में प्रविष्ट हुए, तो उस समय गुणार्णव मिश्र नामक पुजारी, जो उनके घर में स्थापित अर्चाविग्रह की पूजा कर रहा था, उसने उनका उचित सम्मान नहीं किया। ऐसी ही घटना नैमिषारण्य में ऋषियों की सभा में रोमहर्षण सूत के प्रवचन के समय घटी। भगवान् बलदेव उस सभा में प्रविष्ट हुए, किन्तु रोमहर्षण सूत व्यासासन पर बैठे थे, अतएव वे भगवान् बलदेव को नमस्कार करने नीचे नहीं उतरे। गुणार्णव मिश्र के आचरण से ऐसा लगा कि भगवान् नित्यानन्द के प्रति उसके मन में अधिक सम्मान नहीं था। यह बात मीनकेतन रामदास को बिल्कुल अच्छी नहीं लगी। इस कारण मीनकेतन रामदास की मनोवृत्ति भक्तों द्वारा कभी निन्दित नहीं होती।

উৎসবান্তে গেলা তিঁহো করিয়া প্রসাদ ।
মোর ভ্রাতা-সনে তাঁর কিছু হৈল বাদ ॥ ১৭২॥

उत्सवान्ते गेला तिंहो करिया प्रसाद ।
मोर भ्राता-सने ताँर किछु हैल वाद ॥ १७२॥

उत्सव-अन्ते—उत्सव के पश्चात्; **गेला**—चले गये; **तिंहो**—वे; **करिया प्रसाद**—कृपा करके; **मोर**—मेरे; **भ्राता-सने**—भाई के साथ; **ताँर**—उसका; **किछु**—कुछ; **हैल**—था; **वाद**—वाद-विवाद।

अनुवाद

उत्सव समाप्त होने पर मीनकेतन रामदास हर एक को आशीर्वाद देकर चले गये। उस समय मेरे भाई के साथ उनका कुछ विवाद उठ खड़ा हुआ।

চৈতন্য-প্রভুতে তাঁর সুদৃঢ় বিশ্বাস ।
নিত্যানন্দ-প্রতি তাঁর বিশ্বাস-আভাস ॥ ১৭৩॥

चैतन्य-प्रभुते ताँर सुदृढ़ विश्वास ।
नित्यानन्द-प्रति ताँर विश्वास-आभास ॥ १७३॥

चैतन्य-प्रभुते—श्री चैतन्य महाप्रभु में; **ताँर**—उसका; **सु-दृढ़**—दृढ़; **विश्वास**—विश्वास; **नित्यानन्द-प्रति**—भगवान् नित्यानन्द को; **ताँर**—उसका; **विश्वास-आभास**—विश्वास का तनिक आभास।

अनुवाद

मेरे भाई की भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु में अटूट श्रद्धा थी, किन्तु भगवान् नित्यानन्द में थोड़ी सी ही श्रद्धा थी।

इहा जानि' रामदासेर दुःख हइल मने ।
तबे त' भ्रातारे आमि करिनु भर्त्सने ॥ १७४॥

इहा जानि' रामदासेर दुःख हइल मने ।
तबे त' भ्रातारे आमि करिनु भर्त्सने ॥ १७४॥

इहा—वह; **जानि'**—जानकर; **राम-दासेर**—सन्त रामदास का; **दुःख**—दुःख; **हइल**—हुआ; **मने**—मन में; **तबे**—उस समय; **त'**—निश्चय ही; **भ्रातारे**—मेरे भाई को; **आमि**—मैं; **करिनु**—किया; **भर्त्सने**—भर्त्सना, झिड़क।

अनुवाद

यह जानकर रामदास मन ही मन खिन्न हुए। तब मैंने अपने भाई की भर्त्सना की।

दुई भाई एक-तनु—समान-प्रकाश ।
नित्यानन्द ना मान, तोमार हबे सर्व-नाश ॥ १७५॥

दुइ भाइ एक-तनु—समान-प्रकाश ।
नित्यानन्द ना मान, तोमार हबे सर्व-नाश ॥ १७५॥

दुइ भाइ—दोनों भाई; **एक-तनु**—एक शरीर; **समान-प्रकाश**—समान रूप; **नित्यानन्द**—भगवान् नित्यानन्द; **ना माने**—तुम विश्वास नहीं करते; **तोमार**—तुम्हारा; **हबे**—होगा; **सर्व-नाश**—सर्वनाश।

अनुवाद

मैंने उससे कहा, "ये दोनों भाई एक शरीर जैसे हैं; वे दोनों एकरूप हैं। यदि तुम भगवान् नित्यानन्द में श्रद्धा नहीं रखते, तो तुम्हारा पतन होगा।"

एकेते विश्वास, अन्ये ना कर सम्मान ।
"अर्ध-कुक्कुटी-न्याय" तोमार प्रमाण ॥ १७६॥

एकेते विश्वास, अन्ये ना कर सम्मान ।
"अर्ध-कुक्कुटी-न्याय" तोमार प्रमाण ॥ १७६ ॥

एकेते विश्वास—एक में विश्वास; **अन्ये**—दूसरे में; **ना**—नहीं; **कर**—करते हो; **सम्मान**—सम्मान; **अर्ध-कुक्कुटी-न्याय**—आधी मुर्गी स्वीकार करने का न्याय; **तोमार**—तुम्हारा; **प्रमाण**—प्रमाण।

अनुवाद

"यदि एक में तुम्हारा विश्वास है, किन्तु दूसरे के प्रति अनादर है, तो तुम्हारा तर्क "अर्ध कुक्कुटी न्याय"* के समान है, जिसमें आधी मुर्गी का तर्क स्वीकार किया जाता है।

কিংবা, দোঁহা না মানিঞা হও ত' পাষণ্ড ।
একে মানি' আরে না মানি,—এই-মত ভণ্ড ॥ ১৭৭ ॥

किंवा, दोंहा ना मानिञा हओ त' पाषण्ड ।
एके मानि' आरे ना मानि,—एइ-मत भण्ड ॥ १७७ ॥

किंवा—अन्यथा; **दोंहा**—वे दोनों; **ना**—नहीं; **मानिञा**—स्वीकार करके; **हओ**—तुम हो जाते हो; **त'**—निश्चित रूप से; **पाषण्ड**—नास्तिक; **एके**—उनमें से एक; **मानि'**—स्वीकार करके; **आरे**—दूसरे; **ना मानि**—न स्वीकार करके; **एइ-मत**—इस प्रकार का विश्वास; **भण्ड**—कपट, दम्भ।

अनुवाद

"एक भाई को मानना और दूसरे का अनादर करना और इस तरह दम्भी बनना, उससे तो यह बेहतर होगा कि दोनो भाईयों को न मानकर नास्तिक बनना।"

ক্রুদ্ধ হৈয়া বংশী ভাঙ্গি' চলে রামদাস ।
তৎকালে আমার ভ্রাতার হৈল সর্ব-নাশ ॥ ১৭৮ ॥

---

*एक मूर्ख किसान ने एक बार सोचा कि वह अपनी मुर्गी का सिर काटकर धन बचा लेगा, क्योंकि उसे खाना देना पड़ता था और उसकी पूँछ को बना रहने देगा, क्योंकि यह अण्डे देती थी। अत: अर्ध कुक्कुटी न्याय की कहावत निकली जिसका पारिभाषिक अर्थ है "आधी-मुर्गी का तर्क।"

क्रुद्ध हैया वंशी भाङ्गि' चले रामदास ।
तत्काले आमार भ्रातार हैल सर्व-नाश ॥ १७८ ॥

क्रुद्ध हैया—अत्यन्त क्रुद्ध होकर; **वंशी**—बाँसुरी; **भाङ्गि'**—तोड़कर; **चले**—चल दिये; **राम-दास**—रामदास; **तत्-काले**—उस समय; **आमार**—मेरा; **भ्रातार**—भाई का; **हैल**—था; **सर्व-नाश**—सर्वनाश।

अनुवाद

अतः श्री रामदास ने क्रोध में अपनी वंशी तोड़ डाली और वहाँ से चले गये और उसी समय मेरे भाई का सर्वनाश हो गया।

এই ত' কহিল তাঁর সেবক-প্রভাব ।
আর এক কহি তাঁর দয়ার স্বভাব ॥ ১৭৯ ॥

एइ त' कहिल ताँर सेवक-प्रभाव ।
आर एक कहि ताँर दयार स्वभाव ॥ १७९ ॥

एइ त'—इस प्रकार; **कहिल**—व्याख्या की, वर्णन किया; **ताँर**—उनकी; **सेवक-प्रभाव**—सेवक की शक्ति; **आर**—अन्य; **एक**—एक; **कहि**—मैं कहता हूँ; **ताँर**—उनकी; **दयार**—दया का; **स्वभाव**—स्वभाव, लक्षण।

अनुवाद

इस तरह मैंने भगवान् नित्यानन्द के सेवकों की शक्ति का वर्णन किया है। अब मैं उनकी कृपा की दूसरी विशेषता का वर्णन करूँगा।

ভাইকে ভৎর্সিনু মুঞি, লঞা এই গুণ ।
সেই রাত্রে প্রভু মোরে দিলা দরশন ॥ ১৮০ ॥

भाइके भर्त्सिनु मुञि, लञा एइ गुण ।
सेइ रात्रे प्रभु मोरे दिला दरशन ॥ १८० ॥

भाइके—मेरा भाई; **भर्त्सिनु**—डाँटा; **मुञि**—मैं; **लञा**—लेकर; **एइ**—यह; **गुण**—सद्गुण के रूप में; **सेइ रात्रे**—उसी रात; **प्रभु**—मेरे प्रभु; **मोरे**—मुझे; **दिला**—दिया; **दरशन**—दर्शन।

अनुवाद

उस रात भगवान् नित्यानन्द ने मुझे स्वप्न में दर्शन दिये, क्योंकि अपने भाई की भर्त्सना करके मैंने अच्छा कार्य किया था।

নৈহাটি-নিকটে 'ঝামটপুর' নামে গ্রাম ।
তাঁহা স্বপ্নে দেখা দিলা নিত্যানন্দ-রাম ॥ ১৮১॥

নৈহাটি-নিকটে 'ঝামটপুর' নামে গ্রাম ।
তাঁহা স্বপ্নে দেখা দিলা নিত্যানন্দ-রাম ॥ ১৮১॥

नैहाटि-निकटे—नैहाटी गाँव के निकट; **झामटपुर**—झामटपुर; **नामे**—नाम से; **ग्राम**—गाँव; **ताँहा**—वहाँ; **स्वप्ने**—स्वप्न में; **देखा**—प्रकट हुए; **दिला**—दिया; **नित्यानन्द-राम**—भगवान् नित्यानन्द बलराम।

अनुवाद

नैहाटी के निकटवर्ती झामटपुर गाँव में नित्यानन्द प्रभु ने मुझे स्वप्न में दर्शन दिया।

तात्पर्य

अब झामटपुर तक रेलवे लाइन जाती है। यदि कोई वहाँ जाना चाहे, तो वह कटवा रेलवे लाइन से रेलगाड़ी पकड़ सकता है और सीधे सालार स्टेशन जा सकता है। वहाँ से सीधे झामटपुर जाया जा सकता है।

দণ্ডবৎ হৈয়া আমি পড়িনু পায়েতে ।
নিজ-পাদ-পদ্ম প্রভু দিলা মোর মাথে ॥ ১৮২॥

দণ্ডবত্ হৈয়া আমি পড়িনু পায়েতে ।
নিজ-পাদ-পদ্ম প্রভু দিলা মোর মাথে ॥ ১৮২॥

दण्डवत् हैया—दण्डवत् प्रणाम किया; **आमि**—मैं; **पड़िनु**—गिर गया; **पायेते**—उनके चरणकमलों पर; **निज-पाद-पद्म**—उनके अपने चरणकमल; **प्रभु**—भगवान्; **दिला**—रखे; **मोर**—मेरे; **माथे**—सिर पर।

अनुवाद

उन्हें नमस्कार करके मैं उनके चरणों पर गिर पड़ा, तब उन्होंने मेरे सिर पर अपने चरणकमल रख दिये।

'উঠ', 'উঠ' বলি' মোরে বলে বার বার ।
উঠি' তাঁর রূপ দেখি' হৈনু চমৎকার ॥ ১৮৩॥

'उठ', 'उठ' बलि' मोरे बले बार बार ।
उठि' ताँर रूप देखि' हैनु चमत्कार ॥ १८३॥

उठ उठ—उठो, उठो; **बलि'**—कहकर; **मोरे**—मुझे; **बले**—कहते हैं; **बार बार**—बारम्बार; **उठि'**—उठकर; **ताँर**—उनका; **रूप देखि'**—रूप देखकर; **हैनु**—हो गया; **चमत्कार**—चकित।

अनुवाद

उन्होंने मुझसे बारम्बार कहा—"उठो, उठो!" उठने पर मैं उनका सौन्दर्य देखकर अत्यधिक विस्मित हुआ।

श्याम-चिक्कण कान्ति, प्रकाण्ड शरीर ।
साक्षात्कन्दर्प, यैछे महा-मल्ल-वीर ॥ १८४॥

श्याम-चिक्कण कान्ति, प्रकाण्ड शरीर ।
साक्षात्कन्दर्प, ग्रैछे महा-मल्ल-वीर ॥ १८४॥

श्याम—श्याम; **चिक्कण**—चिकना; **कान्ति**—चमक; **प्रकाण्ड**—भारी; **शरीर**—शरीर; **साक्षात्**—साक्षात्; **कन्दर्प**—कामदेव; **ग्रैछे**—जैसे; **महा-मल्ल**—अत्यन्त मजबूत और बलवान; **वीर**—वीर।

अनुवाद

उनका रंग चिकना श्यामल वर्ण का था। वे अपने लम्बे, बलिष्ठ, वीर-जैसे शारीरिक आकार के कारण साक्षात् कामदेव जैसे लग रहे थे।

सुवलित हस्त, पद, कमल-नयान ।
पट्ट-वस्त्र शिरे, पट्ट-वस्त्र परिधान ॥ १८५॥

सुवलित हस्त, पद, कमल-नयान ।
पट्ट-वस्त्र शिरे, पट्ट-वस्त्र परिधान ॥ १८५॥

सुवलित—सुनिर्मित; **हस्त**—हाथ; **पद**—पाँवों; **कमल-नयान**—कमलनयन; **पट्ट-वस्त्र**—रेशमी वस्त्र; **शिरे**—सिर पर; **पट्ट-वस्त्र**—रेशमी पोशाक; **परिधान**—पहनावा।

अनुवाद

उनके हाथ, बाँहें तथा पाँव अत्यन्त सुन्दर थे और उनकी आँखें कमल

के फूलों जैसी थीं। वे रेशमी वस्त्र पहने थे और उनके सिर पर रेशमी पगड़ी थी।

सुवर्ण-कुण्डल कर्णे, स्वर्णाङ्गद-वाला ।
पायेते नूपुर बाजे, कण्ठे पुष्प-माला ॥ १८६॥

सुवर्ण-कुण्डल कर्णे, स्वर्णाङ्गद-वाला ।
पायेते नूपुर बाजे, कण्ठे पुष्प-माला ॥ १८६॥

सुवर्ण-कुण्डल—सुवर्ण कुण्डल; **कर्णे**—कानों में; **स्वर्ण-अङ्गद**—सुवर्ण बाजुबन्द; **वाला**—और चूड़ियाँ; **पायेते**—पाँव पर; **नूपुर**—नूपुर; **बाजे**—बजते हैं; **कण्ठे**—गले में; **पुष्प-माला**—पुष्प माला।

अनुवाद

वे कानों में सोने के कुण्डल पहने हुए थे और उनके बाजूबन्द तथा कंगन सोने के थे। वे अपने पाँवों में रुनझुन करती पायल तथा अपने गले में फूलों की माला धारण किये हुए थे।

चन्दन-लेपित-अङ्ग, तिलक सुठाम ।
मत्त-गज जिनि' मद-मन्थर पयान ॥ १८७॥

चन्दन-लेपित-अङ्ग, तिलक सुठाम ।
मत्त-गज जिनि' मद-मन्थर पयान ॥ १८७॥

चन्दन—चन्दन लेप से; **लेपित**—लेपित, लिपा हुआ; **अङ्ग**—शरीर; **तिलक सुठाम**—तिलक से सुशोभित; **मत्त-गज**—मत्त हाथी; **जिनि'**—मात करती थी, बढ़कर; **मद-मन्थर**—शराब पीकर मस्त हुआ हुए; **पयान**—चलना फिरना, गति।

अनुवाद

उनका शरीर चन्दन से लेपित था और वे तिलक से सुशोभित हो रहे थे। उनकी चाल मदमत्त हाथी को लजाने वाली थी।

कोटि-चन्द्र जिनि' मुख उज्ज्वल-वरण ।
दाड़िम्ब-बीज-सम दन्त ताम्बूल-चर्वण ॥ १८८॥

कोटि-चन्द्र जिनि' मुख उज्ज्वल-वरण ।
दाड़िम्ब-बीज-सम दन्त ताम्बूल-चर्वण ॥ १८८॥

कोटि-चन्द्र—लाखों चन्द्र; **जिनि'**—बढ़कर; **मुख**—मुख; **उज्ज्वल-वरण**—उज्जवल वर्ण का; **दाड़िम्ब-बीज**—अनार के बीज; **सम**—के समान; **दन्त**—दांत; **ताम्बूल-चर्वण**—पान सुपारी चबाने से।

अनुवाद

उनका मुखमण्डल करोड़ों चन्द्रमाओं से भी अधिक सुन्दर था और पान खाने के कारण उनके दाँत अनार के दानों जैसे लग रहे थे।

প্রেমে মত্ত অঙ্গ ডাহিনে-বামে দোলে ।
'কৃষ্ণ' 'কৃষ্ণ' বলিয়া গম্ভীর বোল বলে ॥ ১৮৯॥

প্রেমে মত্ত অঙ্গ ডাহিনে-বামে দোলে ।
'কৃষ্ণ' 'কৃষ্ণ' বলিয়া গম্ভীর বোল বলে ॥ ১৮৯॥

प्रेमे—प्रेम में; **मत्त**—लीन; **अङ्ग**—सारा शरीर; **डाहिने**—दाहिनी ओर को; **वामे**—बाँई ओर को; **दोले**—हिलता है; **कृष्ण कृष्ण**—कृष्ण कृष्ण; **बलिया**—बोलते हुए; **गम्भीर**—गम्भीर; **बोल**—शब्द; **बले**—बोल रहे थे।

अनुवाद

उनका शरीर इधर-उधर, दाएँ-बाएँ हिल रहा था, क्योंकि वे प्रेम में मग्न थे। वे गम्भीर वाणी से "कृष्ण, कृष्ण" उच्चारण कर रहे थे।

রাঙ্গা-যষ্টি হস্তে দোলে যেন মত্ত সিংহ ।
চারি-পাশে বেড়ি আছে চরণেতে ভৃঙ্গ ॥ ১৯০॥

রাঙ্গা-যষ্টি হস্তে দোলে যেন মত্ত সিংহ ।
চারি-পাশে বেড়ি আছে চরণেতে ভৃঙ্গ ॥ ১৯০॥

राङ्गा-यष्टि—लाल छड़ी; **हस्ते**—हाथ में; **दोले**—हिलती है; **येन**—की तरह; **मत्त**—मस्त, पागल; **सिंह**—सिंह; **चारि-पाशे**—चारों ओर; **वेड़ि**—घेरे हुए; **आछे**—है; **चरणेते**—चरणकमलों पर; **भृङ्ग**—भौंरे।

अनुवाद

उनके हाथ में उनकी लाल छड़ी हिल रही थी, जिससे वे मदमत्त सिंह की तरह लग रहे थे। उनके चरणों के चारों ओर भौंरे मँडरा रहे थे।

পারিষদ-গণে দেখি' সব গোপ-বেশে ।
'কৃষ্ণ' 'কৃষ্ণ' কহে সবে সপ্রেম আবেশে ॥ ১৯১ ॥

पारिषद-गणे देखि' सब गोप-वेशे ।
'कृष्ण' 'कृष्ण' कहे सबे सप्रेम आवेशे ॥ १९१ ॥

पारिषद-गणे—पार्षद गण; **देखि'**—देखकर; **सब**—सब; **गोप-वेशे**—गोपों के वेष में; **कृष्ण कृष्ण**—कृष्ण कृष्ण; **कहे**—कहते हैं; **सबे**—सभी; **स-प्रेम**—सप्रेम; **आवेशे**—आवेश में।

अनुवाद

उनके भक्त ग्वालबालों की तरह वस्त्र धारण किये हुए थे और उनके चरणों को अनेक भौरों की तरह घेरे हुए थे। वे प्रेमावेश में मग्न होकर "कृष्ण, कृष्ण" उच्चारण कर रहे थे।

শিঙ্গা বাংশী বাজায় কেহ, কেহ নাচে গায় ।
সেবক যোগায় তাম্বূল, চামর ঢুলায় ॥ ১৯২ ॥

शिङ्गा वांशी बाजाय केह, केह नाचे गाय ।
सेवक योगाय ताम्बूल, चामर ढुलाय ॥ १९२ ॥

शिङ्गा वांशी—सींग और बाँसुरियाँ; **बाजाय**—बजाते हैं; **केह**—कुछ; **केह**—कुछ; **नाचे**—नृत्य करते हैं; **गाय**—गाते हैं; **सेवक**—सेवक; **योगाय**—देता है; **ताम्बूल**—पान-सुपारी; **चामर**—चामर; **ढुलाय**—झलता है।

अनुवाद

उनमें से कुछ सिंगा तथा वंशी बजा रहे थे और शेष नृत्य-गान कर रहे थे। कुछ पान अर्पित कर रहे थे और कुछ उन्हें चामर डुला रहे थे।

নিত্যানন্দ-স্বরূপের দেখিয়া বৈভব ।
কিবা রূপ, গুণ, লীলা—অলৌকিক সব ॥ ১৯৩ ॥

नित्यानन्द-स्वरूपेर देखिया वैभव ।
किबा रूप, गुण, लीला—अलौकिक सब ॥ १९३॥

नित्यानन्द-स्वरूपेर—भगवान् नित्यानन्द के स्वरूप का; **देखिया**—देखकर; **वैभव**—ऐश्वर्य; **किबा रूप**—कितना अद्भुत रूप; **गुण**—गुण; **लीला**—लीलाएँ; **अलौकिक**—अलौकिक; **सब**—सब।

अनुवाद

इस प्रकार मैंने श्री नित्यानन्द स्वरूप में ऐसा ऐश्वर्य देखा। उनके अद्भुत रूप, गुण और लीलाएँ, सब अलौकिक हैं।

आनन्दे विह्वल आमि, किछु नाहि जानि ।
तबे हासि' प्रभु मोरे कहिलेन वाणी ॥ १९४॥

आनन्दे विह्वल आमि, किछु नाहि जानि ।
तबे हासि' प्रभु मोरे कहिलेन वाणी ॥ १९४॥

आनन्दे—दिव्य आनन्द में; **विह्वल**—विह्वल; **आमि**—मैं; **किछु**—कुछ; **नाहि**—नहीं; **जानि**—जानता हूँ; **तबे**—उस समय; **हासि'**—मुस्करा कर; **प्रभु**—भगवान्; **मोरे**—मुझसे; **कहिलेन**—कहते हैं; **वाणी**—कुछ शब्द।

अनुवाद

मैं दिव्य आनन्द से विभोर था और कुछ भी नहीं जान पा रहा था। तभी प्रभु नित्यानन्द हँसे और मुझसे इस प्रकार बोले।

आरे आरे कृष्णदास, ना करह भय ।
वृन्दावने याह,—ताँहा सर्व लभ्य हय ॥ १९५॥

आरे आरे कृष्णदास, ना करह भय ।
वृन्दावने याह,—ताँहा सर्व लभ्य हय ॥ १९५॥

आरे आरे—अरे! अरे!; **कृष्ण-दास**—कृष्णदास; **ना**—नहीं; **करह**—करो; **भय**—भय; **वृन्दावने याह**—वृन्दावन जाओ; **ताँहा**—वहाँ; **सर्व**—प्रत्येक वस्तु; **लभ्य**—उपलब्ध; **हय**—है।

अनुवाद

"अरे कृष्णदास! तुम डरो नहीं। वृन्दावन जाओ, क्योंकि वहाँ तुम्हें सब कुछ प्राप्त होगा।"

এত বলি' প্রেরিলা মোরে হাতসানি দিয়া ।
অন্তর্ধান কৈল প্রভু নিজ-গণ লঞা ॥ ১৯৬ ॥

এত বলি' প্রেরিলা মোরে হাতসানি দিয়া ।
অন্তর্ধান কৈল প্রভু নিজ-গণ লঞা ॥ ১৯৬ ॥

এত বলি'—यह कहकर; **প্রেরিলা**—भेज दिया; **মোরে**—मुझे; **হাতসানি**—हाथ के इशारे से; **দিয়া**—देकर; **অন্তর্ধান কৈল**—अन्तर्धान हो गये; **প্রভু**—मेरे स्वामी; **নিজ-গণ লঞা**—अपने निजी साथियों को लेकर।

अनुवाद

यह कहकर उन्होंने अपना हाथ हिलाकर मुझे वृन्दावन की ओर निर्देशित किया। फिर वे अपने संगियों समेत अन्तर्धान हो गये।

মূর্চ্ছিত হইয়া মুঞি পড়িনু ভূমিতে ।
স্বপ্ন-ভঙ্গ হৈল, দেখি, হঞাছে প্রভাতে ॥ ১৯৭ ॥

মূর্চ্ছিত হইয়া মুঞি পড়িনু ভূমিতে ।
স্বপ্ন-ভঙ্গ হৈল, দেখি, হঞাছে প্রভাতে ॥ ১৯৭ ॥

মূর্চ্ছিত হইয়া—मूर्च्छित होकर; **মুঞি**—मैं; **পড়িনু**—गिर गया; **ভূমিতে**—भूमि पर; **স্বপ্ন-ভঙ্গ**—स्वपन के भंग होने पर; **হৈল**—हो गया; **দেখি**—मैंने देखा; **হঞাছে**—था; **প্রভাতে**—प्रातःकाल का प्रकाश।

अनुवाद

मैं मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा, मेरा स्वप्न टूट गया और जब मुझे होश आया, तो मैंने देखा कि प्रातःकाल हो चुका था।

কি দেখিনু কি শুনিনু, করিয়ে বিচার ।
প্রভু-আজ্ঞা হৈল বৃন্দাবন যাইবার ॥ ১৯৮ ॥

कि देखिनु कि शुनिनु, करिये विचार ।
प्रभु-आज्ञा हैल वृन्दावन याइबार ॥ १९८ ॥

कि देखिनु—मैंने क्या देखा; **कि शुनिनु**—मैंने क्या सुना; **करिये विचार**—मैं विचार करने लगा; **प्रभु-आज्ञा**—अपने स्वामी की आज्ञा; **हैल**—था; **वृन्दावन**—वृन्दावन को; **याइबार**—जाना।

अनुवाद

मैंने जो कुछ देखा और सुना था उस पर विचार किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि भगवान् ने मुझे तुरन्त ही वृन्दावन जाने का आदेश दिया है।

सेइ क्षणे वृन्दावने करिनु गमन ।
प्रभुर कृपाते सुखे आइनु वृन्दावन ॥ १९९ ॥
सेइ क्षणे वृन्दावने करिनु गमन ।
प्रभुर कृपाते सुखे आइनु वृन्दावन ॥ १९९ ॥

सेइ क्षणे—तत्क्षण; **वृन्दावने**—वृन्दावन की ओर; **करिनु**—मैंने किया; **गमन**—गमन; **प्रभुर कृपाते**—भगवान् नित्यानन्द की कृपा से; **सुखे**—अत्यन्त प्रसन्न होकर; **आइनु**—पहुँचा; **वृन्दावन**—वृन्दावन में।

अनुवाद

मैं उसी क्षण वृन्दावन के लिए चल पड़ा और उनकी कृपा से मैं बड़ी प्रसन्नतापूर्वक वृन्दावन पहुँच गया।

जय जय नित्यानन्द, नित्यानन्द-राम ।
याँहार कृपाते पाइनु वृन्दावन-धाम ॥ २०० ॥
जय जय नित्यानन्द, नित्यानन्द-राम ।
याँहार कृपाते पाइनु वृन्दावन-धाम ॥ २०० ॥

जय जय—जय जय; **नित्यानन्द**—भगवान् नित्यानन्द की; **नित्यानन्द-राम**—भगवान् बलराम की, जो नित्यानन्द के रूप में प्रकट हुए; **याँहार कृपाते**—जिनकी कृपा से; **पाइनु**—मुझे मिला; **वृन्दावन-धाम**—वृन्दावन में आश्रय।

अनुवाद

भगवान् नित्यानन्द बलराम की जय हो, जिनकी कृपा से मुझे वृन्दावन के दिव्य धाम में शरण प्राप्त हुई!

जय जय नित्यानन्द, जय कृपा-मय ।
याँहा हैते पाइनु रूप-सनातनाश्रय ॥२०१॥

जय जय नित्यानन्द, जय कृपा-मय ।
याँहा हैते पाइनु रूप-सनातनाश्रय ॥ २०१ ॥

जय जय—जय जय; **नित्यानन्द**—भगवान् नित्यानन्द की; **जय कृपा-मय**—परम दयालु प्रभु की जय हो; **याँहा हैते**—जिनसे; **पाइनु**—मुझे मिला; **रूप-सनातन-आश्रय**—रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी के चरणकमलों में आश्रय।

अनुवाद

कृपालु प्रभु नित्यानन्द की जय हो, जय हो, जिनकी कृपा से मैंने श्री रूप तथा श्री सनातन के चरणकमलों में शरण प्राप्त की!

याँहा हैते पाइनु रघुनाथ-महाशय ।
याँहा हैते पाइनु श्री-स्वरूप-आश्रय ॥२०२॥

याँहा हैते पाइनु रघुनाथ-महाशय ।
याँहा हैते पाइनु श्री-स्वरूप-आश्रय ॥ २०२ ॥

याँहा हैते—जिनसे; **पाइनु**—मुझे दिया; **रघुनाथ-महा-आशय**—रघुनाथ दास गोस्वामी का आश्रय; **याँहा हैते**—जिनसे; **पाइनु**—मुझे मिला; **श्री-स्वरूप-आश्रय**—स्वरूप दामोदर गोस्वामी के चरणों पर आश्रय।

अनुवाद

उनकी कृपा से मुझे श्री रघुनाथदास गोस्वामी जैसे महापुरुष की शरण प्राप्त हुई है और उन्हीं की कृपा से मैंने श्री स्वरूप दामोदर का आश्रय प्राप्त किया है।

तात्पर्य

जो व्यक्ति श्री श्री राधा तथा कृष्ण की सेवा करने में दक्ष बनने का इच्छुक हो, उसे सदैव स्वरूप दामोदर गोस्वामी, रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी तथा

रघुनाथदास गोस्वामी के मार्गदर्शन में रहने की आकांक्षा करनी चाहिए। इन गोस्वामियों का संरक्षण प्राप्त करने के लिए मनुष्य को नित्यानन्द प्रभु की कृपा प्राप्त करनी आवश्यक है। लेखक ने इन दो श्लोकों में इसी तथ्य को बतलाने का प्रयास किया है।

सनातन-कृपाय पाइनु भक्तिर सिद्धान्त ।
श्री-रूप-कृपाय पाइनु भक्ति-रस-प्रान्त ॥२०३॥

सनातन-कृपाय पाइनु भक्तिर सिद्धान्त ।
श्री-रूप-कृपाय पाइनु भक्ति-रस-प्रान्त ॥ २०३ ॥

सनातन-कृपाय—सनातन गोस्वामी की कृपा से; **पाइनु**—मैंने पाया; **भक्तिर सिद्धान्त**—भक्ति के सिद्धान्त; **श्री-रूप-कृपाय**—श्रील रूप गोस्वामी की कृपा से; **पाइनु**—मैंने पाया; **भक्ति-रस-प्रान्त**—भक्तिरस की सीमा।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी की कृपा से मैंने भक्ति के अन्तिम निष्कर्ष प्राप्त किये हैं और श्री रूप गोस्वामी की कृपा से मैंने भक्ति के सर्वोच्च अमृत का आस्वादन किया है।

तात्पर्य

भक्ति-विज्ञान के शिक्षक श्री सनातन गोस्वामी प्रभु ने कई पुस्तकें लिखीं, जिनमें से *बृहद्-भागवतामृत* अत्यधिक प्रसिद्ध है। जो कोई भी व्यक्ति भक्त, भक्ति तथा कृष्ण के विषय में जानना चाहता है, उसे यह पुस्तक पढ़नी चाहिए। सनातन गोस्वामी ने भी *श्रीमद्भागवत* के दसवें स्कन्ध का एक विशेष भाष्य भी लिखा है, जो *दशम टिप्पणी* कहलाता है। यह ग्रंथ इतना उत्कृष्ट है कि इसे पढ़कर भगवान् कृष्ण की प्रेममयी लीलाओं को अत्यन्त गहराई से समझा जा सकता है। सनातन गोस्वामी कृत एक अन्य पुस्तक है *हरि-भक्ति-विलास,* जो सभी वर्ग के वैष्णवों—वैष्णव गृहस्थों, वैष्णव ब्रह्मचारियों, वैष्णव वानप्रस्थियों तथा वैष्णव संन्यासियों—के लिए विधि-विधानों को बताने वाली है। किन्तु यह पुस्तक विशेषतया वैष्णव गृहस्थों के लिए लिखी गई थी। श्रील रघुनाथदास गोस्वामी ने *विलाप-कुसुमाञ्जलि* नामक अपनी स्तुति के छठे श्लोक में सनातन गोस्वामी के प्रति अपना आभार निम्न प्रकार से व्यक्त किया है :

वैराग्ययुग्भक्तिरसं प्रयत्नै-
रपाययन्मामनभीप्सुमन्धम्।
कृपाम्बुधिर्यः परदुःखदुःखी
सनातनस्तं प्रभुमाश्रयामि॥

"मैं वैराग्य से युक्त भक्तिरस को पीने के लिए अनिच्छुक था, किन्तु सनातन गोस्वामी ने अपनी अहैतुकी कृपा से मुझे इसे पीने को बाध्य किया, अन्यथा मैं ऐसा न कर पाता। अतएव वे करुणा के सिन्धु हैं। वे मुझ जैसे पतितात्माओं पर विशेष दयालु हैं, अतएव मेरा कर्तव्य है कि मैं उनके चरणों में सादर नमस्कार करूँ।" कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने भी *चैतन्य-चरितामृत* के अन्तिम अनुभाग में रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी और श्रील जीव गोस्वामी का नाम विशेष रूप से वर्णन किया है और इन तीनों गुरुओं के साथ साथ रघुनाथदास के भी चरणकमलों पर अपना सादर नमस्कार अर्पण किया है। श्रील रघुनाथदास गोस्वामी ने भी सनातन गोस्वामी को भक्ति-विज्ञान के शिक्षक के रूप में स्वीकार किया है। श्रील रूप गोस्वामी तो *भक्तिरसाचार्य* कहे गये हैं। उनकी सुप्रसिद्ध कृति *भक्तिरसामृत-सिन्धु* भक्ति-विज्ञान है और इसे पढ़कर भक्ति का अर्थ समझा जा सकता है। उनकी दूसरी प्रसिद्ध कृति *उज्ज्वल नीलमणि* है, जिसमें उन्होंने भगवान् कृष्ण तथा राधारानी के प्रेम-व्यापार तथा दिव्य लीलाओं का विस्तृत वर्णन किया है।

जय जय नित्यानन्द-चरणारविन्द ।
याँहा हैते पाइनु श्री-राधा-गोविन्द ॥२०४॥

जय जय नित्यानन्द-चरणारविन्द ।
याँहा हैते पाइनु श्री-राधा-गोविन्द ॥ २०४॥

जय जय—जय जय; **नित्यानन्द**—भगवान् नित्यानन्द की; **चरण-अरविन्द**—चरणारविन्द; **याँहा हैते**—जिनसे; **पाइनु**—मैंने पाया; **श्री-राधा-गोविन्द**—श्री राधा और गोविन्द का आश्रय।

अनुवाद

भगवान् नित्यानन्द प्रभु के चरणारविन्दों की जय हो, क्योंकि मैंने उनकी कृपा से श्री राधा-गोविन्द को प्राप्त किया है!

तात्पर्य

श्रील नरोत्तमदास ठाकुर, जो अपनी काव्य कृति *प्रार्थना* के लिए विख्यात हैं, उन्होंने अपनी एक प्रार्थना में शोक व्यक्त किया है, "भगवान् नित्यानन्द कब मुझ पर कृपा करेंगे, जिससे कि मैं सारी भौतिक इच्छाओं को भूल सकूँगा?" श्रील नरोत्तमदास ठाकुर पुष्टि करते हैं कि जब तक मनुष्य शरीर तथा इन्द्रियों की आवश्यकताओं को पूरा करने की भौतिक इच्छाओं से मुक्त नहीं हो जाता, तब तक वह भगवान् कृष्ण के दिव्य धाम वृन्दावन को समझ नहीं सकता। वे इसकी भी पुष्टि करते हैं कि छः गोस्वामियों के निर्देश का पालन किये बिना कोई राधा तथा कृष्ण के प्रेम-व्यवहारों को नहीं समझ सकता। एक अन्य श्लोक में नरोत्तमदास ठाकुर ने कहा है कि नित्यानन्द प्रभु की अहैतुकी कृपा के बिना कोई राधा तथा कृष्ण की लीलाओं में प्रवेश नहीं कर सकता।

জগাই মাধাই হৈতে মুঞি সে পাপিষ্ঠ ।
পুরীষের কীট হৈতে মুঞি সে লঘিষ্ঠ ॥২০৫॥

जगाइ माधाइ हैते मुञि से पापिष्ठ ।
पुरीषेर कीट हैते मुञि से लघिष्ठ ॥ २०५॥

जगाइ माधाइ—जगाई माधाई दो भाई; **हैते**—की अपेक्षा; **मुञि**—मैं; **से**—वह; **पापिष्ठ**—अधिक पापी; **पुरीषेर**—मल में; **कीट**—कीड़े; **हैते**—की अपेक्षा; **मुञि**—मैं हूँ; **से**—वह; **लघिष्ठ**—निम्नतर।

अनुवाद

मैं जगाइ तथा माधाइ से भी अधिक पापी हूँ और मल के कीट से भी तुच्छ हूँ।

মোর নাম শুনে যেই তার পুণ্য ক্ষয় ।
মোর নাম লয় যেই তার পাপ হয় ॥২০৬॥

मोर नाम शुने येइ तार पुण्य क्षय ।
मोर नाम लय येइ तार पाप हय ॥ २०६॥

मोर नाम—मेरा नाम; **शुने**—सुनता है; **येइ**—जो कोई; **तार**—उसका; **पुण्य क्षय**—पुण्य

का क्षय; **मोर नाम**—मेरा नाम; **लय**—लेता है; **येइ**—जो कोई; **तार**—उसका; **पाप**—पाप; **हय**—है।

अनुवाद

जो भी मेरा नाम सुनता है, उसके पुण्यकर्मों के फल नष्ट हो जाते हैं और जो मेरा नाम लेता है, वह पापी बन जाता है।

এমন নির্ঘৃণ মোরে কেবা কৃপা করে ।
এক নিত্যানন্দ বিনু জগত্ভিতরে ॥২০৭॥

এমন নির্ঘৃণ মোরে কেবা কৃপা করে ।
এক নিত্যানন্দ বিনু জগত্ভিতরে ॥ ২০৭॥

এমন—ऐसा; **নির্ঘৃণ**—घृणास्पद; **মোরে**—मुझे; **কেবা**—कौन; **কৃপা**—कृपा; **করে**—करता है; **এক**—एक; **নিত্যানন্দ**—भगवान् नित्यानन्द; **বিনু**—बिना, अतिरिक्त; **জগত্**—जगत्; **ভিতরে**—के भीतर।

अनुवाद

इस जगत् में नित्यानन्द के बिना मुझ जैसे घृणास्पद मनुष्य पर कौन अपनी दया प्रदर्शित कर सकता था?

প্রেমে মত্ত নিত্যানন্দ কৃপা-অবতার ।
উত্তম, অধম, কিছু না করে বিচার ॥২০৮॥

প্রেমে মত্ত নিত্যানন্দ কৃপা-অবতার ।
উত্তম, অধম, কিছু না করে বিচার ॥ ২০৮॥

প্রেমে—प्रेमावेश में; **মত্ত**—मत्त, पागल; **নিত্যানন্দ**—भगवान् नित्यानन्द; **কৃপা**—कृपालु; **অবতার**—अवतार; **উত্তম**—उत्तम; **অধম**—अधम; **কিছু**—कोई; **না**—नहीं; **করে**—करते; **বিচার**—विचार, भेद।

अनुवाद

चूँकि वे प्रेमावेश में मत्त रहते हैं और कृपा के अवतार हैं, अतएव वे अच्छे-बुरे में भेदभाव नहीं करते।

যে আগে পড়য়ে, তারে করয়ে নিস্তার ।
অতএব নিস্তারিলা মো-হেন দুরাচার ॥২০৯॥

য়ে আগে পড়ये, তারে করये নিস্তার ।
অতএব নিস্তারিলা মো-হেন দুরাচার ॥ ২০৯ ॥

য়ে—जो कोई; **आगे**—आगे; **पड़ये**—गिरता है; **तारे**—उसको; **करये**—करता है; **निस्तार**—उद्धार; **अतएव**—अतएव; **निस्तारिला**—मुक्त किया; **मो**—मुझ जैसे; **हेन**—ऐसा; **दुराचार**—पापी एवं पतित व्यक्ति।

अनुवाद

जो उनके समक्ष भूमि पर गिरते हैं, वे उनका उद्धार कर देते हैं। अतएव उन्होंने मुझ जैसे पापी तथा पतित व्यक्ति का उद्धार कर दिया है।

মো-পাপিষ্ঠে আনিলেন শ্রী-বৃন্দাবন ।
মো-হেন অধমে দিলা শ্রী-রূপ-চরণ ॥২১০॥

मो-पापिष्ठे आनिलेन श्री-वृन्दावन ।
मो-हेन अधमे दिला श्री-रूप-चरण ॥ २१० ॥

मो-पापिष्ठे—मुझ जैसे पापी; **आनिलेन**—वे लाये; **श्री-वृन्दावन**—वृन्दावन को; **मो-हेन**—मुझ जैसे पर; **अधमे**—अधम पर; **दिला**—उद्धार किया; **श्री-रूप-चरण**—रूप गोस्वामी के चरणकमल।

अनुवाद

यद्यपि मैं पापी हूँ और अत्यन्त अधम हूँ, फिर भी उन्होंने मुझे श्री रूप गोस्वामी के चरणकमलों का आश्रय प्रदान किया है।

শ্রী-মদন-গোপাল-শ্রী-গোবিন্দ-দরশন ।
কহিবার যোগ্য নহে এ-সব কথন ॥২১১॥

श्री-मदन-गोपाल-श्री-गोविन्द-दरशन ।
कहिबार য়োग्य नहे ए-सब कथन ॥ २११ ॥

श्री-मदन-गोपाल—श्री मदन गोपाल; **श्री-गोविन्द**—भगवान् राधा-गोविन्द; **दरशन**—दर्शन; **कहिबार**—बोलने के लिए; **য়োग्य**—योग्य; **नहे**—नहीं; **ए-सब कथन**—ये सब गुह्य शब्द।

अनुवाद

मैं भगवान् मदनगोपाल तथा भगवान् गोविन्द के दर्शन के विषय में ये सारे गोपनीय शब्द कहने के योग्य नहीं हूँ।

वृन्दावन-पुरन्दर श्री-मदन-गोपाल ।
रास-विलासी साक्षाज्व्रजेन्द्र-कुमार ॥२१२॥

वृन्दावन-पुरन्दर श्री-मदन-गोपाल ।
रास-विलासी साक्षात्व्रजेन्द्र-कुमार ॥ २१२॥

वृन्दावन-पुरन्दर—वृन्दावन के प्रमुख अर्चाविग्रह; **श्री-मदन-गोपाल**—भगवान् मदन गोपाल; **रास-विलासी**—रास लीलाओं के भोक्ता; **साक्षात्**—साक्षात्; **व्रजेन्द्र-कुमार**—नन्द महाराज के पुत्र।

अनुवाद

वृन्दावन के प्रमुख अर्चाविग्रह भगवान् मदन गोपाल रासनृत्य के भोक्ता हैं और व्रजराज के साक्षात् पुत्र हैं।

श्री-राधा-ललिता-सङ्गे रास-विलास ।
मन्मथ-मन्मथ-रूपे याँहार प्रकाश ॥२१३॥

श्री-राधा-ललिता-सङ्गे रास-विलास ।
मन्मथ-मन्मथ-रूपे याँहार प्रकाश ॥ २१३॥

श्री-राधा—श्रीमती राधारानी; **ललिता**—उनकी निजी सखी ललिता; **सङ्गे**—के साथ; **रास-विलास**—रास नृत्य को भोगना, आनन्द लेना; **मन्मथ**—कामदेव का; **मन्मथ-रूपे**—कामदेव के रूप में; **याँहार**—जिनका; **प्रकाश**—रूप प्रकट करता है।

अनुवाद

वे श्रीमती राधारानी, श्री ललिता तथा अन्यों के साथ रासनृत्य का आनन्द लेते हैं। वे कामदेवों के भी कामदेव के रूप में अपने आपको प्रकट करते हैं।

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमान-मुखाम्बुजः ।
पीताम्बर-धरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथ-मन्मथः ॥२१४॥

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमान-मुखाम्बुजः ।
पीताम्बर-धरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथ-मन्मथः ॥ २१४॥

तासाम्—उनमें से; **आविरभूत्**—प्रकट हुए; **शौरिः**—भगवान् कृष्ण; **स्मयमान**—मुसकराते हुए; **मुख-अम्बुजः**—कमल-मुख; **पीत-अम्बर-धरः**—पीत वस्त्र धारी; **स्रग्वी**—पुष्पमाला से सुशोभित; **साक्षात्**—साक्षात्; **मन्मथ**—कामदेव के; **मन्मथः**—कामदेव।

अनुवाद

"पीताम्बर धारण किये तथा फूलों की माला से अलंकृत, गोपियों के मध्य स्मितहास्य से युक्त कमलमुख वाले भगवान् कृष्ण कामदेव के हृदय को भी मोहने वाले लग रहे थे।"

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१०.३२.२) से लिया गया है।

স্ব-মাধুর্যে লোকের মন করে আকর্ষণ ।
দুই পাশে রাধা ললিতা করেন সেবন ॥২১৫॥

स्व-माधुर्ये लोकेर मन करे आकर्षण ।
दुइ पाशे राधा ललिता करेन सेवन ॥ २१५॥

स्व-माधुर्ये—अपने माधुर्य से; **लोकेर**—सभी लोगों का; **मन**—मन; **करे**—करते हैं; **आकर्षण**—आकर्षित; **दुइ पाशे**—दोनों ओर; **राधा**—श्रीमती राधारानी; **ललिता**—तथा उनकी सखी ललिता; **करेन**—करती हैं; **सेवन**—सेवा।

अनुवाद

उनके दोनों ओर राधा तथा ललिता सेवा करती हैं। इस तरह वे अपनी माधुरी से सबके हृदयों को आकृष्ट करते हैं।

নিত্যানন্দ-দয়া মোরে তাঁরে দেখাইল ।
শ্রী-রাধা-মদন-মোহনে প্রভু করি' দিল ॥২১৬॥

नित्यानन्द-दया मोरे ताँरे देखाइल ।
श्री-राधा-मदन-मोहने प्रभु करि' दिल ॥ २१६॥

नित्यानन्द-दया—भगवान् नित्यानन्द की दया; **मोरे**—मुझ पर; **ताँरे**—मदनमोहन;

देखाइल—दिखाई; **श्री-राधा-मदन-मोहने**—श्री राधा-मदनमोहन; **प्रभु करि' दिल**—मेरे भगवान् तथा स्वरूप के रूप में दिया।

अनुवाद

प्रभु नित्यानन्द की कृपा ने मुझे श्री मदनमोहन का दर्शन कराया और श्री मदनमोहन को मेरे प्रभु तथा स्वामी के रूप में मुझे प्रदान किया।

मो-अधमे दिल श्री-गोविन्द दरशन ।
कहिवार कथा नहे अकथ्य-कथन ॥२१७॥

मो-अधमे दिल श्री-गोविन्द दरशन ।
कहिबार कथा नहे अकथ्य-कथन ॥ २१७॥

मो-अधमे—मुझ जैसे घृणित का; **दिल**—उद्धार किया; **श्री-गोविन्द दरशन**—भगवान् श्री गोविन्द का दर्शन; **कहिबार**—यह कहने के लिए; **कथा**—शब्द; **नहे**—नहीं हैं; **अकथ्य**—अकथ्य; **कथन**—वर्णन।

अनुवाद

उन्होंने मुझ जैसे अधम को भगवान् गोविन्द का दर्शन कराया। न तो शब्द इसका वर्णन कर सकते हैं, न ही इसे प्रकट करना उपयुक्त होगा।

वृन्दावने योग-पीठे कल्प-तरु-वने ।
रत्न-मण्डप, ताहे रत्न-सिंहासने ॥२१८॥
श्री-गोविन्द वसियाछेन व्रजेन्द्र-नन्दन ।
माधुर्य प्रकाशि' करेन जगत्मोहन ॥२१९॥

वृन्दावने ग्योग-पीठे कल्प-तरु-वने ।
रत्न-मण्डप, ताहे रत्न-सिंहासने ॥ २१८॥
श्री-गोविन्द वसियाछेन व्रजेन्द्र-नन्दन ।
माधुर्य्य प्रकाशि' करेन जगत्मोहन ॥ २१९॥

वृन्दावने—वृन्दावन में; **ग्योग-पीठे**—प्रमुख मन्दिर में; **कल्प-तरु-वने**—कल्पतरूओं के वन में; **रत्न-मण्डप**—रत्नों से निर्मित मण्डप; **ताहे**—इस पर; **रत्न-सिंह-आसने**—रत्नों के सिंहासन पर; **श्री-गोविन्द**—भगवान् गोविन्द; **वसियाछेन**—विराजमान थे; **व्रजेन्द्र-नन्दन**—नन्द महाराज के पुत्र; **माधुर्य्य प्रकाशि'**—अपना माधुर्य दिखाते हुए; **करेन**—करते हैं; **जगत् मोहन**—सारे जगत् को मोह लेते हैं।

अनुवाद

कल्पतरुओं के वन के मध्य वृन्दावन के प्रमुख मन्दिर में रत्नों से बनी वेदी पर व्रजराज के पुत्र भगवान् गोविन्द रत्नों के सिंहासन पर बैठे हुए हैं और अपनी पूर्ण महिमा तथा माधुरी को प्रकाशित करते हुए सम्पूर्ण जगत् को मोहित कर रहे हैं।

वाम-पार्श्वे श्री-राधिका सखी-गण-सङ्गे ।
रासादिक-लीला प्रभु करे कत रङ्गे ॥२२०॥

वाम-पार्श्वे श्री-राधिका सखी-गण-सङ्गे ।
रासादिक-लीला प्रभु करे कत रङ्गे ॥ २२० ॥

वाम-पार्श्वे—बाँई ओर; **श्री-राधिका**—श्रीमती राधारानी; **सखी-गण-सङ्गे**—अपनी सखियों के संग; **रास-आदिक-लीला**—रस नृत्य जैसी लीलाएँ; **प्रभु**—भगवान् कृष्ण; **करे**—करते हैं; **कत रङ्गे**—कई प्रकार से।

अनुवाद

उनकी बाँई ओर श्रीमती राधारानी तथा उनकी निजी सखियाँ हैं। भगवान् गोविन्द उनके साथ रासलीला तथा अन्य अनेक लीलाओं का आनन्द लेते हैं।

याँर ध्यान निज-लोके करे पद्मासन ।
अष्टादशाक्षर-मन्त्रे करे उपासन ॥२२१॥

ग्याँर ध्यान निज-लोके करे पद्मासन ।
अष्टादशाक्षर-मन्त्रे करे उपासन ॥ २२१ ॥

ग्याँर—जिनका; **ध्यान**—ध्यान; **निज-लोके**—अपने लोक में; **करे**—करते हैं; **पद्म-आसन**—ब्रह्माजी; **अष्टादश-अक्षर-मन्त्रे**—१८ अक्षरों से निर्मित मन्त्र से; **करे**—करते हैं; **उपासन**—उपासना।

अनुवाद

अपने लोक में कमल आसन पर बैठे हुए ब्रह्माजी सदैव उनका ध्यान करते हैं और अष्टदशाक्षर (अठारह अक्षरों वाले) मन्त्र से उनकी पूजा करते हैं।

तात्पर्य

ब्रह्माजी अपने लोक में वहाँ के निवासियों के साथ भगवान् गोविन्द के स्वरूप अर्थात् कृष्ण की पूजा अठारह शब्दों वाले मन्त्र से करते हैं, जो इस प्रकार है—*क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा।* जिन लोगों ने एक प्रामाणिक गुरु से दीक्षा ले रखी है और जो दिन में तीन बार गायत्री मंत्र का जप करते हैं, वे इस अठारह अक्षर वाले (*अष्टादशाक्षर*) मन्त्र को जानते हैं। ब्रह्मलोक तथा उससे नीचे वाले लोकों के निवासी इसी मन्त्र का ध्यान करते हुए गोविन्द की पूजा करते हैं। ध्यान तथा कीर्तन में कोई अन्तर नहीं है, किन्तु वर्तमान युग में इस ग्रह पर ध्यान करना सम्भव नहीं है। अतएव हरे कृष्ण जैसे महामंत्र का जोर-जोर से उच्चारण करने के साथ ही अष्टादशाक्षर मन्त्र का मन्द उच्चारण करने की संस्तुति की जाती है।

ब्रह्माजी सर्वोच्च लोक ब्रह्मलोक या सत्यलोक में रहते हैं। हर लोक का एक अधिष्ठाता देव होता है। जैसे सत्यलोक के अधिष्ठाता देव ब्रह्माजी हैं, इसी तरह स्वर्ग में इन्द्र, सूर्यलोक में सूर्यदेव विवस्वान अधिष्ठाता देव हैं। हर लोक के निवासियों तथा अधिष्ठाता देवताओं को ध्यान या कीर्तन द्वारा गोविन्द की पूजा करने की संस्तुति की जाती है।

চৌদ্দ-ভুবনে যাঁর সবে করে ধ্যান ।
বৈকুণ্ঠাদি-পুরে যাঁর লীলা-গুণ গান ॥২২২॥

चौद्द-भुवने ग्राँर सबे करे ध्यान ।
वैकुण्ठादि-पुरे ग्राँर लीला-गुण गान ॥ २२२॥

चौद्द-भुवने—चौदह लोकों में; **ग्राँर**—जिनका; **सबे**—सभी; **करे ध्यान**—ध्यान करते हैं; **वैकुण्ठ-आदि-पुरे**—वैकुण्ठ ग्रहों में; **ग्राँर**—जिनका; **लीला-गुण**—लीलाएँ; **गान**—जपते हैं।

अनुवाद

चौदह लोकों के सारे लोग उनका ध्यान करते हैं और वैकुण्ठ-लोक के सारे निवासी उनके गुणों एवं लीलाओं का गायन करते हैं।

যাঁর মাধুরীতে করে লক্ষ্মী আকর্ষণ ।
রূপ-গোসাঞি করিয়াছেন সে-রূপ বর্ণন ॥২২৩॥

য়াঁর মাধুরীতে করে লক্ষ্মী আকর্ষণ ।
রূপ-গোসাঞি করিয়াছেন সে-রূপ বর্ণন ॥ ২২৩ ॥

য়াঁর—जिनके; **মাধুরীতে**—माधुर्य; **করে**—करती है; **লক্ষ্মী**—लक्ष्मी देवी; **আকর্ষণ**—आकर्षण; **রূপ-গোসাঞি**—श्रील रूप गोस्वामी; **করিয়াছেন**—किया है; **সে**—वह; **রূপ**—रूप का; **বর্ণন**—वर्णन।

अनुवाद

उनकी माधुरी से लक्ष्मीजी आकर्षित हो जाती हैं, जिसका वर्णन श्रील रूप गोस्वामी ने इस प्रकार किया है :

तात्पर्य

श्रील रूप गोस्वामी ने अपने *लघु भागवतामृत* में *पद्म पुराण* से उद्धरण दिया है, जिसमें बतलाया गया है कि लक्ष्मीदेवी भगवान् कृष्ण के आकर्षक रूप को देखकर उनकी ओर आकृष्ट हुई थीं और भगवान् कृष्ण की कृपा प्राप्त करने के उद्देश्य से वे उनके ध्यान में लग गई थीं। जब कृष्ण ने उनसे पूछा कि वे इतने संयम से क्यों ध्यान करती हैं, तो लक्ष्मी देवी ने उत्तर दिया, "मैं वृन्दावन की गोपियों की तरह आपकी संगिनी बनना चाहती हूँ।" यह सुनकर भगवान् कृष्ण ने कहा कि ऐसा होना बिलकुल असम्भव है। तब लक्ष्मीदेवी ने कहा कि वे भगवान् के वक्षस्थल पर स्वर्णरेखा के रूप में स्थित रहना चाहती हैं। भगवान् ने यह प्रार्थना स्वीकार कर ली और तब से लक्ष्मीजी सदैव उनके वक्षस्थल पर स्वर्ण-रेखा के रूप में स्थित हैं। *श्रीमद्भागवत* (१०.१६.३६) में भी लक्ष्मी देवी की तपस्या तथा ध्यान का उल्लेख मिलता है, जहाँ कालिय नाग की पत्नियों (नाग-पत्नियों) ने कृष्ण की स्तुति करते हुए कहा था कि लक्ष्मीजी भी गोपी के रूप में उनका सान्निध्य और उनके चरणकमलों की धूल चाहती हैं।

স্ময়াং ভঙ্গী-ত্রয়-পরিচিতাং সাচি-বিস্তীর্ণ-দৃষ্টিং
বংশী-ন্যস্তাধর-কিশলয়ামুজ্জ্বলাং চন্দ্রকেণ ।

गोविन्दाख्यां हरि-तनुमितः केशि-तीर्थोपकण्ठे
मा प्रेक्षिष्ठास्तव यदि सखे बन्धु-सङ्गेऽस्ति रङ्गः ॥२२४॥
स्मेरां भङ्गी-त्रय-परिचितां साचि-विस्तीर्ण-दृष्टिं
वंशी-न्यस्ताधर-किशलयामुज्ज्वलां चन्द्रकेण ।
गोविन्दाख्यां हरि-तनुमितः केशि-तीर्थोपकण्ठे
मा प्रेक्षिष्ठास्तव यदि सखे बन्धु-सङ्गेऽस्ति रङ्गः ॥ २२४॥

स्मेराम्—मुसकराते हुए; **भङ्गी-त्रय-परिचिताम्**—तीन स्थानों पर मुड़े हुए अर्थात् गर्दन, कमर और घुटनों पर मुड़े हुए; **साचि-विस्तीर्ण-दृष्टिम्**—इधर उधर विस्तीर्ण दृष्टि डालते हुए; **वंशी**—बांसुरी पर; **न्यस्त**—रखे हुए; **अधर**—होंठ, अधर; **किशलयाम्**—नए खिले; **उज्ज्वलाम्**—उज्जवल; **चन्द्रकेण**—चांदनी से; **गोविन्द-आख्याम्**—गोविन्द नामक भगवान्; **हरि-तनुम्**—भगवान् का दिव्य शरीर; **इतः**—यहाँ; **केशि-तीर्थ-उपकण्ठे**—केशीघाट की पड़ोस में यमुना के तट पर; **मा**—नहीं; **प्रेक्षिष्ठाः**—देखो; **तव**—तुम्हारा; **यदि**—यदि; **सखे**—हे सखे; **बन्धु-सङ्गे**—सांसरिक मित्रों को; **अस्ति**—है; **रङ्गः**—आसक्ति।

अनुवाद

"हे मित्र, यदि तुम अपने संसारी मित्रों के प्रति वास्तव में आसक्त हो, तो यमुना-तट पर केशीघाट में खड़े भगवान् गोविन्द के स्मितहास्य युक्त मुखमण्डल की ओर मत देखना। वे नेत्रों से कटाक्षपात करते हुए अपने होठों पर बाँसुरी धारण करते हैं, जो नव पल्लव के समान प्रतीत होती है। उनका त्रिभंगिमायुक्त दिव्य शरीर चाँदनी में अत्यन्त उज्ज्वल प्रतीत होता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक *भक्तिरसामृत-सिन्धु* (१.२.२३९) से लिया गया है, जो व्यावहारिक भक्ति के सम्बन्ध में है। सामान्यतया लोग अपने बद्ध जीवन में समाज, मैत्री तथा प्रेम के आनन्द में लगे रहते हैं। ऐसा तथाकथित प्रेम, प्रेम न होकर कामवासना है। किन्तु लोग प्रेम की ऐसी मिथ्या समझ से सन्तुष्ट हैं। मिथिला के महान् पंडित कवि विद्यापति ने कहा है कि इस भौतिक जगत् में समाज, मैत्री तथा पारिवारिक प्रेम से प्राप्त होने वाला आनन्द जल की एक बूँद के समान है, किन्तु हमारे हृदय तो समुद्र जैसा आनन्द चाहते हैं। इस तरह हृदय की तुलना भौतिक अस्तित्वरूपी मरुस्थल से की गई है, जिसे अपनी

शुष्कता दूर करने के लिए आनन्द-रूपी सागर के जल की आवश्यकता होती है। यदि मरुस्थल में जल की एक बूँद हो, तो भले ही कोई यह कहे कि यह जल है, किन्तु इतने कम जल का कोई महत्त्व नहीं है। इसी प्रकार इस भौतिक जगत् में कोई भी व्यक्ति समाज, मैत्री तथा प्रेम के व्यवहार से सन्तुष्ट नहीं है। अतएव यदि कोई अपने हृदय में वास्तविक आनन्द चाहता है, तो उसे गोविन्द के चरणकमलों की खोज करनी चाहिए। इस श्लोक में रूप गोस्वामी इंगित करते हैं कि यदि कोई समाज, मैत्री तथा प्रेम के आनन्द से सन्तुष्ट रहना चाहता है, तो उसे गोविन्द के चरणकमलों की शरण में नहीं जाना चाहिए, क्योंकि यदि वह उनके चरणकमलों में शरण लेता है, तो वह उस तथाकथित लेशमात्र आनन्द को भूल जायेगा। किन्तु जो इस तथाकथित आनन्द से सन्तुष्ट नहीं है, उसे गोविन्द के चरणकमलों की शरण ग्रहण करनी चाहिए, जो वृन्दावन में यमुना-तट पर केशीतीर्थ या केशीघाट पर खड़े रहते हैं और समस्त गोपियों को अपनी दिव्य प्रेममयी सेवा की ओर आकर्षित करते हैं।

साक्षाज्व्रजेन्द्र-सुत इथे नाहि आन ।
येवा अज्ञे करे ताँरे प्रतिमा-हेन ज्ञान ॥२२५॥

साक्षात्व्रजेन्द्र-सुत इथे नाहि आन ।
येबा अज्ञे करे ताँरे प्रतिमा-हेन ज्ञान ॥ २२५ ॥

साक्षात्—साक्षात्; **व्रजेन्द्र-सुत**—नन्द महाराज के पुत्र; **इथे**—इस विषय में; **नाहि**—नहीं है; **आन**—कोई अपवाद; **येबा**—जो भी; **अज्ञे**—एक मूर्ख व्यक्ति; **करे**—करता है; **ताँरे**—उनको; **प्रतिमा-हेन**—मूर्ति की भाँति; **ज्ञान**—ऐसा विचार।

अनुवाद

निस्सन्देह, वे साक्षात् व्रजराज के पुत्र हैं। जो मूर्ख है, वही उन्हें मूर्ति मानता है।

सेइ अपराधे तार नाहिक निस्तार ।
घोर नरकेते पड़े, कि बलिब आर ॥२२६॥

सेइ अपराधे तार नाहिक निस्तार ।
घोर नरकेते पड़े, कि बलिब आर ॥ २२६ ॥

सेइ अपराधे—उस अपराध से; **तार**—उसका; **नाहिक**—नहीं है; **निस्तार**—छुटकारा, मुक्ति; **घोर**—घोर; **नरकेते**—नारकीय अवस्था में; **पड़े**—गिर जाता है; **कि बलिब**—मैं क्या कहूँ; **आर**—और अधिक।

अनुवाद

उस अपराध के कारण वह कभी मुक्त नहीं हो सकता। वस्तुतः वह घोर नरक में जा पड़ेगा। इससे अधिक मैं क्या कहूँ?

तात्पर्य

अपने ग्रन्थ *भक्तिसन्दर्भ* में जीव गोस्वामी ने कहा है कि जो भक्ति के विषय में वास्तव में गम्भीर हैं, वे मिट्टी, धातु, पत्थर या काष्ठ से बनी मूर्ति के रूप तथा भगवान् के वास्तविक रूप में कोई अन्तर नहीं करते। भौतिक जगत् में व्यक्ति तथा उसकी फोटो, चित्र या मूर्ति अलग-अलग होते हैं। किन्तु भगवान् कृष्ण की मूर्ति तथा स्वयं कृष्ण भिन्न-भिन्न नहीं हैं, क्योंकि भगवान् परम पूर्ण हैं। जिसे हम पत्थर, काष्ठ तथा धातु कहते हैं, वे भगवान् की शक्तियाँ हैं और शक्ति कभी भी शक्तिमान से पृथक् नहीं हो सकती। जैसाकि हम पहले कह चुके हैं, सूर्य-किरण की शक्ति को शक्तिमान सूर्य से पृथक् नहीं किया जा सकता। अतएव भौतिक शक्ति भले ही भगवान् से पृथक् प्रतीत हो, किन्तु दिव्य रूप में वह भगवान् से अभिन्न होती है।

भगवान् कहीं भी और सर्वत्र प्रकट हो सकते हैं, क्योंकि उनकी विविध शक्तियाँ धूप की तरह सर्वत्र फैली हुई हैं। अतएव हमें समझना चाहिए कि हम जो कुछ भी देखते हैं, वह भगवान् की शक्ति है। हमें भगवान् तथा मिट्टी, धातु, काष्ठ या रंग से बने उनके *अर्चारूप* में भेद नहीं करना चाहिए। यदि किसी ने इस चेतना को विकसित नहीं किया है, तो भी उसे अपने गुरु के उपदेशों से इसे सिद्धान्त के रूप में स्वीकार करना चाहिए और मन्दिर में *अर्चा-मूर्ति* की पूजा भगवान् से अभिन्न मानकर करनी चाहिए।

पद्म पुराण में यह विशेष उल्लेख मिलता है कि जो कोई मन्दिर में भगवान् के रूप को काष्ठ, पत्थर या धातु से बना मानता है, वह निश्चय ही नारकीय दशा को प्राप्त होता है। निर्विशेषवादी मन्दिर में भगवान् के स्वरूप की पूजा के विरोधी होते हैं और अपने आपको हिन्दू कहने वाला एक ऐसा समूह भी है,

जो ऐसी पूजा की निन्दा करता है। उनके द्वारा वेदों की मान्यता का कोई अर्थ नहीं होता, क्योंकि सारे आचार्यों ने, यहाँ तक कि निर्विशेषवादी शंकराचार्य ने भी भगवान् के दिव्य रूप की पूजा करने की संस्तुति की है। शंकराचार्य जैसे मायावादी पाँच रूपों की पूजा, *पञ्चोपासना,* की संस्तुति करते हैं, जिनमें भगवान् विष्णु सम्मिलित हैं। किन्तु वैष्णवगण भगवान् विष्णु के विविध रूपों की यथा राधा-कृष्ण, लक्ष्मी-नारायण, सीता-राम तथा रुक्मिणी-कृष्ण की पूजा करते हैं। मायावादी स्वीकार करते हैं कि प्रारम्भ में भगवान् के स्वरूप की पूजा आवश्यक है, किन्तु वे सोचते हैं कि अन्त में हर वस्तु निर्विशेष हो जाती है। क्योंकि वे अन्ततः भगवान् के स्वरूप की पूजा के विरुद्ध रहते हैं, अतएव चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें अपराधी कहा है।

जो लोग शरीर को आत्मा मानते हैं, उन्हें *श्रीमद्भागवत* में *भौम इज्य-धीः* कहकर निन्दित किया गया है। *भौम* का अर्थ है पृथ्वी तथा *इज्य-धीः* का अर्थ है पूजक। *भौम इज्य-धीः* दो प्रकार के होते हैं—वे जो अपनी जन्मभूमि की पूजा करते हैं, यथा राष्ट्रवादी जो अपनी मातृभूमि के लिए अनेक त्याग करते हैं तथा वे जो भगवान् के रूप की पूजा की भर्त्सना करते हैं। किसी को न तो पृथ्वी की पूजा करनी चाहिए, न अपनी जन्मभूमि की; न ही उसे हमारी सुविधा के लिए धातु या काष्ठ के बने भगवान् के स्वरूप की ही भर्त्सना करनी चाहिए। भौतिक वस्तुएँ भी भगवान् की ही शक्ति हैं।

हेन ये गोविन्द प्रभु, पाइनु याँहा हैते ।
ताँहार चरण-कृपा के पारे वर्णिते ॥२२७॥

हेन ये गोविन्द प्रभु, पाइनु याँहा हैते ।
ताँहार चरण-कृपा के पारे वर्णिते ॥ २२७॥

हेन—इस प्रकार; **ये गोविन्द**—यह भगवान् गोविन्द; **प्रभु**—स्वामी; **पाइनु**—मुझे मिले; **याँहा हैते**—जिनसे; **ताँहार**—उनके; **चरण-कृपा**—चरणकमलों की कृपा; **के**—कौन; **पारे**—कर सकता है; **वर्णिते**—वर्णन।

अनुवाद

अतएव ऐसा कौन है, जो उनके (नित्यानन्द के) उन चरणकमलों

की कृपा का वर्णन कर सके, जिनसे मैंने इन भगवान् गोविन्द की शरण प्राप्त की है?

বৃন্দাবনে বৈসে যত বৈষ্ণব-মণ্ডল ।
কৃষ্ণ-নাম-পরায়ণ, পরম-মঙ্গল ॥২২৮॥

वृन्दावने वैसे यत वैष्णव-मण्डल ।
कृष्ण-नाम-परायण, परम-मङ्गल ॥ २२८ ॥

वृन्दावने—वृन्दावन में; **वैसे**—हैं; **यत**—सब; **वैष्णव-मण्डल**—भक्त गण; **कृष्ण-नाम-परायण**—भगवान् कृष्ण के नाम में मग्न होना; **परम-मङ्गल**—परम शुभ।

अनुवाद

वृन्दावन में रहने वाले सारे वैष्णवजन कृष्ण के परम मंगलमय नाम के कीर्तन में मग्न रहते हैं।

যাঁর প্রাণ-ধন——নিত্যানন্দ-শ্রী-চৈতন্য ।
রাধা-কৃষ্ণ-ভক্তি বিনে নাহি জানে অন্য ॥২২৯॥

यहाँर प्राण-धन——नित्यानन्द-श्री-चैतन्य ।
राधा-कृष्ण-भक्ति विने नाहि जाने अन्य ॥ २२९ ॥

यहाँर—जिसका; **प्राण-धन**—प्राणधन, जीवन एवं आत्मा; **नित्यानन्द-श्री-चैतन्य**—भगवान् नित्यानन्द और चैतन्य महाप्रभु; **राधा-कृष्ण**—राधा तथा कृष्ण को; **भक्ति**—भक्ति; **विने**—बिना; **नाहि जाने अन्य**—और कुछ नहीं जानते।

अनुवाद

भगवान् चैतन्य तथा नित्यानन्द उन वैष्णवों के प्राणधन हैं, जो श्री श्री राधा-कृष्ण की भक्ति के अतिरिक्त कुछ भी नहीं जानते।

সে বৈষ্ণবের পদ-রেণু, তার পদ-ছায়া ।
অধমেরে দিল প্রভু-নিত্যানন্দ-দয়া ॥২৩০॥

से वैष्णवेर पद-रेणु, तार पद-छाया ।
अधमेरे दिल प्रभु-नित्यानन्द-दया ॥ २३०॥

से वैष्णवेर—उन सभी वैष्णवों की; **पद-रेणु**—चरण रज; **तार**—उनके; **पद-छाया**—पाँव की छाया; **अधमेरे**—ईस पतित आत्मा को; **दिल**—दिया; **प्रभु-नित्यानन्द-दया**—भगवान् नित्यानन्द प्रभु की दया।

अनुवाद

इस पतितात्मा को भगवान् नित्यानन्द की कृपा से ही वैष्णवों के चरणकमलों की धूल और छाया प्राप्त हो सकी है।

'ताँहा सर्व लभ्य हय'—प्रभुर वचन ।
सेइ सूत्र—एइ तार कैल विवरण ॥२३१॥

'ताँहा सर्व लभ्य हय'—प्रभुर वचन ।
सेइ सूत्र—एइ तार कैल विवरण ॥ २३१ ॥

ताँहा—उस स्थान पर; **सर्व**—सब कुछ; **लभ्य**—उपलब्ध; **हय**—है; **प्रभुर**—प्रभु का; **वचन**—वचन; **सेइ सूत्र**—वही सूत्र; **एइ**—यह; **तार**—उनका; **कैल विवरण**—वर्णन किया गया है।

अनुवाद

भगवान् नित्यानन्द ने कहा, "वृन्दावन में सभी वस्तुएँ सुलभ हैं।" मैंने उनके संक्षिप्त कथन की यहाँ विस्तृत व्याख्या की है।

से सब पाइनु आमि वृन्दावने आय ।
सेइ सब लभ्य एइ प्रभुर कृपाय ॥२३२॥

से सब पाइनु आमि वृन्दावने आय ।
सेइ सब लभ्य एइ प्रभुर कृपाय ॥ २३२ ॥

से सब—यह सब; **पाइनु**—प्राप्त किया; **आमि**—मैं; **वृन्दावने**—वृन्दावन में; **आय**—आकर; **सेइ सब**—यह सब; **लभ्य**—उपलब्ध; **एइ**—यह; **प्रभुर कृपाय**—भगवान् नित्यानन्द की कृपा से।

अनुवाद

मैंने वृन्दावन आकर यह सब प्राप्त किया है और यह नित्यानन्द प्रभु की कृपा से सम्भव हो सका है।

तात्पर्य

वृन्दावन के सारे निवासी वैष्णव हैं। वे सर्व मंगलमय हैं, क्योंकि वे कृष्ण के पवित्र नाम का किसी न किसी तरह सदैव कीर्तन करते रहते हैं। यद्यपि उनमें से कुछ लोग भक्ति के विधि-विधानों का कठोरता से पालन नहीं करते, किन्तु वे कृष्ण-भक्त ही है और प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृष्ण-नाम का जप करते रहते हैं। चाहे किसी काम से या बिना काम के, जब वे सड़कों से होकर गुजरते हैं, तो राधा या कृष्ण का नाम लेकर एक-दूसरे का अभिवादन करते हैं। इस तरह वे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शुभ होते हैं।

वर्तमान वृन्दावन शहर गौड़ीय वैष्णवों द्वारा स्थापित किया गया है, क्योंकि छः गोस्वामी यहाँ आये और उन्होंने अपने-अपने मन्दिर यहाँ बनवाये। वृन्दावन में जितने मन्दिर हैं, उनमें से ९० प्रतिशत गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के हैं, जो चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द की शिक्षाओं के अनुयायी हैं। इनमें से सात मन्दिर अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। वृन्दावन के निवासी राधा और कृष्ण की पूजा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जानते। हाल के कुछ वर्षों में कुछ धर्माधर्मविचार-विहीन तथाकथित पुजारियों ने, जो अपने आपको पक्का गोस्वामी जाति का बतलाते हैं, देवताओं की पूजा व्यक्तिगत रूप से चालू की है, किन्तु इसमें कोई भी कट्टर वैष्णव भाग नहीं लेता। जो लोग वैष्णव विधि से भक्ति-कार्य संपादन के प्रति गम्भीर हैं, वे देवताओं की ऐसी पूजा में भाग नहीं लेते।

गौड़ीय वैष्णव कभी भी राधा-कृष्ण तथा भगवान् चैतन्य में कोई भेद नहीं मानते। उनका कहना है कि चूँकि चैतन्य महाप्रभु राधा तथा कृष्ण के सम्मिलित रूप हैं, अतएव वे राधा तथा कृष्ण से भिन्न नहीं हैं। किन्तु कुछ भ्रान्त लोग यह सिद्ध करने का प्रयास करते हैं कि वे अत्यन्त उन्नत हैं क्योंकि उन्हें राधा-कृष्ण के नाम के स्थान पर गौर प्रभु का नाम-कीर्तन करने में अधिक गौरव का अनुभव होता है। इस तरह वे जान-बूझकर भगवान् चैतन्य तथा राधा-कृष्ण में अन्तर करते हैं। उनके अनुसार *नदीयानागरी* पद्धति जो उनके उर्वर मस्तिष्क की हाल ही की उपज है, गौर चैतन्य की पूजा है, किन्तु उन्हें राधा तथा कृष्ण की पूजा पसन्द नहीं है। वे यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि चूँकि भगवान् चैतन्य स्वयं राधा तथा कृष्ण के संयुक्त रूप में प्रकट हुए थे, अतएव

राधा तथा कृष्ण की पूजा करने की आवश्यकता नहीं है। चैतन्य महाप्रभु के ऐसे तथाकथित भक्तों द्वारा किये जाने वाले भेदभाव को शुद्ध भक्त विध्वंसक मानते हैं। जो कोई भी राधा-कृष्ण तथा गौरांग में भेदभाव करता है, उसे माया के हाथों का खिलौना समझना चाहिए।

कुछ लोग ऐसे हैं, जो चैतन्य महाप्रभु की पूजा के विरुद्ध हैं, क्योंकि वे उन्हें संसारी समझते हैं। किन्तु कोई भी सम्प्रदाय, जो चैतन्य महाप्रभु तथा राधा-कृष्ण में भेदभाव करता है, चाहे वह राधा-कृष्ण को चैतन्य से अलग मानकर पूजा करता हो या चैतन्य महाप्रभु की पूजा करता हो, किन्तु राधा-कृष्ण की पूजा नहीं करता हो, वह *प्राकृत सहजिया* वर्ग का होता है।

श्री *चैतन्य-चरितामृत* के प्रणेता कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने श्लोक २२५ तथा २२६ में भविष्यवाणी की है कि भविष्य में जो लोग पूजा की काल्पनिक विधियाँ बनायेंगे, वे धीरे धीरे राधा-कृष्ण की पूजा छोड़ देंगे और यद्यपि वे अपने आपको चैतन्य महाप्रभु के भक्त कहेंगे, किन्तु अन्त में वे चैतन्य महाप्रभु की भी पूजा छोड़ देंगे और भौतिक-कार्यकलापों में पतित हो जायेंगे। भगवान् चैतन्य के सच्चे उपासकों के जीवन का चरम लक्ष्य श्री श्री राधा तथा कृष्ण की पूजा करना होता है।

आपनार कथा लिखि निर्लज्ज हइया ।
नित्यानन्द-गुणे लेखाय उन्मत्त करिया ॥२३३॥

आपनार कथा लिखि निर्लज्ज हइया ।
नित्यानन्द-गुणे लेखाय उन्मत्त करिया ॥ २३३ ॥

आपनार—निजी; **कथा**—वर्णन; **लिखि**—मैं लिखता हूँ; **निर्लज्ज हइया**—निर्लज्ज होकर; **नित्यानन्द-गुणे**—नित्यानन्द के गुण; **लेखाय**—लिखवाते हैं; **उन्मत्त करिया**—उन्मत्त करके।

अनुवाद

मैंने बिना किसी संकोच के अपनी निजी कहानी लिख दी है। भगवान् नित्यानन्द के गुण मुझे उन्मत्त बनाकर ये सब बातें लिखने के लिए बाध्य कर देते हैं।

নিত্যানন্দ-প্রভুর গুণ-মহিমা অপার ।
'সহস্র-বদনে' শেষ নাহি পায় যাঁর ॥ ২৩৪ ॥

নিত্যানন্দ-প্রভুর গুণ-মহিমা অপার ।
'সহস্র-বদনে' শেষ নাহি পায় য়াঁর ॥ ২৩৪ ॥

নিত্যানন্দ-প্রভুর—नित्यानन्द प्रभु का; **গুণ-মহিমা**—दिव्य गुणों की महिमा; **অপার**—अपार; **সহস্র-বদনে**—हजारों मुखों में; **শেষ**—अन्त; **নাহি**—नहीं; **পায়**—मिलता; **য়াঁর**—जिसका।

अनुवाद

भगवान् नित्यानन्द के दिव्य गुणों की महिमाएँ अगाध हैं; यहाँ तक कि भगवान् शेष भी अपने हजारों मुखों से उनकी सीमा को नहीं पा सकते।

শ্রী-রূপ-রঘুনাথ-পদে যার আশ ।
চৈতন্য-চরিতামৃত কহে কৃষ্ণদাস ॥ ২৩৫ ॥

শ্রী-রূপ-রঘুনাথ-পদে য়ার আশ ।
চৈতন্য-চরিতামৃত কহে কৃষ্ণদাস ॥ ২৩৫ ॥

শ্রী-রূপ—श्रील रूप गोस्वामी; **রঘুনাথ**—श्रील रघुनाथदास गोस्वामी; **পদে**—चरणकमलों पर; **য়ার**—जिनकी; **আশ**—आशा; **চৈতন্য-চরিতামৃত**—चैतन्य चरितामृत ग्रंथ; **কহে**—वर्णन करता है; **কৃষ্ণ-দাস**—श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों में प्रार्थना करते हुए, सदैव उनकी दया की कामना करते हुए मैं, कृष्णदास, उनके पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए *श्री चैतन्य-चरितामृत* का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत आदि-लीला के "नित्यानन्द बलराम की महिमाएँ" शीर्षक पाँचवे अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।